Microtek Group Of Institutions

Subject Name : **Business Regulatory Framework**

Syllabus Covered : **BCOM 2nd Year**

(Purvanchal University)

विषय सूची

खण्ड 1

अध्याय 1 अनुबन्ध की प्रकृति, वर्गीकरण और वैध अनुबन्ध की जरूरतें 5

अध्याय 2 प्रस्ताव एवं स्वीकृति 7

अध्याय 3 अनुबंध करने के योग्य पक्षकार 10

अध्याय 4 अनुबंधों का निष्पादन 19

अध्याय 5 अनुबंध का पालन या समाप्ति 30

अध्याय 6 अनुबंध खण्डन के हल 32

अध्याय 7 विशेष अनुबंधः संयोगिक एंव अर्द्ध अनुबंध 34

अध्याय 8 हानिरक्षा व गारंटी के अनुबंध 37

अध्याय 9 निक्षेप के अनुबंध 42

अध्याय 10 अभिकरण अथवा एजेंसी के अनुबंध 54

खण्ड 2

अध्याय 11 वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 80

खण्ड 3

अध्याय 12 विनिमय साध्य लेखपत्र (विपत्र) अधिनियम–1881 102

खण्ड 4

अध्याय 13 उपभोक्ता अधिकार एवं उपभोक्ता संरक्षण 133

खण्ड 5

अध्याय 14 विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 (फेमा) 139

B Com II

Paper - I : Business Regulatory Framework

Max. Marks : 100
Time : 3 Hours

Note : ***Ten questions shall be set in the question paper covering the whole syllabus, the candidate will be required to attempt any five questions.***

Law of Contract (1872); Nature of Contract, Classification, Offer and Acceptance, Capacity of Parties to Contract; Discharge of Contract; Remedies for Breach of Contrast Special Contrasts: Indemnity; Guarantee: Bailment and Pledge; Agency

Sales of Goods Act 1930; Formation of Contracts of Sale; Goods and their Classification, Price; Conditions, and Warranties; Transfer of Property in Goods; Performance of the Contract of Sales Unpaid Seller and his Rights, Sale by Auction; Hire Purchase Agreement.

Negotiable Instrument Act 1881; Definition of Negotiable Instruments; Features; Promissory Note; Bill Exchange & Cheque; Types of Crossing; Dishonour and Discharge of Negotiable Instrument.

The Consumer Protection Act 1986; Salient Features; Definition of Consumer; Grievance Redressal Machinery.

Foreign Exchange Management Act 1999; Definition and Main Provisions.

खण्ड 1

अध्याय-1

अनुबन्ध की प्रकृति, वर्गीकरण और वैध अनुबन्ध की जरूरतें

(Nature of Contract, Classification and Essentials of a Valid Contract)

अनुबन्ध का कार्य

(Meaning of Contract)

अनुबंध दो पक्षकारों के मध्य किया गया ऐसा समझौता होता है जो कि उनके मध्य वैधानिक दायित्व उत्पन्न करता है।

कुछ विद्वानों ने संविदे की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है :–

1. **Sir William Anson :** ''अनुबंध दो पक्षकारी के मध्य किया गया ऐसा ठहराव है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है। तथा जिसके द्वारा एक या अधिक पक्षकारों द्वारा कुछ कार्यों के लिए अधिकार प्राप्त किए जाते हैं। अथवा दूसरे या अन्य पक्षकारों द्वारा उनका त्याग किया जाता है।''

2. **According to Indian Contrat Act 1872. Sec. 2 (h) :** "An agreement enforceable by law is a contract".

3. **Sir John Solmon :** ''अनुबंध एक ऐसा समझौता है जो दो पक्षकारों के मध्य दायित्व उत्पन्न करता है एवं उनकी व्यवस्था करता है।''

   ("A Contract is an agreement creating and defining obligations between the parties.")

उपरोक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है, कि ऐसे ठहराव अथवा समझौते अथवा वचन जो पक्षकारों के मध्य हो तथा जो राजनियम द्वारा प्रर्वतनीय कराया जा सके अनुबंध कहलाता है।

एक अनुबंध के लिए दो बातों का होना आवश्यक है :–

1. Agreement between parties
2. Agreement enforceable by law

यदि अनुबंध करते समय उपरोक्त में कोई एक बात पूरी न होती हो तो वह अनुबंध नहीं होगा अर्थात् समझौते के बिना अनुबंध नहीं हो सकता तथा यदि समझौते का उद्देश्य दायित्व उत्पन्न करना नहीं है अथवा उसे राजनियम द्वारा परिवर्तनीय नहीं कराया जा सके तो वह अनुबंध नहीं हो सकता, केवल समझौता ही रहेगा।

For Example : राम ने 4000 रूपयें में श्याम को अपना स्कूटर बेचने का प्रस्ताप करता है जिसे श्याम स्वीकार कर लेता है तो वह अनुबंध होगा क्योंकि दोनों पक्षकारों ने अपनी सहमति प्रकट की है।

Essentials of a Valid Contract

अनुबंध के सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं में अनुबंध की वैधानिकता पर अधिक जोर दिया गया है। वैधानिक अनुबंध को अनुबंध अधिनियम की धारा 10 में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है :–

"All agreements are contracts if they are made by the free consent of the parties competent to contract for a lawful consideration and with a lawful object and are not hereby expressly declosed to be void."

Sec. 2 (h) or sec 10 के अनुसार एक (legal) valid contract में निम्नलिखित लक्षणों का होना आवश्यक है :–

1. **Agreement :** प्रत्येक अनुबंध के लिए समझौता होना आवश्यक है। Sec 2 (e) :- ''प्रत्येक वचन अथवा वचनों का समूह जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल होते हैं, समझौता कहलाता है।'' अतः समझौते के लिए वचन का होना आवश्यक है।

   Acc. to Sec. 2 (b) :- ''प्रस्ताव स्वीकार होने पर वचन बन जाता है।'' अतः वचन के लिए प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति आवश्यक है। प्रस्ताव की स्वीकृति निधार्रित ढंग से की जानी चाहिए तथा प्रस्ताव की स्वीकृति की सूचना प्रस्तावक को दी जानी चाहिए।

2. **Contractual Capacity of Parties :** अनुबंध में दोनों पक्षकारों में अनुबंध करने की योग्यता होनी चाहिए। कानून कभी व्यक्तियों को अनुबंध करने के योग्य मानता है :– यदि वह व्यस्क है, स्वस्थ मस्तिष्क का है, सम्बन्धित कानून द्वारा अनुबंध करने के लिए अयोग्य घोषित न किया गया हो।

3. **Free Consent :** एक वैध अनुबंध के लिए दो पक्षकारों के मध्य केवल सहमति ही आवश्यक नहीं है, बल्कि ऐसी सहमति का स्वतंत्र होना भी आवश्यक है। स्वतंत्र सहमति से तात्पर्य ऐसी सहमति से है जबकि दोनों पक्षकर एक बात पर एक ही भाव से सहमत हों। धारा 14 के अनुसार पक्षकारों की सहमति स्वतंत्र मानी जाएगी यदि वह उत्पीड़न (Coercion) अनुचित प्रभाव (Under Influence) Fraud or Mistake के आधार पर प्राप्त न की गई हो।

4. **Lawful Consideration :** एक वैध अनुबंध में प्रतिफल का होना आवश्यक है तथा ऐसा प्रतिफल वैध होना चाहिए। प्रतिफल से तात्पर्य 'बदले में कुछ'। बिना प्रतिफल के अनुबंध व्यर्थ होता है। इस प्रकार प्रतिफल भूत, वर्तमान व भावी हो सकता है।

5. **Lawful Objects :** अनुबंध का उद्देश्य वैधानिक होना चाहिए। किसी अनुबंध का उद्देश्य वैधानिक नहीं माना जा सकताः यदि वह –

   (*a*) कानून द्वारा निषिद्ध है।

   (*b*) संविदें को लागू करने से किसी कानून का उल्लंघन होता है।

   (*b*) यह किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाने वाला हो।

   (*d*) किसी को धोखा देने का अभिप्राय हो।

6. **Agreement not Expressely Declared to be Void :** अनुबंध अधिनियम में कुछ समझौतों को स्पष्ट रूप से घोषित किया गया है। ये समझौते Sec 26, 30, 56 में दिए गए हैं। इसमें मुख्य रूप से विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव, व्यापार में रूकावट डालने वाले ठहराव हैं।

7. **Legal Formalities :** समझौते लिखित व मौखिक हो सकते हैं। यदि किसी विशेष अनुबंध का किसी अधिनियम के अन्तर्गत लिखित अथवा साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित होना आवश्यक है। तो ऐसा अनुबंध तभी वैध माना जाएगा जब वह साक्ष्यी द्वारा प्रमाणित होना आवश्यक है तो ऐसा अनुबंध तभी वैध माना जाएगा जब वह साक्ष्यी द्वारा प्रमाणित हो। कुछ अनुबंध जैसे बीमे के अनुबंध व निर्णय ठहराव, विनियम साध्य लेखपत्र आदि को लिखित में होना अनिवार्य है।

इस प्रकार एक वैधे अनुबंध में उपरोक्त सभी लक्षणों का होना आवश्यक है। यदि इनमें से कोई एक लक्षण नहीं पाया जाता है तो अनुबंध वैध नहीं होगा।

अध्याय-2
प्रस्ताव एवं स्वीकृति
(Offer and Acceptance)

किसी अनुबंध के लिए समझौता एक आवश्यक शर्त है अतः अनुबंध के लिए ठहराव या समझौता होना आवश्यक है। ठहराव के लिए प्रस्ताव व उसकी दूसरे पक्षकार द्वारा स्वीकृति आवश्यक है।

ठहराव = प्रस्ताव + स्वीकृति।

प्रस्ताव तथा स्वीकृति वैध होनी चाहिए। बिना वैध प्रस्ताव व उसकी स्वीकृति के कोई भी समझौता नहीं हो सकता।

प्रस्ताव
(Proposal Offer)

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 2 (A) के अनुसार ''जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को किसी कार्य को करने अथवा न करने के विषय में अपनी इच्छा इस उद्देश्य से प्रकट करता है कि उस व्यक्ति की सहमति उस कार्य को करने अथवा न करने के विषय में प्राप्त हो जाए, तो इच्छा को प्रस्ताव कहते हैं।

प्रस्ताव के आवश्यक तत्त्व
(Essential Elements of Offer)

1. प्रस्ताव के लिए दो पक्षधारों का होना आवश्यक है। एक वह जो प्रस्ताव रखता है तथा दूसरा वह जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा जाता है।
2. प्रस्ताव में किसी कार्य को करने अथवा न करने के विषय में अपनी इच्छा प्रकट करना होना चाहिए।
3. प्रस्ताव अन्य व्यक्ति की सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से किए जाने चाहिए।
4. प्रस्ताव स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है।

प्रस्ताव सम्बन्धी वैधानिक नियम
(Legal Rules as to Offer)

1. **प्रस्ताव वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए :** प्रस्ताव करते समय प्रस्तावक का उद्देश्य वैधानिक दायित्व उत्पन्न करने वाला होना चाहिए। यदि प्रस्ताव का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना नहीं है तो ऐसा प्रस्ताव राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय न होने के कारण अनुबंध नहीं हो सकता। भोजन के लिए निमन्त्रण, खेल आदि के लिए निमन्त्रण वैधानिक दायित्व उत्पन्न नहीं करते। इस विषय में श्री बालकोर टे श्रीमति बालको के विवाद का निर्णय महत्वपूर्ण है। इस विवाद में श्री बालकोर ने जो श्रीलंका में रहते थे, अपनी पत्नी को जो इंग्लैंड में रहती थी, प्रतिमाह 30 पोंड भेजने का वायदा किया। किन्तु वायदे की रकम न भेज सके। बाद में श्रीमति बालकोर ने इसे न्यायालय में प्रवर्तित कराना चाहा। इसमें यह निर्णय दिया गया कि श्रीमति बालकोर इस वायदे को प्रवर्तित नहीं करा सकती क्योंकि अनुबंध की प्रकृति से वैधानिक सम्बन्ध स्थापित कराने का इरादा प्रतीत नहीं होता।
2. **प्रस्ताव की शर्तें निश्चित होनी चाहिए :** अनिश्चित, अस्पष्ट व भ्रमात्क नहीं। यदि प्रस्ताव स्पष्ट नहीं है तो यह वैध प्रस्तुत नहीं हो सकता।

3. **प्रस्ताव विनय के रूप में होना चाहिए, आज्ञा के रूप में नहीं :** प्रस्तावक को यह अधिकार है कि वह प्रस्ताव को स्वीकार करने की कोई शर्त लगा सकता है, लेकिन अस्वीकार करने की कोई शर्त नहीं लगा सकता है, उदाहरण :– प्रस्तावक, वचनगहीता से यह नहीं कह सकता कि एक निश्चित समय तक स्वीकृति न मिलने पर वह प्रस्ताव को स्वीकार मान लेगा।

4. **प्रस्ताव शर्त सहित व शर्तरहित हो सकता है :**

   उदाहरण : अ, ब को 150 बोरी गेहूँ इस शर्त पर बेचने का प्रस्ताव करता है कि वह 5000 रूपयें की रकम एडवांस दे। यह एक वैध प्रस्ताव है।

5. **प्रस्ताव सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकता है :** जब प्रस्ताव किसी विशिष्ट व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह को किया जाता है तो यह विशिष्ट प्रस्ताव है। ऐसे विशिष्ट प्रस्ताव की स्वीकृति केवल वह विशिष्ट व्यक्ति या समूह ही कर सकता है। अन्य कोई नहीं।

   जब प्रस्ताव पूरी दुनिया के सम्मुख रखा जाता है तथा उसकी स्वीकृति कोई भी कर सकता है। विज्ञापन द्वारा प्रस्ताव सामान्य प्रस्ताव का उदारहण है।

6. **प्रस्ताव स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है :** जब प्रस्ताव शब्दों (लिखित व मौखिक) द्वारा प्रकट किया गए तो यह स्पष्ट प्रस्ताव है। सड़क पर रिक्शा चालक द्वारा रिक्शा चलाना एक गर्भात प्रस्ताव है।

स्वीकृति

(Acceptance)

किसी भी ठहराव का वैध बनाने के लिए प्रस्ताव का स्वीकृत होना आवश्यक है।

All to Indian Contract Act Sec. 2 (b) :-

''जब वह व्यक्ति जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया गया है, प्रस्ताव पर अपनी सहमति प्रकट करता है तब प्रस्ताव स्वीकृत हुआ माना जाता है।''

स्वीकृति कौन दे सकता है

(Who can Accept an Offer)

स्वीकृति केवल उसी व्यक्ति द्वारा ही दी जा सकती है जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा गया हो यदि प्रस्ताव संसार को खुले रूप में दिया गया है तो उसकी स्वीकृति कोई भी व्यक्ति जो उस प्रस्ताव को स्पष्ट रूप से स्वीकार करे, दे सकता है।

स्वीकृति संबंधी कानूनी नियम

(Legal Rules as to Acceptance)

1. **स्वीकृति प्रस्तावक को भेजी जानी चाहिए :**

2. **स्वीकृति पूर्ण व शर्त-रहित होनी चाहिए :** स्वीकृति का पूर्ण व शर्त–रहित होना आवश्यक है। वैध स्वीकृति के लिए आवश्यक है कि प्रस्ताव को उसी रूप में स्वीकार किया जाए, जिस रूप में यह मूल प्रस्तावक द्वारा रखा गया था। यदि स्वीकृति की शर्तों से भिन्न होगी तो यह स्वीकृति ने होकर 'प्रति–प्रस्ताव' होगा।

3. **स्वीकृति स्पष्ट व गर्भित हो सकती है :** स्वीकृति स्पष्ट अभिव्यक्ति द्वारा, जैसे : बोले गए, लिखे गए शब्दों द्वारा या बिना स्पष्ट अभिव्यक्ति द्वारा अर्थात् आचरण के रूप में दी जा सकती है। गर्भित स्वीकृति का उदाहरण नीलामकर्त्ता द्वारा 'एक–दो–तीन' की आवाज लगाना है जिसके द्वारा खरीरदार का प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है।

4. **स्वीकृति निर्धारित ढंग से होनी चाहिए :** All to Indian Contract Act :- स्वीकृति, प्रस्तावक द्वारा निर्धारित ढंग से होनी चाहिए। यदि स्वीकृति किसी अन्य ढंग से हुई है तथा प्रस्तावक चुप रहता है, तब समझा जाता है कि उसने उस ढंग को स्वीकार कर लिया है।

5. **स्वीकृति उचित समय के भीतर दी जानी चाहिए :** स्वीकृति निर्धारित समय के अन्दर दी जानी चाहिए। अगर अवधि निर्धारित नहीं कि गई है तो उचित समय के भीतर दी जानी चाहिए।

6. **स्वीकृति का संवहन होना आवश्यक है :** किसी भी प्रस्ताव की स्वीकृति का संवहन किया जाना चाहिए। तभी वह बाध्यकारी मानी जाएगी। यदि प्रस्ताव स्वीकृति सम्बन्धी सूचना प्रस्तावक को नहीं दी जाती तो इसे वैध स्वीकृति नहीं कहा जा सकता है।
7. **स्वीकृति निश्चित व्यक्ति द्वारा होनी चाहिए :** जब प्रस्ताव किसी निश्चित व्यक्ति के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है तो उसकी स्वीकृति भी उसी के द्वारा दी जानी चाहिए। अगर स्वीकृति कोई दूसरा व्यक्ति देता है तो यह स्वीकृति वैध नहीं होगी।

बिना संहवन के वैध स्वीकृति

(Acceptance Without Acceptance)

स्वीकृति का जब तक संवहन न हो उसका कोई अर्थ नहीं रहता। अगर कोई मौखिक स्वीकृति किसी शोर के कारण न सुनाई दे तो अनुबंध नहीं हो सकता। परन्तु निम्नलिखित अवस्थाओं में स्वीकृति प्रस्ताव की जानकारी के न होते हुए भी पूर्ण मानी जाएगी :

1. जब स्वीकृति डाक द्वारा भेजी गयी हो :– चाहे पत्र खो गया हो।
2. जब अनुबंध एक–पक्षीय अनुबंध हो।
3. जब स्वीकृति प्रस्ताव के Agent को दी जाए।
4. जब प्रस्तावक ऐसा वातावरण पैदा करे दे जहाँ स्वीकृति का संवहन मान लिया जाए। ऐसी दशा में प्रस्तावक की अपनी गलती नहीं होनी चाहिए।

अध्याय-3

अनुबंध करने के योग्य पक्षकार
(Parties Compotent to Contract)

एक वैध अनुबंध का आवश्यक लक्षण है कि दोनों पक्षकारों में अनुबंध करने की योग्यता होनी चाहिए। यदि अनुबंध के पक्षकारों में अनुबंध करने की योग्यता व क्षमता नहीं है, तो अनुबंध व्यर्थ माना जाएगा। तथा किसी पक्षकार का उसके प्रति (अनुबंध) कोई उत्तरदायित्व नहीं होगा। यदि कोई अनुबंध के अयोग्य होने के कारण अनुबंध को समाप्त करना चाहता है, तो इसकी अयोग्यता स्वयं उस पक्षकार को सिद्ध करनी होगी।

भारतीय अनुबंध अधिनियम में (1872) 'अनुबंध करने की क्षमता' की परिभाषा नहीं दी गई, बल्कि यह बताया गया है कि कौन–कौन से व्यक्ति अनुबंध करने के योग्य है तथा नहीं है।

एक वैध अनबंध करने के लिए पक्षकार को स्वस्थ मस्तिष्क, व्यस्क आयु, तथा किसी भी राजनियम द्वारा जिसके अधीन वह आता है, अयोग्यत घोषित न किया गया हो।

इस उपरोक्त वर्णन से यह पता चलता है कि निम्नलिखित तीन वर्ग के व्यक्ति अनुबंध करने की योग्यता नहीं रखते :–

1. Minor
2. Person of Unsound Mind
3. Persons disqualified by the law.

1. **Contract with Minors :** अनुबंध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार एक अव्यस्क व्यक्ति अनुबंध करने की क्षमता नहीं रखता। इसलिए अवयस्क के साथ किए गए अनुबंध पूर्णतः अयोग्य है, और उसके साथ किये गये अनुबंध प्रारम्भ से ही व्यर्थ होते है। किन्तु एक अवयस्क के साथ एवं उसके द्वारा किये गये अनुबंध के संबंध में वैधानिक स्थिति निम्न प्रकार है –
2. Minor द्वारा Minority की Stage में किए गय अनुबंधों की पुष्टि उसके व्यस्क होने पर नहीं की जा सकती। परन्तु यदि कोई, Minor, Minority की अवस्था में प्रारम्भ किये गए व्यापार को चालू रखता है तो वह उन सभी लेन–देनी के लिए भी उत्तरदायी होगा, जो उसने Minor होने के समय किये थे।
3. **प्रत्यारस्थापन का नियम लागू नहीं होता (Rule of Restitutions does not Apply) :** किसी भी अवयस्क पर किसी भी मूलतः व्यर्थ समझौते के अन्तर्गत प्राप्त धन व क्षतिपूर्ति करने का कोई दायित्व नहीं होता। इस प्रकार अव्यस्क द्वारा किए गए समझौतों का कोई स्पष्टतया निष्पादन नहीं होता।
4. **Minor can Contract for his Benifit :** एक अवयस्क अपने लाभ के लिए अथवा हित के लिए अनुबंध कर सकता है।

   (*i*) ***Contracts with a minor is void :*** According to Sec. 11 एक Minor के साथ किया गया अनुबंध पूर्ण रूप से व्यर्थ होते है, ऐसे अनुबंधों के लिए दूसरा पक्षकार ही पूर्ण रूप से उत्तरदायी होगा। यदि अनुबंध करते समय दूसरे पक्षकार को उसके अवयस्क होने का ज्ञान था या अथवा नहीं। इस सम्बन्ध में Mohri Bibi *Vs.* Dharm Das Ghosh का मामला महत्त्वपूर्ण है।

   (*ii*) **अवयस्क के समय किए गए अनुबंधों की वयस्क हो जाने पर पुष्टि नहीं (*No ratification of minor's acts on his becoming manor) :*** अवयस्क के साथ किए गए अनुबंधों की प्रतिफलता मान्य नहीं होती। क्योंकि अनुबंधों का प्रभाव प्रारम्भ से ही शुरू होता है। अतः एक तथा ऐसे अनुबंध के अंतर्गत लाभ भी प्राप्त कर सकता है। तथा ऐसे अनुबंध वैध माने जाऐंगे। किन्तु ऐसे अनुबंध के निष्पादन के लिए अव्यस्क व्यक्ति का कोई दायित्व नहीं होता। केवल उसकी सम्पत्ति ही दायी होगी।

5. **जीवनयापन संबंधी आवश्यकताओं के लिए दायित्व (Liability for Necessities) :** यद्यपि एक अवयस्क के साथ किए गए अनुबंध पूर्णतः व्यर्थ होते हैं। लेकिन Sec. 68 के अनुसार वह अपनी, अपनी पत्नी तथा उस पर अनिवार्यतः आश्रित परिवार के सदस्यों की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए किए गए समझौते वैध माने जाऐगे। ऐसा व्यक्ति जिसने Minor को ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई सहायता की है, तो वह इसकी पूर्ति Minor की Assets में से कर सकता है।

6. **अवयस्क के लाभ के लिए संरक्षक द्वारा किए गए अनुबंध (Contract by guardians for minor's benefit) :** अवयस्क के माता–पिता अथवा संरक्षक अवयस्क के लाभ व हित के लिए अनुबंध कर सकते हैं। ऐसे अनुबंधों में दो शर्तों का पूरा होना आवश्यक है :–

   (A) ऐसा सरंक्षक स्वयं अनुबंध करने के योग्य हो,

   (B) ऐसा अनुबंध पूर्ण रूप से अवयस्क के लाभ के लिए हो।

7. **नाबालिक द्वारा किए गए कार्यों के लिए माता-पिता उत्तरदायी नहीं होते (Parents are not liable for minor's acts) :** अवयस्क द्वारा किये गये कार्यों के लिए उसके माता–पिता को किसी भी दशा में उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। ऐसे अनुबंधी चाहे जीवन यापन की आवश्यकताओं के लिए ही क्यों न हो। यदि एक अवयस्क माता–पिता के Agent के रूप में काम कर रहा है तो उसके माता–पिता ऐसे कार्यों के लिए उत्तरदायी होगें। (नाबालिग द्वारा किए गय कार्यों के लिए माता–पिता उत्तरदायी नहीं होते)

8. **अवयस्क का प्रतिभू (Guarantor for a minor) :** यदि किसी वयस्क ने अवयस्क के साथ किए गए अनुबंधों के लिए गारन्टी दी है तो ऐसी गारन्टी देने वाला व्यक्ति अवयस्क के कार्यों के लिए उत्तरदायी माना जाऐगा।

9. **A minor can't be declared as insolvent :** एक अवयस्क को न्यायालय द्वारा दिवालय घोषित नहीं किया जा सकता। उसकी देनदारियों के लिए केवल उसकी सम्पत्ति ही उत्तरदायी होगी, वह व्यक्तिगत रूप से स्वयं नहीं। अतः उसके दायित्व किसी भी दशा में उसकी सम्पत्ति से अधिक नहीं हो सकते। इसलिए एक Minor को Insolvent घोषित नहीं किया जा सकता।

10. **Minor as a shareholder :** कम्पनी के Articles में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न होने पर एक अवयस्क किसी कम्पनी का अंशधारी बन सकता है। लेकिन वह उसकी अयायित मांगों के सम्बन्ध में उत्तरदायी नहीं होगा। इसलिए कम्पनी एक अवयस्क को केवल पूर्ण दत्त शेयर issue करती है।

    अतः उपरोक्त वर्णन से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि अवयस्क पक्षकार केवल अपराधिक मामलों के लिए ही स्वयं उत्तरदायी होता है। तथा अन्य कार्यों के लिए पक्षकारों को बाध्य कर सकता है। स्वयं को बाध्य नहीं कर सकता। इसलिए अवयस्कता एक वरदान कही जा सकती है।

(Persons Disqualified by Law)

1. **राजनैतिक अयोग्यता :** विदेशी नरेश, शत्रु देश के नागरिक, तथा विदेशी राजदूत सामान्यता अनुबंध करने के लिए अयोग्य होते है।
2. **ऊँचे पेशे वाले व्यक्ति :** बैरिस्टर तथा चिकित्सक अपनी सेवाओं के शुल्क के लिए अनुबंध करने के अयोग्य होते है।
3. **विवाहित स्त्री :** हिन्दु विवाहित स्त्री अपने निजि धन के लिए अनुबंध करने को स्वतंत्र है। किन्तु यदि विवाहित स्त्री का पति उसकी जीवन की आवश्यकताओं की व्यवस्था नहीं कर सकता तो वह ऐसी वस्तुओं की प्राप्ति के लिए अपने पति की साख गिरवी रख देने की अधिकारणी है।

पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति
[Free Consent of Parties (Sec. 13-32)]

(Meaning of Consent)

एक वैध अनुबंध का तीसरा मुख्य लक्षण पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति है।

सहमति से तात्पर्य केवल स्वीकृति नहीं है। Sec. 13 of Indian Contract Act :- ''अनुबंध के दोनों पक्षकारों में सहमति उस समय मानी जाएगी जबकि दोनों पक्षधार एक ही बात पर एक ही भावना से एक मत हो।'' यदि दोनों पक्षधारों में एक ही वस्तु

के विषय–विचारों में भिन्नता होगी तो यह सहमति मानी जाएगी।

(Free Consent)

यदि दो पक्षधारों में सहमति है तो एक वैध अनुबंध के लिए ऐसी सहमति स्वतंत्र होनी चाहिए। Sec. 14 के अनुसार 'सहमति उस समय स्वतंत्र मानी जाएगी जबकि वह निम्न तत्त्वों में से किसी भी तत्त्व से प्रभावित न हो :–

1. Coercion (उत्पीड़न)
2. अनुचित प्रभाव
3. कपट
4. मिथ्यावर्णन
5. गलती।

[By Coercion (Sec. 15)]

उत्पीड़न अथवा बल प्रयोग की परिभाषा अनुबंध अधिनियम की धारा 15 के अनुसार इस प्रकार की गई है :– ''उत्पीड़न किसी ऐसे कार्य को करना अथवा करने की धमकी देना है, जो भारतीय दण्ड विधान (Indian Penal Code) द्वारा वर्जित है अथवा किसी सम्पत्ति को अवैधानिक रूप से रोकना या रोकने की धमकी देना है। जिससे किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो और व करार करने के लिए तैयार हो जाए। उत्पीड़न प्रयोग किये जाने वाले स्थान पर भारतीय दण्ड विधान का लागू होना आवश्यक नहीं है।

(Essentials Elements of Coercion)

1. भारतीय दण्ड विधान से वर्जित कार्य को करना।
2. किसी भी ऐसे कार्य को करने की धमकी देना जो भारतीय दण्ड विधान से वर्जित है।
3. अवैध रूप से किसी सम्पत्ति को रोके रखना। अथवा रोके रखने की धमकी देना।
4. प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए इस आश्य से कि किसी व्यक्ति को किसी करार में प्रवेश कराया जाए।

उत्पीड़न का प्रभाव

(Effect of Coercion)

Acc to Sec. 19. ''यदि किसी व्यक्ति की सहमति उत्पीड़न द्वारा प्राप्त की गई है तो ऐसे अनुबंध ऐसे व्यक्ति की इच्छा पर जिसकी सहमति उत्पीड़न के आधार पर ली गई है, व्यर्थनीय होते है। यह सिद्ध करने का भार कि सहमति उत्पीड़न द्वारा ली गई है, उसी व्यक्ति की है, जिसकी सहमति इस प्रकार ली गई है।

अनुचित प्रभाव

(Undue Influence)

Sec. 16 भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 16 के अनुसार ''कोई अनबंध अनुचित प्रभाव द्वारा उस समय किया गया माना जाएगा पक्षधारों के बीच सम्बन्ध इस प्रकार का है कि इनमें से एक पक्ष दूसरे पक्ष की इच्छा को प्रभावित करता है और दूसरा पक्षधार, अनुचित लाभ पाने की इच्छा से अपनी स्थिति को प्रयोग में लाता है। ऐसे सम्बन्ध माता–पिता एवं उनकी संतान, संरक्षक व संरक्षित, प्रन्यासी व हितधारी, गुरू–शिष्य, चिकित्सक व रोगी, में होते हैं।

उपरोक्त परिभाषा के अनुसार अनुचित प्रभाव में निम्नलिखित तथ्यों का होना आवश्यक है :–

1. पक्षधारों के बीच ऐसा संबंध होना चाहिए कि एक पक्षधार दूसरे पक्षधार की इच्छा को प्रभावित कर सके।
2. ऐसी स्थिति रखने वाला व्यक्ति अपनी स्थिति का प्रयोग दूसरे पर अनुचित लाभ कमाने के लिए करे।
3. ऐसी स्थिति रखने वाला व्यक्ति अनुचित लाभ प्राप्त कर ले।

अनुचित प्रभाव का प्रभाव
(Effect of Undue Influence)

Acc to Sec. 19 (A)

1. ऐसा पक्षधार जिसकी सहमति अनुचित प्रभाव के द्वारा ली गई है। अनुबंध उसकी इच्छा पर व्यर्थनीय होगा।
2. यदि एसे पक्षकार ने, जिसकी सहमति अनुचित प्रभाव द्वारा प्राप्त की गई है, कोई लाभ प्राप्त किया है तो न्यायालय उन शर्तों पर अनुबंध को निरस्त कर सकता है। जो कि उसे न्यायोचित लगे।

Fraud (कपट) Sec. 17.

धारा 17 के अनुसार ''जब अनुबंध का एक पक्षकार अथवा उसकी सांठ–गांठ से उसका प्रतिनिधी दूसरे पक्ष का अथवा उसके प्रतिनिधि को धोखा देने के उद्देश्य से निम्न में से किसी कार्य द्वारा अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करता है तो यह कहा जाएगा कि उसने कपट किया है :–

1. किसी असत्य को जान–बूझकर सत्य बताना।
2. कभी पूरा न करने के अभिप्राय से दिया गया वचन।
3. कोई भी ऐसा कार्य अथवा भूल जिसे राजनियम स्पष्ट रूप से कपटपूर्ण मानता है।
4. किसी तथ्य को जिसका उसे वास्तविक ज्ञान है, जान–बूझकर छिपाना।

Elements of Fraud (कपट के लक्षण) :-

1. कपट क कार्य किसी पक्षकार अथवा उसके एजेंट द्वारा किया जा सकता है।
2. कपटपूर्ण कार्य किसी दूसरे को धोखा देने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए।
3. धोखा अनुबंध के पक्षकार अथवा उसके एजेंट के विरूद्ध किया जाना चाहिए।

Kinds of Fraud :

1. **प्रदर्शन द्वारा कपट :-** यदि कोई पक्षधार दूसरे पक्षधार को अनुबंध के लिए प्रेरित करने के इरादे से कोई ऐसी बात कहता है जिसको कि वह जानता है कि वह असत्य है तो प्रदर्शन द्वारा कपट होगा।
2. **सक्रिय छुपाव द्वारा कपट :-** जब एक पक्षधार किसी ऐसी बात को दूसरे पक्षधार से छिपाता है तथा वह बात उस अनुबंध के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, तो वह कपट के उत्तरदायी माना जाएगा। इस प्रकार का कपट सक्रिय छुपाव द्वारा कपट माना जाएगा।
3. **पालन न करने के इरादे से किया गया वचन :-** यदि अनुबंध करते समय किसी पक्षकार का अपने वचन को पूरा करने का कोई इरादा नहीं है तो ऐसा कार्य कपटपूर्ण माना जाएगा।
4. **ऐसा कोई कार्य जिसे राजनियम कपट मानता है :-** ऐसा कोई कार्य अथवा मूल जो राजनियम द्वारा कपट माना जाता है कपट है। जैसे प्रेसीडेन्सी टाउन इ. सोल्वेन्सी एक्ट की धारा 54 व 55 के अनुसार न्यायालय दिवालिए व्यक्ति द्वारा किसी अचल सम्पत्ति का हस्तांरण कपटपूर्ण माना जाता है।

Effects of Fraud :- ऐसा व्यक्ति जिसके साथ कपट हुआ है, उसकी निम्न अधिकार प्राप्त है :–

1. वह व्यक्ति अनुबंध को निरस्त कर सकता है।
2. अनुबंध निरस्त के साथ–साथ वह कपटपूर्ण कार्य से हुई हानि की क्षतिपूर्ति भी करा सकता है।
3. यदि अनुबंध निरस्त कर दिया गया है तो अनुबंध के अधीन यदि उसने कोई धन दिया है तो उसे वापिस माँग सकता है।

मिथ्या वर्णन
[Misrepresentation (Sec. 18)]

मिथ्या वर्णन का शब्दिक अर्थ है झूठ बोलना। ये दो शब्दों से मिलकर बना है – मिथ्या–वर्णन। मिथ्या वर्णन से आशय है असत्य और वर्णन से आशय है कथन।

मिथ्यावर्णन के लक्षण

1. मिथ्यावर्णन अनुबंध के किसी निश्चित तथ्य के सम्बन्ध में होना चाहिए, कानून के संबंध में नहीं।
2. मिथ्यावर्णन धोखा देने के उद्देश्य से नहीं होना चाहिए।
3. मिथ्यावर्णन के आधार पर दूसरा पक्षकार अनुबंध में सम्मिलित हो गया हो।

Kinds of Misrepresentation

Acc. of Indian Contract Act Sec. 18 :-

1. **निश्चात्मक कथन द्वारा :-** किसी ऐसी बात का कथन जो सत्य नहीं है, यद्यपि कहने वाला उसके सत्य व स्पष्ट होने का विश्वास करता है। – मिथ्यावणर्न है।
2. **कर्त्तव्य भंग द्वारा :-** किसी व्यक्ति द्वारा जब अपने कर्त्तव्यों को बिना धोखा देने के अभिप्रायः से इस प्रकार खण्डन किया जाता है जिससे कि उसे कुछ लाभ प्राप्त हो और दूसरे को हानि – तो इसे मिथ्यावर्णन कहेंगे।
3. **अज्ञानवश मिथ्यावर्णन के कारण गलती :-** अनुबंध के किसी पक्षकार द्वारा अनुबंध से संबंधित किसी ऐसी बात के बारे में जो अनुबंध का विषय हो कोई गलती करा देना चाहे वह कितनी ही अज्ञानवश क्यों न हो – मिथ्यावर्णन है।

गलती अथवा भूल
(Mistake)

Indian Contract Act में Mistake की परिभाषा नहीं दी गई है। गलती से हमारा अभिप्रायः किसी अनुबंध के बारे में किया गया प्रतिमूलक अथवा आधारहीन विश्वास 'गलती' है।

यदि सहमति के समय दोनों पक्षकार एक विचार के बारे में एकमत नहीं है तो अनुबंध गलती के आधार पर किया गया माना जाएगा।

Types of Mistake :-

1. Mistake of Law;
2. Mistake of Fact;

A) Mistake of Law :-

   1. अपने देश के नियम के संबंध में गलती।
   2. विदेशी कानून सम्बन्धी गलती।
   3. निजी अधिकार सम्बन्धी गलती।

B) Mistake of Fact :

   तथ्य सम्बन्धी गलती एकपक्षीय अथवा द्विपक्षीय हो सकती है। ऐसी गलती अनुबंध के किसी आवश्यक तथ्य के सम्बन्ध में होनी चाहिए।

   1. Bilateral Mistake : (द्विपत्तीय गलती) :– जब अनुबंध के दोनों पक्षधार गलती पर हो।

      Types of Bilateral Mistake :-

      a) भूल दोनों पक्षधारों ने समान रूप से की हो।
      b) गलती समझौते के किसी मुख्य तत्त्व के सम्बन्ध में होनी चाहिए।

   2. Unilateral Mistake : (एक पक्षीय गलती)

      Types of Unilateal Mistake :-

      a) अनुबंध के पक्षधार संबंधी गलती।
      b) प्रपत्र हस्ताक्षरित की प्रकृति के सम्बन्ध में गलती।

तथ्य सम्बन्धी गलती :- यदि गलती केवल एक पक्षधार द्वारा हुई हो तो इसे गलती नहीं माना जाएगा। जब तक कि यह सिद्ध न हो जाए की दूसरे पक्षधार ने कपट या मिथ्यावर्णन किया है।

प्रतिफल एवं उद्देश्य
(Consideration and Object)

किसी वैध अनुबंध होने का चौथा आवश्यक लक्षण है कि अनुबंध के न्यायोचित प्रतिफल तथा उद्देश्य होना चाहिए।

Consideration and Object :- दो पक्षधारों के अलग–अलग दष्टिकोणों से एक ही विषय के दो नाम हैः– प्रतिफल और उद्देश्य। एक वस्तु एक पक्षधार के दष्टिकोण से वचन का प्रतिफल होता है, वही दूसरे व्यवहार के दष्टिकोण से वचन का उद्देश्य लेता है। और इसी प्रकार इसका विपरीत है।

Meaning of Consideration :- साधारण भाषा में प्रतिफल से आशय बदले में कुछ से है। प्रत्येक अनुबंध में प्रतिफल का होना आवश्यक है। बिना प्रतिफल के अनुबंध व्यर्थ होता है।

Elements or Characterisitcs of Considerations :-

1. **प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर दिया जाना चाहिए** :- प्रतिफल सदैव वचनदाता की इच्छा या प्रार्थना पर ही दिया जाना चाहिए। किसी अन्य व्यक्ति की इच्छा या प्रार्थना पर नहीं क्योंकि तब यह व्यर्थ होगा।
2. **प्रतिफल वचनगहीता अथवा अन्य व्यक्ति की ओर से हो सकता है** :- यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिफल वचनगहीता द्वारा ही दिया जाए। किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भी दिया जा सकता है। लेकिन वचनगहीता अनुबंध का एक पक्षधार होना चाहिए।
3. **प्रतिफल कुछ कार्य, विरति या वचन हो सकता है** :- प्रतिफल किसी कार्य को करने अथवा न करने के लिए हो सकता है। अर्थात् यह सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है।
4. **प्रतिफलभूत, वर्तमान व भावी हो सकता है** :- जिसमें वर्तमान प्रतिफल को सम्पादित और भावी प्रतिफल को सम्पादनीय कहते है।
5. **कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिए** :- क्योंकि बिना प्रतिफल के अनुबंध व्यर्थ होते है।
6. **पथक प्रतिफल के लिए पथक प्रतिफल** :- अनुबंध के लिए पथक प्रतिफल भी वैध होना चाहिए। अवैधानिक प्रतिफल के द्वारा किया गया अनुबंध भी अवैध होगा। प्रतिफल अवैध होगा यदि वह
   - अ) कानून द्वारा निषेध है।
   - ब) वह कपटपूर्ण है।
   - ग) वह लोकनीति के विरूद्ध है।

Contract Without Consideration is Void

Or

No Consideration, no Contract

प्रतिफल रहित ठहराव व्यर्थ होते है, अपवाद :- यह एक सामान्य नियम है कि प्रतिफल नहीं तो, अनुबंध नहीं। बिना प्रतिफल के अनुबंध व्यर्थ होते हैं। अतः किसी अनुबंध में प्रतिफल होना नितान्त आवश्यक है। न्यायालय प्रतिफल की पर्याप्तता पर विचार नहीं करता। यह पक्षधारों की परस्पर सहमति के आधार पर तैयार होता है।

प्रतिफल के बिना दिया गया वचन एक उपहार मात्र होता है और प्रतिफल के बदले में जो वचन दिया जाता है वह वैध व्यवहार है।

Exceptions (अपवाद) :- यह पहले भी कहा जा चुका है कि वैध प्रतिफल के न होने पर सभी अनुबंध व्यर्थ माने जाते हैं। परन्तु धारा 25 के अनुसार इसके कुछ अपवाद हैं। अर्थात् वैध प्रतिफल न हाने पर भी अनुभव माने जाते हैं :–

1. स्वाभाविक प्रेम व स्नेह के कारण दिया गया वचन।
2. स्वेच्छा से किए गए कार्य की क्षतिपूर्ति का वचन।
3. समय वर्जित ऋणों के भुगतान का वचन।
4. एजेंसी के अनुबंध
5. दान का वचन
6. प्रतिफल रहित निक्षेप आदि ऐसे अनुबंध है जो वैध प्रतिफल के न होने पर भी वैध अनुबंध माने जाते हैं।

प्रतिफल की पर्याप्तता

(Adequacy of Considerations)

Sec. 25 (2) :- में यह स्पष्टतया बताया गया है कि कोई ठहराव केवल अपर्याप्त प्रतिफल होने के कारण व्यर्थ नहीं होगा, यदि वचनदाता ने स्वतंत्र सहमति प्रदान की है, परन्तु न्यायालय यह निश्चित करते समय कि सहमति स्वतंत्र रूप से प्रदान की गई थी या नहीं प्रतिफल की अपर्याप्तता पर भी विचार कर सकता है। इससे स्पष्ट है कि यदि सहमति स्वतंत्र रूप से प्रदान की गई है तो अपर्याप्त प्रतिफल वाला अनुबंध भी वैध होगा।

अवैधानिक प्रतिफल व उद्देश्य

(Unlaw Consideration and Objective)

एक वैध अनुबंध के लिए प्रतिफल होना ही आवश्यक नहीं है वरन् प्रतिफल भी वैध होना चाहिए।

Acc. to Contract Act Sec. 2-3 :- निम्नलिखित दशाओं में उद्देश्य व प्रतिफल अवैधानिक होते हैं :–

1. यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित है :– तो वह अवैध होगा।
2. यदि कोई ठहराव इस प्रकार का है कि यदि उसकी अनुमति दी जाए तो वह अधिनियम के आदेशों के निष्फल कर देगा – अवैध होगा।
3. जिस अनुबंध का उद्देश्य कपटमय हो अवैध होगा।
4. दूसरे व्यक्ति को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हानि पहुँचाने का उद्देश्य भी अवैध होगा।
5. यदि न्यायालय उस उद्देश्य को अनैतिक तथा लोकनीति के विरूद्ध समझता है तथा वह अनैतिक सम्बन्धों को प्रोत्साहन देता है तो भी वे अवैध होगें।

आंशिक रूप से अवैध प्रतिफल व उद्देश्य

(Partially Illegal Consideration and Object)

यदि कोई अनुबंध विभाजित किया जा सकता है जिसका एक भाग अवैध व दूसरा भाग वैध भाग है तो केवल वैध अंश ही वैध माना जाएगा और प्रवर्तनीय होगा। अवैध अंश को अवैध उद्देश्य के कारण प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता।

यदि वैध व अवैध को अलग–अलग नहीं किया जा सकता तो सम्पूर्ण अनुबंध ही व्यर्थ होगा तथा अप्रवर्तनीय होगा। (Sec. 24) वैकल्पिक वचन की स्थिति में, जहाँ पहली शाखा वैध व दूसरी अवैध है तो केवल वैध शाखा का ही प्रवर्तन हो सकता है। (Sec. 58)

स्पष्टतया व्यर्थ घोषित ठहराव

(Expressly Void Agreements)

अनुबंध के लिए एक मुख्य लक्षण यह है कि, समझौता ऐसा नहीं होना चाहिए कि राजनियम द्वारा व्यर्थ घोषित किया गया हो। अनुबंध अधिनियम के अन्तर्गत कुछ समझौतों को व्यर्थ घोषित किया गया है। तथा कुछ अनुबंध किये जाने के बाद परिस्थितियों के कारण व्यर्थ घोषित किए जाते हैं। एक व्यर्थ समझौता प्रारम्भ से ही व्यर्थ होता है व किसी भी कानूनी कार्यावाही को जन्म नहीं देता। किन्तु व्यर्थ अनुबंध प्रारम्भ में वैध होता है, लेकिन कुछ परिस्थितियों के कारण बाद में व्यर्थ हो जाते हैं। (जैसे – किसी कानून व नियम के प्रवर्तनीय हो जाने पर)

यहाँ पर उन समझौतों को वर्णन किया गया है जोकि राजनियम द्वारा पूर्ण रूप से व्यर्थ घोषित किए गए हैं :–

ऐसे सभी समझौते जो प्रारम्भ से ही व्यर्थ होते हैं, राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं कराए जा सकते तथा उन्हें व्यर्थ समझौते कहा जाता है। भारतीय अनुबंध अधिनियम में निम्न समझौतों को व्यर्थ घोषित किया गया है :–

1. **विवाह में रुकावट डालने वाले ठहराव (Agreements in Restraint of Marriage)** (Sec. 26)

   किसी भी वयस्क व्यक्ति के विवाह में रूकावट डालने वाले समझौते व्यर्थ होते हैं। किन्तु किसी अवयस्क की शादी में रुकावट डालने वाले ठहराव व्यर्थ नहीं होते।

   विवाह में रुकावट डालने वाले ठहराव लोकनीति के विरूद्ध होने के कारण भी व्यर्थ है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा से शादी करने का अधिकार है।

   यदि ऐसी रूकावट कानूनी मान्य है तो समझौता वैध माना जाएगा। उदाहरण के तौर पर – यदि एक हिन्दु पति द्वारा अपनी पत्नी के साथ किया गया यह समझौता कि वह उसके (पत्नी) जीवनकाल में दूसरा विवाह नहीं करेगा, पूर्णतया वैध है।

2. **व्यापार में रुकावट डालने वाले ठहराव (Agreement in Restraint of Trade)** (Sec. 27)

   प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी रोजी–रोटी कमाने के लिए कोई भी कार्य करने का अधिकार उसका संवैधानिक अधिकार है। यदि कोई ठहराव किसी व्यक्ति को कोई कार्य, धन्धा व पेशा करने से रोकता है तो वह व्यर्थ होगा। व्यर्थ से अभिप्रायः है कि ऐसे ठहराव उस सीमा तक व्यर्थ माने जाएगे जिस सीमा तक वह व्यापार में रुकावट डालने से संबंधित है। 'उस सीमा तक' से अभिप्रायः है कि यदि कोई समझौता आंशिक रूप से वैध तथा आंशिक रूप से अवैध है, तथा वे दोनों भाग अलग–अलग किये जा सकते हैं तो केवल वैध भाग उचित होगा तथा अवैध भाग व्यर्थ माना जाएगा।

3. **वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाले ठहराव (Agreement in Restraint of Legal Proceedings)** (Sec. 28)

   ऐसा प्रत्येक समझौता जो किसी पक्षकार को उसके कानूनी अधिकारों को प्रर्वतन कराने से रोकता है अथवा समाज को सीमित करता है। जिसके अन्दर वे अपने अधिकार को प्रवर्तनीय करा सकते है, व्यर्थ माना जाएगा।

   Acc. of Sec. 28 :- वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाले ठहराव दो प्रकार के हैं :–

   1) ऐसे ठहराव जो एक पक्ष को अपने अधिकार को न्यायालय द्वारा प्रवर्तन कराने से रोकता है।
   2) ऐसे समझौते जो सीमा अधिनियम में दिय गए समय को सीमित करते हैं।

4. **अनिश्चित ठहराव (Uncertain Agreements)** (Sec. 26)

   ऐसे सभी समझौते जिनका अर्थ स्पष्ट या निश्चित नहीं किया जा सकता अथवा स्पष्ट नहीं हैं, व्यर्थ है।

   Ex, x, y के साथ 500 टन तेल क्रय करने का अनुबंध करता है। यहाँ पर यह स्पष्ट नहीं है कि x किस प्रकार का तेल क्रय करना चाहता है। यह ठहराव अनिश्चितता के कारण व्यर्थ है।

5. **बाजी के ठहराव (Wagering Agreements)** (Sec. 30)

   बाजी के समझौते के अन्तर्गत किसी अनिश्चित घटना के घटित हो जाने पर एक पक्ष एक निश्चित धनराशि या कोई वस्तु दूसरे पक्ष को देने के लिए सहमत होता है। ऐसे समझौते बाजी के ठहराव है और व्यर्थ है। बाजी के ठहराव को आम भाषा में शर्त भी कहा जाता है। बाजी के ठहराव में पक्षकारों का हित जीत–हार के अतिरिक्त और कोई नहीं होता।

6. **असम्भव कार्य करने के ठहराव (Agreements to do Impossible Acts)** Sec. 56 :- किसी भी ऐसे कार्य को करने का ठहराव जो कि बिल्कुल असंभव है। जैसे जादू से किसी खजाने का पता लगाना, आकाश से तारें तोड़ कर लाना आदि। ऐसे ठहराव प्रारम्भ से ही व्यर्थ होते हैं।

   ऐसे ठहराव जो अनुबंध करते समय वैध थे लेकिन अनुबंध हो जाने के बाद किन्हीं कारणों से असंभव हो जाता है जो ऐसे अनुबंध जिस समय असंभव हो जाते है, व्यर्थ हो जाते हैं।

   ऐसी असंभवता निम्न कारणों से हो सकती है :–

a) किसी कानून में परिवर्तन के कारण।

b) अनुबंध की विषय वस्तु नष्ट हो जाने पर।

c) किसी विशेष घटना के घटित होने पर आदि।

अपवाद

(Exceptions)

उपरोक्त व्यर्थ ठहरावों के अपवाद भी है जो निम्न हैं :–

1. व्यापार की ख्याति की बिक्री का ठहराव।
2. सांझेदारों पर कोई दूसरा व्यापार करने पर प्रतिबंध
3. सांझेदारी की समाप्ति पर सांझेदारों द्वारा किया गया अनुबंध।
4. निर्माताओं द्वारा अपने माल का मूल्य निश्चित करने के नियम आदि।

अध्याय-4
अनुबंधों का निष्पादन
(Performance of Contracts) (Sec. 37-61)

अनुबंधों से सम्बन्धित पक्षकारों द्वारा अनुबंध के अन्तर्गत दिए गए अपने–अपने वचनों की पूर्ति करना अनुबंध का निष्पादन कहलाता है। जब तक कि Sec. 37 के अनुसार ऐसे निष्पादन से मुक्ति न दे दी गई हो। पक्षकारों को या तो अपने वचनों का निष्पादन करना चाहिए या उसका प्रस्ताव करना चाहिए।

भारतीय अनुबंध अधिनियम के अनुसार 'निष्पादन' के अन्तर्गत निम्न बातें आती हैं :–

A) अनुबंध के पक्षकारों का उत्तरदायित्व (Sec. 37) :-

निष्पादन की परिभाषा :- अनुबंध के निष्पादन से आशय अनुबंध की समस्त शर्तो को पूर्ण रूप से पूरा करने से है।

क्या निष्पादन आवश्यक है ? **(Sec. 37)**

के अनुसार यदि राजनियम द्वारा निष्पादन त्याग या मुक्त न कर दिया गया हो अथवा दोनों पक्षकारों के बीच निष्पादन न करने का समझौता हो गया तो तो पक्षकारों को ऐसे निष्पादन की आवश्यकता नहीं। यदि निष्पादन से पहले किसी पक्षधार की मत्यु हो जाती है तो वचनों के निष्पादन का भार उनके वैध प्रतिनिधियों पर होगा।

अनुबंध को निष्पादन दो प्रकार से किया जा सकता है :–

1. वास्तविक निष्पादन
2. प्रस्तावित निष्पादन

निष्पादन किसके द्वारा :- (Sec. 40-45) :-

अनुबन्ध के वचनों के निष्पादन के सम्बन्ध में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि वचनों का निष्पादन किसके द्वारा किया जाए स्वयं उनके द्वारा या उनकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा।

1. **वचनदाता द्वारा (By Promisor) : Sec. 40 :-** यदि अनुबंध के पक्षकारों का अभिप्राय यह था कि वचनदाता स्वयं ही अपने वचन का पालन करे तो अनुबंध का निष्पादन स्वयं वचनदाता द्वारा ही किया जाना चाहिए।
2. **By Agent :-** जो अनुबंध व्यक्तिगत प्रकृति के नहीं होते उनका निष्पादन वचनदाता द्वारा नियुक्त Agent द्वारा भी किया जा सकता है।
3. **कानूनी उत्तराधिकारी (By Legal Representation) :-** यदि वचन के निष्पादन से पूर्व वचनदाता की मत्यु हो जाती है तो ऐसे वचन का निष्पादन उसके कानूनी उत्तराधिकारी करने के लिए बाध्य है। बशर्ते की अनुबंध से कोई विपरीत आशय प्रकट न होता हो।
4. **तीसरे पक्षवार द्वारा (By Third Party) :-** यदि कोई वचनगहिता वचनदाता के वचन का निष्पादन किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा किया जाना स्वीकार कर लेता है तो वह पुनः वचनदाता को उसके लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता।

Joint Promisee and its Performance :- (Sec. 42-45)

इस संबंध में निम्नलिखित प्रावधान लागू होते हैं :–

1. **संयुक्त दायित्व :-** यदि दो या दो से अधिक व्यक्तियों ने मिलकर कोई संयुक्त वचन दिया है तो वे सभी वचनदाता अपने जीवनकाल में संयुक्त रूप से उस वचन को पूरा करने के लिए बाध्य हैं। यदि उनमें से किसी वचनदाता की मत्यु हो जाती है तो प्रतिनिधियों को वचन पूरा करना होगा।

2. **किसी भी एक वचनदाता द्वारा निष्पादन :-** किसी विपरीत अनुबंध के अभाव में, वचनगहीता संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक वचनदाता को भी सम्पूर्ण वचन के निष्पादन करने के लिए बाध्य करने का अधिकार होता है।
3. **समान अंशदान का दायित्व :-** यदि संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक को सम्पूर्ण वचन को निष्पादन के लिए विवश होना पड़ा है तो वह अन्य सह वचनदाताओं से समान अंशदान की मांग कर सकता है।
4. **अंशदान न मिलने पर हानि का बँटवारा :-** संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक के दिवालिया हो जाने पर शेष वचन दाता उसके हिस्से की हानि भी पूरी करेंगे।
5. **संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक को भारमुक्त करने का प्रभाव :-** यदि वचनगहीता , संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक को मुक्त कर देता है तो इस प्रकार एक को मुक्त करने का प्रभाव अन्य वचनदाताओं की मुक्ति नहीं होगी तथा इस प्रकार मुक्त किया गया वचनदाता भी अन्य संयुक्त वचनदाताओं के प्रति भी अपने दायित्व से मुक्त नहीं होता।

Law Relating to Time and Place for Performance :- (Sec. 46-50)

भारतीय अनुबंध अधिनियम ने निष्पादन के लिए समय तथा स्थान की व्यवस्था निम्नलिखित नियमों के रूप में की है :–

1. **Sec. 46 :-** जहाँ अनुबंध में वचनदाता को अपना वचन वचनगहीता के आवेदन के बिना ही निष्पादित करना है और निष्पादन के लिए अनुबंध में कोई समय निर्दिष्ट नहीं किया गया है तो ऐसे वचन को निष्पादन उचित समय में किया जाना चाहिए।
2. **Sec. 47 :-** यदि वचन के निष्पादन का दिन निश्चित है और वचनदाता को अपना वचन बिना किसी प्रस्ताव के ही निष्पादित करना है तो वचनदाता को वचन का निष्पादन उस निश्चित तिथि को सामान्य व्यापारिक समय में किसी भी समय करना चाहिए।
3. **Sec. 48 :-** यदि वचन का निष्पादन किसी निश्चित दिन किया जाता है और वचनदाता को ऐसा वचनगहिता के आवेदन पर निष्पादित करना है तो वचनगहीता का यह कर्त्तव्य है कि वचनदाता से उचित स्थान पर व व्यापारिक समय के दौरान आवेदन करे।
4. **Sec. 49 :-** यदि वचन के लिए आवेदन न किया जाना हो और निष्पादन के लिए कोई स्थान निर्धारित नहीं है तो वचनदाता का यह कर्त्तव्य है कि वह वचनगहिता से कोई यथोचित स्थान निश्चित करने का आवेदन करे और उसी स्थान पर अपने वचन का निष्पादन करें।
5. **Sec. 50 :-** वचनदाता द्वारा वचन का निष्पादन किसी भी ऐसी विधि से या किसी भी ऐसे समय पर किया जा सकता है जिसके लिये वचनगहिता आवेदन करे या अनुमति दे।

समय अनुबन्ध का सारतत्व
(Time as Essence of Contract)

जब किसी अनुबन्ध में उसके निष्पादन के लिए नियम समय दिया होता है, तो यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि पक्षकारों का अभिप्राय उसके समय को अनुबंध का सारतत्व मानने का था या नहीं। यदि उल्लेखित समय अनुबंध का सारतत्व माना जाता है, और अनुबन्ध निर्दिष्ट समय में निष्पादित नहीं किया जाता, तो दूसरा पक्षकार या मान सकता है कि अनुबंध का खण्डन कर दिया गया है तथा वह क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

इसके विपरीत, यदि समय इस प्रकार अनुबंध का सारतत्व नहीं माना जाता, तो दूसरा पक्षकार अनुबंध का खण्डित हुआ नहीं मान सकता। परन्तु वह निष्पादन न होने के कारण होने वाली हानि की पूर्ति कराने का अधिकारी होगा। यदि वचनदाता द्वारा नियम समय पर वचन पूरा न करने के कारण वचनग्रहीता उस नियम समय के अतिरिक्त किसी दूसरे समय पर वचन का पूरा होना स्वीकार कर ले तो वचनग्रहीता नियम समय पर वचन के पूरा न होने के कारण किसी क्षतिपूर्ति की मांग तब तक नहीं कर सकता जब तक कि ऐसी स्वीकृति के समय वह ऐसा करने के अभिप्राय की सूचना वचनदाता को नहीं दे देता।

पारस्परिक वचन एवं उनका निष्पादन
(Reciprocal Promises and their Performance) (Sec. 51-58)

पारस्परित वचन (Reciprocal Promises) – भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (1) के अनुसार, ''वचन जो एक–दूसरे के लिए प्रतिफल या आंशिक प्रतिफल होते हैं पारस्परिक वचन कहलाते हैं।'' अनुबन्ध एक–पक्षीय (Unilateral) अथवा

द्विपक्षीय (Bilateral) हो सकते हैं। एक–पक्षीय अनुबन्ध में एक पक्षकार अपने वचन को पूरा कर चुका होता है, केवल दूसरे पक्षकार को अपने वचन का निष्पादन करना शेष रह जाता है तो यह प्रश्न उठता है कि उत्तरदायी पक्षकार अपने वचन को कब पूरा करे। द्विपक्षीय अनुबन्ध में जहां दोनों वचनों को पूरा करना बाकी है यह बड़ा ही कठिन प्रश्न है कि पक्षकार अपने पारस्परिक वचनों को किस क्रम में पूरा करे। इस दष्टिकोण से वचनों को निम्नलिखित भागों में बांटा गया है :–

1. **अनुबंध जिसमें पारस्परिक वचनों को एक-साथ निष्पादित करना है** (Mutual and Concurrent Promises) – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 51 के अनुसार जब अनुबंध में ऐसे पारस्परिक वचन होते हैं जिन्हें एक–साथ पूरा किया जाना है तो ऐसे अनुबन्धों में किसी भी वचनदाता को उस समय तक अपने वचन को निष्पादित करने की आवश्यकता नहीं जब तक वचनग्रहीता अपने पारस्परिक वचन को निष्पादित करने के लिए तैयार एवं इच्छुक नहीं है। दूसरे शब्दों में, यदि एक पक्षकार अपने वचन को पूरा करने के लिए तैयार है और इसके लिए प्रस्ताव भी करता है, किन्तु दूसरा पक्ष ऐसे प्रस्ताव की ओर ध्यान नहीं देता अर्थात् वह अपने वचन को पूरा करने से मना कर देता है तो ऐसी स्थिति में यह माना जायेगा कि पहला पक्षकार जो कि वचन को पूरा करने के लिए तैयार है, दूसरे पक्ष के विरूद्ध जो कि ठहराव के निष्पादन के लिए तैयार नहीं है, क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

2. **पारस्परिक एवं स्वतंत्र वचन** (Mutual and Indepdendent Promises) – ऐसे अनुबन्ध जिनमें प्रत्येक पक्षकारों को अपने–अपने वचन को दूसरे पक्षकार की प्रतीक्षा किये बिना ही स्वतंत्र रूप से पूरा करना पड़ता है वे पारस्परिक एवं स्वतंत्र वचन कहलाते हैं, यदि एक पक्षकार अपने वचन का पालन नहीं करता तो वह दूसरे पक्ष की हानि की पूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा क्योंकि वह यह नहीं कह सकता कि अपने वचन का पालन इसलिए नहीं किया क्योंकि दूसरे पक्ष ने अपने वचन का पालन नहीं किया।

सशर्त एवं आश्रित वचन
(Conditional and Dependant Promises)

ऐसे अनुबन्ध, जिनमें किसी एक वचन का निष्पादन किसी दूसरे वचन के निष्पादन पर निर्भर करता है, अर्थात् एक वचन के निष्पादन की आवश्यकता उस समय तक नहीं होगी जब तक कि दूसरे वचन का निष्पादन न कर दिया जाए, सशर्त एवं आश्रित वचन कहलाते हैं।

पारस्परिक वचनों के निष्पादन का क्रम
(Order of Performance of Reciprocal Promises)

1. **जहाँ पारस्परिक वचनों का निष्पादन एक ही समय किया जाता है** (Simultaneous Performance of Reciprocal Promises) – धारा 51 के अनुसार जब अनुबन्ध ऐसे पारस्परिक वचनों के सम्बन्ध में है जिन्हें एक ही साथ पूरा करना है, तो प्रस्तावक को अपने वचन को उस समय तक पूरा करने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि वचनग्रहीता अपने पारस्परिक वचन को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं।

2. **पारस्परिक वचनों के निष्पादन का क्रम** (Order of Performance of Reciprocal Promises) – धारा 52 के अनुसार यदि अनुबन्ध में पारस्परिक वचनों के निष्पादन का क्रम निश्चित है, तो वचनों का निष्पादन उसी क्रम में होना चाहिए तथा यदि यह क्रम अनुबंध द्वारा निश्चित नहीं किया गया है, तो वे उस क्रम से निष्पादित किये जाएगें जो उस व्यवहार की प्रकृति के अनुसार आवश्यक है।

3. **जब अनुबन्ध का एक पक्षकार अनुबन्ध के निष्पादन में रुकावट डालता है** (When one party prevents other from performing Promise) – धारा 53 के अनुसार, जब कोई अनुबन्ध पारस्परिक वचन के सम्बन्ध में है और अनुबन्ध का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को उसके वचन को पूरा करने से रोकता है, तो इस प्रकार रोके जाने वाले पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय होता है और अनुबन्ध के पूरा न होने के फलस्वरूप जो उसे क्षति हुई है उसकी पूर्ति वह दूसरे पक्षकार से पाने का अधिकारी है।

4. **जो वचन पहले निष्पादित होना चाहिए उसके निष्पादन न करने का प्रभाव** (Effect of Default as to Promise to be Performed First) – धारा 54 के अनुसार यदि अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार एक पक्षकार को अपने वचन का

निष्पादन पहले करना है एवं निष्पादन के पश्चात् ही दूसरा पक्षकार निष्पादन करने के लिए उत्तरदायी है, उस दशा में यदि पहले वचन निष्पादित करने वाला पक्षकार असफल रहता है तो वह दूसरे पक्षकार को निष्पादन के लिए बाध्य नहीं कर सकता अपितू स्वयं उसे ही दूसरे पक्षकार की हानियों की पूर्ति करनी होगी।

असम्भव कार्यों के सम्बन्ध में पारस्परिक वचन

(Reciprocal Promises Regarding Impossible Acts)

धारा 58 के अनुसार यदि अनुबन्ध से सम्बन्धित वचनों का निष्पादन असम्भव हो जाए तो अनुबन्ध से सम्बन्धित पक्षकार अपने दायित्वों से मुक्त हो जाते हैं। असम्भवता दो दशाओं में हो सकती है :–

1. किसी ऐसे कार्य को करने का ठहराव जिसका किया जाना आरम्भ से ही असम्भव है, व्यर्थ होता है, और ऐसा कोई ठहराव 'व्यर्थ ठहराव' कहलाता है। उदाहरण के लिए, 'अ' 'ब' के साथ जादू द्वारा किसी खजाने का पता लगाने का ठहराव करता है। वह ठहराव व्यर्थ है।
2. किसी ऐसे कार्य को करने का अनुबन्ध जिसका किया जाना अनुबन्ध हो जाने से बाद असम्भव हो जाता है, अथवा किसी ऐसी घटना के कारण, जो वचनदाता नहीं रोक सकता था, अवैधानिक हो जाता है, उस समय व्यर्थ हो जाता है जबकि कार्य का करना इस प्रकार असम्भव या अवैधानिक हो जाता है। उदाहरण के लिए, 'अ' और 'ब' एक–दूसरे से शादी करने का अनुबन्ध करते हैं। शादी से पहले ही 'अ' पागल हो जाता है। यह अनुबन्ध व्यर्थ है।

वैध एवं अवैध कार्य करने के पारस्परिक वचन

(Reciprocal Promises to Perform Legal and Illegal Acts)

धारा 57 के अनुसार, "जब पक्षकार ऐसे पारस्परिक वचन देते हैं जिसमें कुछ वैधानिक कार्य करने का वचन है तथा किसी विशिष्ट परिस्थिति में कुछ अवैधानिक कार्य करने का वचन है, तब वचनों का पहला समूह एक वैध अनुबन्ध होगा तथा दूसरे समूह व्यर्थ ठहराव कहलायेगा। उदाहरण के लिए, 'अ' अपने व्यापार में 'ब' को मैनेजर नियुक्त करता है तथा 1,000 रू. मासिक वेतन तय होता है, साथ ही 'ब' को आयातिकत माल ब्लैक मार्केट में बेचने का काम भी सौंपा जाता है, जिसके प्रतिफल में 'अ' 'ब' को लाभ का 10% पारिश्रमिक देने का वचन देता है। यहां 'ब' के द्वारा मैनेजर के रूप में किया जाने वाला कार्य का वचन वैध है, अतः अनुबन्ध का पहला भाग प्रवर्तनीय होगा, जबकि दूसरा कार्य अवैधानिक है अतः अनुबन्ध का दूसरा भाग व्यर्थ ठहराव कहलायेगा।

वैकल्पिक वचन जिसमें एक शाखा अवैधानिक है – धारा 58 के अनुसार वैकल्पिक वचनों की स्थिति में यदि एक विकल्प वैधानिक है तथा दूसरा अवैधानिक है तो केवल वैधानिक वचन ही प्रवर्तनीय होता है।

भुगतानों का नियोजन

(Appropriation of Payments) (Sec. 59-61)

व्यापारिक लेनदेनों में यह आवश्यक नहीं है कि एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर केवल एक ही ऋण हो। एक की व्यक्ति के दूसरे पर अनेक ऋण हो सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में जब एक भुगतान करता है तो सभी ऋणों के भुगतान के लिए पर्याप्त नहीं है तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह भुगतान किये ऋण के निपटारे के सम्बन्ध में माना जाए।

धारा 59 के अनुसार जब किसी ऋणी द्वारा ऋणदाता को पथक–पथक कई ऋण देने हैं और ऋणी स्पष्ट सूचना द्वारा किसी एक ऋण का भुगतान करता है, तो ऋणदाता का चाहिए कि धन को स्वीकार कर लेने पर उस विशेष ऋण के सम्बन्ध में ही धन का नियोजन करे।

धारा 60 के अनुसार जब ऋणी भुगतान करते समय कोई स्पष्ट सूचना नहीं देता तथा परिस्थितियों से भी यह ज्ञात नहीं होता कि भुगतान किस ऋण के सम्बन्ध में किया गया है, तब ऋणदाता अपनी इच्छा से उस भुगतान को किसी भी वैध ऋण के सम्बन्ध में मान सकता है, भले ही वह ऋण अवधि–वर्जित ही क्यों न हो।

धारा 61 के अनुसार जब ऋणदाता अथवा ऋणी दोनों में से कोई ऋण नियोजन के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख नहीं करते हैं तो ऋण के भुगतान का प्रयोग ऋणों के समय–क्रम (In order to time) के आधार पर किया जायेगा, चाहे वह ऋण अवधि वर्जित हो और वह बिना किसी स्पष्ट आदेश के धन भेजता है तो ऐसी दशा में ऋणदाता को भुगतान का नियोजन सब ऋणों

में से उस तिथि पर देय ऋणों के अनुपात में करना चाहिए। उदाहरण के लिए, उनको 'ब' का ऋण निम्नानुसार भुगतान करना है –

(*i*) 2,500 रू. अवधि वर्जित है (Time-barred)।

(*ii*) 300 रू. 25 जनवरी, 1986 को भुगतान करना है।

(*iii*) 500 रू. 25 जनवरी, 1986 को भुगतान करना है।

(*iv*) 4,000 रू. 10 मार्च, 1986 को भुगतान करना है।

'अ', 'ब' को 3,300 रू. भुगतान करता है किन्तु नियोजन के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं देता और न 'ब' ही उसका नियोजन करता है। इस स्थिति में 2,500 रूपये प्रथम ऋण तथा शेष 800 रूपये में से 300 रूपये द्वितीय ऋण तथा 500 रूपये ततीय ऋण के सम्बन्ध में नियोजित माने जायेंगे। इस सम्बन्ध में मिल्स बनाम फाक्स (Mills *Vs.* Fowkes) का मामला महत्वपूर्ण है जिसके अन्तर्गत एक ऋणी पर दो ऋण क्रमशः 100 पौंड तथा 150 पौंड के थे। इनमें से पहला ऋण अवधि वर्जित हो गया था। ऋणी ने 15 पौंड का भुगतान किया परन्तु यह नहीं बताया कि यह भुगतान किस ऋण के लिए नियोजित किया जाए। यह निर्णय हुआ कि ऋणी ने 15 पौंड के भुगतान के लिए नियोजन नहीं किया इसलिए ऋणदाता उसे अवधि वर्जित ऋण के लिए नियोजन कर सकता है।

इसी प्रकार, हैलटीज एस्टेट (Halleti's Estate) के विवाद में न्यायाधीश ने निर्णय किया कि यदि कोई व्यक्ति बैंक में खाता खोलता है जिसमें वह ट्रस्टी के रूप में ट्रस्ट का कुछ धन तथा कुछ अपना धन जमा करता है तथा लगातार धन निकालता और जमा करता रहता है, तो विवाद की स्थिति में प्रत्येक निकासी पहले उसे अपने धन में से तथा बाद में ट्रस्ट के धन में से मानी जायेगी तथा प्रत्येक जमा पहले ट्रस्ट की राशि के लिए तथा बाद में उसकी अपनी राशि के लिए मानी जायेगी।

अनुबन्धों की समाप्ति

(Discharge or Termination of Contracts) (Sec. 62-67)

किसी अनुबंध में वचनदाता तथा वचनग्रहीता दो पक्षकार होते हैं। अनुबन्ध होने पर इन दोनों ही पक्षकारों के कुछ दायित्व हो जाते हैं। जब इन दायित्वों का अन्त हो जाता है, तब यह कहा जाता हे कि अनुबन्ध समाप्त हो गया।

अनुबन्ध करते समय पक्षकारों का उद्देश्य वचनों के निष्पादन से ही होता है और साधारणतया ऐसा निष्पादन हो ही जाता है। इसलिए निष्पादन अनुबन्ध की समाप्ति का सबसे प्रमुख ढंग है। इसके अतिरिक्त, कुछ ऐसी भी परिस्थितियां हैं जिनमें पक्षकारों को अपने वचनों का निष्पादन नहीं करना पड़ता, वह अपने पारस्परिक दायित्वों से बिना–निष्पादन के मुक्त हो जाते हैं। यह सब परिस्थितियां अनुबन्ध की समाप्ति के अन्य ढंग कहे जा सकते हैं। इस प्रकार अनुबंध की समाप्ति निम्नलिखित ढंगों में से किसी भी ढंग से हो सकती है –

1. निष्पादन द्वारा (By Performance)
2. पारस्परिक सहमति या समझौते से (By Mutual Consent or Agreement)
3. निष्पादन की असम्भवता से (By Impossibility of Performance)
4. समय व्यतीत हो जाने पर (By Lapse of Time)
5. राजनियम के कार्यशील होने पर (By Operation of Law)
6. खण्डन द्वारा (By Breach)

1. **निष्पादन द्वारा समाप्ति** (Discharge by Performance) – निष्पादन अनुबन्ध समाप्ति की सबसे अधिक प्रचलित विधि है। अनुबन्ध के निष्पादन से आशय अनुबन्ध की समस्त शर्तों को पूर्ण रूप से पूरा करने से है। उदाहरण के लिए 'अ' अपना मकान 'ब' को 10000 रुपये में बेचने का अनुबन्ध करता है। इस दशा में जब 'ब' 10000 रुपये 'अ' को देकर मकान प्राप्त कर लेता है तब अनुबन्ध समाप्त हुआ माना जाता है क्योंकि दोनों पक्षकारों ने अपने–अपने वचन का पालन कर दिया।

2. **पारस्परिक सहमति द्वारा समाप्ति** (Discharge by Mutual Consent or Agreement) – जिस प्रकार पक्षकारों की सहमति से अनुबन्ध की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार पक्षकारों की सहमति या समझौते से अनुबन्ध की समाप्ति भी हो

सकती है। धारा 62 के अनुसार यदि पक्षकार अनुबन्ध के बदले नया अनुबंध करते हैं, या वर्तमान अनुबन्ध को रद्द करते हैं, या अनुबन्ध में परिवर्तन करते हैं, तब मूल अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नहीं रहती।

पारस्परिक सहमति से अनुबन्ध को निम्नलिखित प्रकार से समाप्त कर सकते हैं :–

(*i*) **नवकरण** (Novation) – जब दोनों पक्षकार आपसी सहमति से पुराने अनुबन्ध के स्थान पर नया अनुबन्ध कर लेते हैं तो इसे अनुबन्ध का नवकरण कहते हैं। इस प्रकार नवकरण पुराने अनुबन्ध का स्थान ले लेता है।

(*ii*) **परिवर्तन** (Alteration) – अनुबन्ध के पक्षकारों को अधिकार है कि पुराने अनुबन्ध की शर्तों में पारस्परिक सहमति द्वारा परिवर्तन भी कर सकते हैं। परिवर्तन की स्थिति में यह स्पष्ट ही है कि पक्षकार परिवर्तित अनुबन्ध के निष्पादन के लिए बाध्य होंगे। न कि मूल अनुबन्ध के निष्पादन के लिये। अतः परिवर्तन द्वारा मूल अनुबन्ध से उत्पन्न दायित्व समाप्त हो जाते हैं।

(*iii*) **छुटकारा अथवा अधिकार त्याग** (Remission of Waiver) – अनुबन्ध अधिनियम की धारा 63 के अनुसार प्रत्येक वचनग्रहीता को यह अधिकार है कि वह वचनदाता को उसके वचन को निष्पादन करने से पूर्णतया या आंशिक रूप से छोड़ दे अथवा त्याग दे या उस वचन के निष्पादन के समय को बढ़ा दे तो ऐसी मुक्ति अथवा छुटकारा वैध माना जायेगा और मूल अनुबन्ध को पूरा करने का दायित्व समाप्त हो जायेगा। उदाहरणार्थ, 'अ' 'ब' के लिए एक चित्र बनाने का वचन देता है किन्तु बाद में 'ब' चित्र बनाने को 'अ' को मना कर देता है, यहां अब 'अ' अपने वचन को पूरा करने के लिए बाध्य नहीं।

3. **आश्वासन एवं सन्तुष्टि** (Accord and Satisfaction) – जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकारों के बीच मूल अनुबन्ध के निष्पादन से छुटकारा पाने के लिये कोई दूसरा अनुबन्ध किसी दूसरे कार्य को करने के लिए किया जाता है और वचनदाता ऐसे दूसरे कार्य को पूरा कर देता है तो पहला अनुबन्ध आश्वासन एवं संतुष्टि द्वारा समाप्त हुआ माना जायेगा क्योंकि यहां जो नया ठहराव दोनों पक्षकारों के बीच हुआ उसके आश्वासन कहेंगे और इस नये अनुबन्ध के निष्पादन को संतुष्टि कहेंगे।

4. **निष्पादन की असम्भावना से समाप्ति** (Discharge by Impossibility of Performance) – धारा 56 के अनुसार, यह स्पष्ट है कि किसी ऐसे कार्य को करने का ठहराव जिसका किया जाना आरम्भ से ही असम्भव है व्यर्थ होता है, और ऐसा कोई ठहराव 'व्यर्थ ठहराव' कहलाता है।

परन्तु प्रायः ऐसा भी होता है कि अनुबन्ध के पक्षकार किन्हीं ऐसे कार्यों को करने का वचन देते हैं जिनका किया जाना अनुबन्ध करते समय किसी प्रकार भी असम्भव नहीं होता, परन्तु बाद में किसी घटना के कारण जो वचनदाता नहीं रोक सकते थे उनका किया जाना अकस्मात् असम्भव अथवा अवैधानिक हो जाता है, तो ऐसी दशा में पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं, उन्हें अपने वचनों के निष्पादन करने की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसी सम्भावना को 'आकस्मिक असम्भवता' (Supervening Impossibility) कहते हैं। जब निष्पादन की असम्भवता के कारण अनुबन्ध समाप्त हो जाते हैं, तो इसे नैराश्य अथवा विवशता का सिद्धान्त (Doctrine of Frustration) भी कहते हैं।

आकस्मिक असम्भवता या तो किसी पक्षकार के कार्य के कारण होती है या किसी ऐसे कारण से जो दोनों पक्षकारों के बस में नहीं है। केवल दूसरी अवस्था में ही अनुबन्ध व्यर्थ होगा। निम्नलिखित स्थितियों में आकस्मिक सम्भवता हो सकती है –

(*i*) **विषय वस्तु का नष्ट हो जाना** (Destruction of Subject Matter) – जब अनुबन्ध करने के पश्चात् अनुबन्ध के लिए आवश्यक विषय वस्तु नष्ट हो जाती है तथा विषय वस्तु के नष्ट होने में किसी पक्ष का दोष नहीं है, तब अनुबन्ध व्यर्थ माना जाता है।

(*ii*) **राजनियम में परिवर्तन होना** (Change of Law) – यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे कार्य को करने का अनुबन्ध करता है जिसका किया जाना अनुबन्ध करते समय वैधानिक है, परन्तु बाद के किसी नये अधिनियम के कारण उसका किया जाना वर्जित हो जाता है, तो ऐसी दशा में अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

(*iii*) **किसी विशेष घटना का घटित न होना** (Non-occurence of a Particular State of Thing) – यदि किसी घटना का घटित होना अनुबन्ध का आधार है, तब उस घटना के न घटने का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

क्रेल बनाम हेनरी (Krall Vs. Henry) के मुकद्दमें में एक व्यक्ति हेनरी ने क्रेल से एक कमरा दो दिन के लिए सम्राट एडवर्ड अष्टम के राज्याभिषेक के जुलूस को देखने के लिए किराए पर लिया। क्रेल अनुबन्ध के उद्देश्य को जानता था, परन्तु इसका अनुबन्ध में कोई उल्लेख नहीं था। सम्राट की बीमारी के कारण जुलूस रद्द कर दिया गया। क्रेल द्वारा किराए के लिए मुकद्दमा किए जाने पर निर्णय दिया गया कि अनुबन्ध जुलूस के न निकलने से समाप्त हो गया, क्योंकि जुलूस अनुबन्ध का आधार था।

(*iv*) **व्यक्तिगत असमर्थता या मत्यु** (Personal Incapacity of Death) – जब अनुबन्ध का निष्पादन किसी एक पक्षकार की व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित हो, किन्तु किसी कारणवश (जोकि प्राकृतिक हो और पक्षकार का उसमें कुछ हाथ न हो) वह उस अनुबन्ध को पूरा करने के लिए असमर्थ हो जाए या मर जाए तो उसकी असमर्थता या मत्यु के कारण अनुबन्ध समाप्त हुआ माना जाएगा।

(*v*) **युद्ध छिड़ जाना** (Outbreak of War) – युद्ध के समय शत्रु के साथ किए गए अनुबन्ध व्यर्थ होते हैं अथवा जब अनुबन्ध के पश्चात् युद्ध छिड़ जाता है तब निष्पादन असम्भव हो जाता है। ऐसी दशा में या तो अनुबन्ध समाप्त माना जाता है या फिर युद्ध के दौरान स्थगित माना जाता है।

4. **समय व्यतीत हो जाने पर समाप्ति** (Discharge of Lapse of Time) – यदि अनुबन्ध का निष्पादन एक निश्चित अवधि के अन्दर किया जाना है तो प्रत्येक पक्षकार को अपने–अपने वचनों का निष्पादन उसी निश्चित अवधि में कर देना चाहिए। निश्चित अवधि व्यतीत हो जाने पर अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। भारतीय लिमिटेशन अधिनियम द्वारा भी पक्षकारों को अपने अधिकार राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराने की अवधि निश्चित होती है। इसी निश्चित अवधि में पक्षकार अपने अधिकारों को प्रवर्तनीय करा सकते हैं अन्यथा अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

5. **राजनियम के कार्यशील होने पर समाप्ति** (Discharge by Operation of Law) – धारा 37 के अनुसार, "यदि इस अधिनियम की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत अथवा किसी अन्य राजनियम के प्रभाव से अनुबन्ध का निष्पादन त्याग या मुक्त कर दिया गया हो, तो पक्षकारों को ऐसा निष्पादन करने की आवश्यकता नहीं रहती।"

राजनियम के कार्यशील होने पर एक अनुबन्ध निम्न प्रकार से समाप्त हो सकता है :–

(*i*) **विलय द्वारा** (By Merger) – जब छोटे अधिकार वाले अनुबन्ध को बड़े अधिकार वाले अनुबंघ में विलय कर दिया जाता है, तो राजनियम के प्रभाव से छोटे अधिकार वाले अनुबन्ध का अन्त जो जाता है।

(*ii*) **अनधिकृत परिवर्तन द्वारा** (By Unauthorised Alteration) – जब मूल अनुबन्ध की शर्तों में कुछ परिवर्तन करके नए अनुबन्ध को प्रतिस्थापित किया जाता है, तो इस परिवर्तन द्वारा मूल अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

(*iii*) **दिवालियापन द्वारा** (By Insolvency) – यदि दिवालिया अधिनियम के अन्तर्गत किसी ऋणी को मुक्त कर दिया जाता है, तो वह ऋणी अनुबन्ध के अन्तर्गत सभी दायित्वों से मुक्ति पा जाता है। इस प्रकार अनुबन्ध का अन्त हो जाता है।

6. **खण्डन द्वारा समाप्ति** (Discharge by Breach) – धारा 39 के अनुसार यदि अनुबन्ध का एक पक्षकार बिना किसी उचित या वैध कारण के अनुबन्ध से उत्पन्न अपने कर्त्तव्यों का पालन करने से इंकार करता है या स्वयं अपने कार्य द्वारा अनुबन्ध को निष्पादन के अयोग्य बना लेता है तो दूसरे पक्षकार को यह अधिकार मिल जाता है कि वह अनुबन्ध को भंग कर दे।

अनुबन्ध खण्डन के दो प्रकार होते हैं :–

(*i*) **वास्तविक खण्डन** (Actual Breach) – अनुबन्ध के निष्पादन के लिए निर्धारित समय पर कोई पक्षकार अनुबन्ध के अधीन अपने दायित्वों को निष्पादित करने में असफल रहता है अथवा निष्पादित करने से इंकार कर देता है तो वह वास्तविक खण्डन कहलाता है।

(*ii*) **प्रत्याशित अथवा रचनात्मक खण्डन** (Anticipatory or Constructive Breach) – यदि अनुबन्ध का कोई पक्षकार निष्पादन के लिए निश्चित समय से पूर्व अपने शब्दों अथवा व्यवहार द्वारा अनुबन्ध को निष्पादित न करने का अपना अभिप्राय प्रकट करता है अथवा निष्पादन के लिए अपने आपको असमर्थ बना लेता है तो इसे प्रत्याशित अथवा रचनात्मक खण्डन कहते हैं।

होचस्टर बनाम डेलाटूर (Hochster *Vs.* De La Tour) के विवाद में एक यात्री ने एक नौकर की नियुक्ति की ताकि वह (नौकर) 1 जून से प्रारम्भ होने वाली यात्रा का प्रबन्ध कर सके। 1 जून के पहले ही नियोक्ता ने नौकर को सूचित किया कि उसकी सेवा की आवश्यकता नहीं है। नौकर ने हानि के लिए मुकद्दमा चलाया। न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया कि नौकर हानि–पूर्ति का अधिकारी है, क्योंकि नियोक्ता द्वारा अनुबन्ध का अप्रत्याशित खण्डन किया गया है।

अनुबंध-खंडन का प्रभाव
(Effect of Breach of Contract)

अनुबंध अधिनियम की धारा 39 के अनुसार, यदि अनुबन्ध का एक पक्षकार अपने दायित्व को पूरा नहीं करता या अपने को पूर्णरूप से दायित्व से पूरा करने के अयोग्य बना लेता है, तो दूसरा पक्षकार अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है। लेकिन यदि दूसरा पक्षकार (वचनग्रहीता) अनुबन्ध को जारी रखने के लिए शब्दों अथवा आचरण द्वारा स्वीकृति प्रकट कर देता है, तो पहला पक्षकार (वचनदाता) अपने दायित्व को पूरा कर सकता है।

पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध के खण्डन की दशा में क्षतिपूर्ति के लिये खण्डन करने वाले के विरूद्ध मुकद्दमा भी चला सकता है।

अनुबन्ध के अप्रत्याशित अथवा रचनात्मक खण्डन की दशा में पीड़ित पक्षकार की दो उपचार प्राप्त होते हैं :–

1. पीड़ित पक्षकार अप्रत्याशित खण्डन को वास्तविक खण्डन मानकर खण्डन करने वाले के विरूद्ध क्षतिपूर्ति के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है।
2. पीड़ित पक्षकार अप्रत्याशित खण्डन को वास्तविक खण्डन न मानकर अनुबन्ध के निष्पादन की तारीख तक निष्पादन की प्रतीक्षा कर सकता है। यदि निष्पादन के अंतिम दिन तक भी वचनदाता वचन का निष्पादन नहीं कर पाए, तो पीड़ित पक्षकार (वचनग्रहीता) क्षतिपूर्ति के लिए वचनदाता पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

नैराश्य अथवा विवशता का सिद्धान्त
(Doctrine of Frustration)

भारतीय अधिनियम में 'नैराश्य' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी अधिनियम में 'Frustration' के नाम से किया गया है। इस सिद्धान्त से तात्पर्य किसी वैध अनुबन्ध के, परिस्थितियों में आकस्मिक घटनाओं में परिवर्तन के कारण, समये से पूर्व समाप्त होने से है। यह अनुबन्ध की समाप्ति की एक विशेष विधि है जो कि आकस्मिक असम्भवता के कारण ही उत्पन्न होती है। प्राचीन काल में इंग्लैंड के कॉमन ला ने बड़े सिद्धान्त की शुरुआत की थी जिसके अनुसार जब तक पक्षकारों ने अनुबन्ध करते सयम यह स्पष्ट शर्त न मानी हो, जिसमें असम्भवता (Impssibility) के आधार पर अनुबन्ध की समाप्ति नहीं की जा सकती तथा अनुबन्ध के खण्डन (Breach of Contract) के लिए पक्षकार को उत्तरदायी ठहराया जायेगा। यह सिद्धान्त पैरेडाइन बनाम जैन (Paradine *Vs.* Jane)) के विवाद में अपनाया गया था। इस मामले में यह निर्णय दिया गया था कि किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में प्रत्येक व्यक्ति को अपने द्वारा दिए गए शर्तरहित वचन का निष्पादन हर परिस्थति में करना चाहिए। कुछ समय पश्चात् इस सिद्धान्त की कठोरता को अनुभव किया गया। परिणामस्वरूप परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाने लगा। इसका प्रतिपादन टेलर बनाम कोल्डवैल (Taylor *Vs.* Coldwell) के मामले में किया गया। इस मामले में अनुबन्ध की विषय–वस्तु ही नष्ट हो गयी, न्यायालय ने निर्णय दिया कि जब अनुबन्ध के मूल उद्देश्य को पूरा नहीं किया जा सकता या पक्षकारों की पहुंच या काबू के बाहर होने के कारण अनुबन्ध का निष्पादन असम्भव हो तो अनुबन्ध नैराश्य कहलाता है। उस समय अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। और निष्पादन मुक्त कर दिया जाता है। परन्तु यदि परिस्थितियां इस प्रकार मोड़ लेती है जिससे अनुबन्ध की आधारभूत स्थिति में परिवर्तन नहीं होता तो पक्षकार ऐसी स्थिति में अनुबन्ध का निष्पादन न करने के लिए इस सिद्धान्त का सहारा नहीं ले सकता।

नैराश्य अथवा विवशता की परिभाषा
(Definition of Frustration)

''जब अनुबन्ध के मूल उद्देश्य को पूरा नहीं किया जा सकता अथवा जब पक्षकारों की पहुंच या काबू से बाहर कारणों की वजह से निष्पादन असम्भव हो तब अनुबन्ध नैराश्य कहलाता है। उस समय अनुबन्ध समाप्त हो जाता है और निष्पादन मुक्त कर दिया जाता है।''

राइट एवं पोरटर (Wright and Porter) के अनुसार, "यदि कोई घटना इस प्रकार घटती है अथवा स्थिति में कोई ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि जिस उद्देश्य को लेकर अनुबन्ध किया गया है वह मूलतः समाप्त हो जाए अथवा परिस्थितियों पक्षकारों की अपेक्षा के विपरीत हो जायें, तब पक्षकारों को निष्पादन के लिए बाध्य करने का अर्थ यह है कि उन्हें ऐसी शर्तें मानने के लिए बाध्य किया जा रहा है जिन्हें वे कभी तय नहीं करते, यदि उन्हें ऐसे परिवर्तन की आशा होती। उक्त परिस्थिति में अनुबन्ध कुण्ठित (Frustrated) माना जाएगा।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि नैराश्य सिद्धान्त दो प्रकार के विवादों में लागू होता है –

1. जब आकस्मिक कारण से अनुबन्ध का निष्पादन असम्भव हो।
2. जब आकस्मिक कारण से अनुबन्ध की प्रकृति इस प्रकार बदल गई हो कि अनुबन्ध का उद्देश्य नैराश्य जो जाए और पक्षकार अपना वचन पूरा न कर सके।

सिद्धांत के अपवाद
(Exceptions of the Doctrine)

निम्नलिखित परिस्थितियों में विवशता का सिद्धान्त लागू नहीं होता –

1. **निष्पादन की कठिनाई** (Difficulty in Performance) – यदि अनुबन्ध के निर्माण के बाद वचनदाता वचन के निष्पादन में इसलिए कठिनाई का अनुभव करता है कि अनुबन्ध का निष्पादन अब अधिक लागत पर होगा, तो वह इस आधार पर निष्पादन के दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता।
2. **व्यावसायिक असम्भवता** (Commercial Impossibility) – कोई भी थोक विक्रेता इस तर्क के आधार पर कि निर्माता माल का उत्पादन नहीं कर रहा है, ग्राहकों के साथ किए गए अनुबन्धों में माल की सुपुर्दगी देने के दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार मजदूरी दरों में वद्धि , सामग्री मूल्यों में वद्धि , अपर्याप्त लाभ, खराब मौसम या यातायात की व्यवस्था न होने का तर्क विवशता नहीं है। अतः इनके आधार पर वचनदाता अपने दायित्व से मुक्त नहीं होता है।
3. **हड़ताल, तालाबन्दी, दंगे या नागरिक उपद्रव** (Strikes, Lockouts, Riots and Civil Disturbances) – यदि अनुबन्ध में इन आधारों पर समापन की कोई विशिष्ट शर्त तय नहीं हुई है तो हड़ताल, तालाबन्दी, दंगों या नागरिक उपद्रवों के तर्क के आधार पर वचनदाता अनुबंध के निष्पादन को असम्भव नहीं कह सकता अर्थात् अनुबंध के निष्पादन से इन्कार नहीं कर सकता। हरी लक्ष्मण बनाम सेक्रेटरी आफ स्टेट ऑफ इंडिया (Hari Laxman *Vs.* Secretary of State of India) के विवाद में नमक बनाने की कड़ाहियों के मरम्मतकर्त्ता ने अपने वचन के निष्पादन को इस आधार पर असम्भाव बताया कि उसके मजदूरों ने हड़ताल कर दी। यह निर्णय किया गया कि मरम्मतकर्त्ता का यह तर्क अमान्य है तथा वह क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी है।
4. **अनेक उद्देश्यों में से किसी एक की समाप्ति** (Failure of one of the Objectives) – जब अनुबन्ध एक से अधिक उद्देश्यों के लिए किया गया है तो केवल एक उद्देश्य के समाप्त हो जाने पर अनुबन्ध समाप्त नहीं होता है।

हो सकता है जब कोई घटना हो गई हो जो पक्षकारों ने कल्पना न की हो या अनुबन्ध का निष्पादन कर दिया जाए तो वह अनुबन्ध का मूल अनुबन्ध से कोई दूसरा अनुबन्ध बन जाए या ऐसी घटना हो जाए जिसका कोई पक्षकार जिम्मेदार न हो, जैसे युद्ध का हो जाना, कोई नया कानून पास हो जाना, राज–आज्ञा आदि।

वास्तव में नैराश्य का सिद्धान्त अधिनियम असम्भव कार्यों को करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता के सिद्धान्त पर आधारित है। यह असम्भवता अधिनियम में परिवर्तन, दैवी प्रकोप या युद्धकाल की घोषणा किसी भी प्रकार की हो सकती है।

नैराश्य के सिद्धान्त की सीमाएं
(Limitations of the Doctrine of Frustration)

यह सिद्धान्त निम्नलिखित दशाओं में लागू नहीं होगा –

1. कोई ऐसी शर्त जो अनुबंध की स्पष्ट शर्तों का उल्लघंन करती हो अथवा उसके विरूद्ध हो।
2. कोई बात केवल एक ही पक्ष के विचार की हो, दोनों पक्षकारों के विचार की न हो।

3. किसी पक्षकार के जान–बूझकर किये गये कार्य से अनुबन्ध का विफल होना।

इस सम्बन्ध में स्टेट ऑफ राजस्थान बनाम मदन स्वरूप (State of Rajasthan Vs. Madan Swarup) का मामला भी महत्वपूर्ण है। इस मामले के अनुसार मदन स्वरूप एडवोकेट को बीकानेर सरकार ने हाई कोर्ट में आपराधिक कार्यों के लिए नियुक्त किया। बीकानेर के राजस्थान में मिल जाने के कारण बीकानेर हाई कोर्ट खत्म कर दी गई जो जोधपुर में हाई कोर्ट खोली गई। अतः मदन स्वरूप को नौकरी से निकाल दिया गया। मदन स्वरूप ने राजस्थान सरकार पर अनुबन्ध तोड़ने की हानि–पूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि परिस्थितियां इस प्रकार की हो गई थीं कि अनुबन्ध का निष्पादन सम्भव न था। अनुबन्ध समाप्त हुआ है न कि तोड़ा गया है। यहां नैराश्य का सिद्धान्त लागू होगा और मदन स्वरूप हानि–पूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है।

नैराश्य के परिणाम
(Consequences of Frustration)

1. 'नैराश्य सिद्धान्त' लागू होने पर अनुबंध किसी पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय न होकर पूर्ण रूप से तथा स्वभावतः समाप्त हुआ मान लिया जाता है।
2. यदि किसी पक्षकार ने इस सिद्धान्त पर व्यर्थ माने जाने वाले अनुबन्ध के अंतर्गत कोई लाभ प्राप्त किया है अथवा रकम वसूल की है तो वह लाभ अथवा रकम, उसे दूसरे पक्षकार का वापस करनी होगी।
3. भूमि सुधार अधिनियम, 1943 के आधार पर ही, यदि लाभ प्राप्त करने वाले पक्षकार ने अनुबन्ध के अन्तर्गत कुछ खर्चा भी किया है तो वह इस खर्चे की रकम को प्राप्त करने के लिए न्यायालय की मदद मांग सकता है।
4. यदि किसी पक्षकार ने द्रव्य के अलावा कोई अन्तर्गत प्राप्त किया है तो न्यायालय द्वारा उचित मूल्य दिलाने का आदेश दिया जा सकता है। लेकिन यह मूल्य लाभ के वास्तविक मूल्य से अधिक नहीं होगा।

निष्पादन की असम्भावना कोई बहाना नहीं
(Impossibility of Performance not an Excuse)

न्यायाधीश स्क्रटन (Scratton) के अनुसार निष्पादन की असम्भावना निष्पादन न करने के लिए बहाना नहीं माना जाता। जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को करने का अनुबन्ध करता है तब उसे अपने वचन का पालन करना चाहिए जब तक कि वह किसी आकस्मिक कारण से असम्भव न हो जाए। अन्य शब्दों में निष्पादन की असम्भवता पूर्ण होनी चाहिए। निम्नलिखित परिस्थितियों में आकस्मिक असम्भावनाओं के आधार पर अनुबन्ध का दायित्व समाप्त नहीं होता।

1. यदि अनुबन्ध का निष्पादन अधिक कठिन तथा खर्चीला बन गया है; केवल इसी आधार पर अनुबंध के दायित्वों से पक्षकारों को मुक्त नहीं किया जाता।
2. यदि किन्हीं कारणों से अनुबन्ध का निष्पादन लाभकारी नहीं होता, तब अनुबन्ध के किसी भी पक्षकार को इस आधार पर उसके दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता।
3. जिन अनुबंधों के निष्पादन के लिए वचनदाता किसी तीसरे पक्षकार पर निर्भर है और तीसरे पक्षकार के वचन को पूरा न होने पर वचनदाता तो यह आकस्मिक असम्भवता नहीं मानी जाती।
4. किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में हड़ताल, तालाबन्दी एवं नागरिक उपद्रव इत्यादि से अनुबन्ध के निष्पादन का दायित्व समाप्त नहीं होता है।
5. जब कोई अनुबन्ध एक से अधिक उद्देश्यों से लिए किया जाता है और यदि उनमें से कोई एक उद्देश्य असफल हो जाता है तो यह अनुबन्ध के निष्पादन का दायित्व समाप्त नहीं करता है।

एच. बी. स्टीमबोट कम्पनी बनाम हटन (H.B. Steamboat Co. Vs. Hutton) के मामले में 'अ' ने एक नाव 'ब' को राज्याभिषेक के अवसर पर जलसेना के प्रदर्शन तथा जहाजी बेड़े के चक्कर लगाने के लिए किराए पर दी। जलसेना का प्रदर्शन राजा की बीमारी के कारण रद्द कर दिया गया परन्तु जहाजी बेड़े का कार्यक्रम किया गया। इस मामले में आंशिक असम्भावना मानी

गई तथा अनुबंध को समाप्त नहीं माना गया, क्योंकि नाव का उपयोग जहाजी बेड़े के चारों ओर चक्कर लगाने के लिए किया जा सकता था।

व्यर्थनीय एवं व्यर्थ अनुबन्धों में प्रत्यास्थापन

(Reconstitution Regarding Voidable and Void Contracts) (Sec. 64-67 & 75)

1. जब किसी व्यक्ति की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय है और उसे त्याग देता है, तो दूसरे पक्षकार को भी अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने की आवश्यकता नहीं रहती। व्यर्थनीय अनुबन्ध को त्यागने वाले पक्षकार ने, यदि अनुबन्ध के अन्तर्गत दूसरे पक्षकार से कोई लाभ पाया है, तो उस लाभ को उसे लौटाने के लिए बाध्य है।

   (धारा 64)

2. जब यह स्पष्ट हो जाता है कि ठहराव व्यर्थ है अथवा कोई अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है तो जिस व्यक्ति ने उस ठहराव अथवा अनुबन्ध के अधीन कोई लाभ प्राप्त किया है वह उसे दूसरे व्यक्ति को, जिससे कि वह लाभ प्राप्त हुआ है, लौटाने अथवा क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य है।

   (धारा 65)

3. किसी व्यर्थनीय अनुबन्ध की समाप्ति का संवहन अथवा उसका खण्डन उसी प्रकार एवं उन्हीं नियमों के अधीन किया जाएगा, जो प्रस्ताव के संवहन अथवा खंडन के सम्बन्ध में लागू होते हैं।

   (धारा 66)

4. यदि कोई वचनग्रहीता, वचनदाता को उसके वचन के निष्पादन के लिए यथोचित सुविधाएं देने में उपेक्षा करता है अथवा इंकार करता है तो वचनदाता ऐसी उपेक्षा अथवा इंकारी के कारण निष्पादन करने के संबंध सें मुक्त हो जाता है।

5. यदि एक पक्षकार उचित रूप से किसी अनुबंध को निरस्त करता है तो उस अनुबंध के निष्पादन न होने के कारण उसे जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति कराने का उसे अधिकार है।

   (धारा 75)

अध्याय-5
अनुबंध का पालन या समाप्ति
(Discharge of Contracts)

अनुबंध के द्वारा पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। दोनों पक्षों के कुछ दायित्व व कर्त्तव्य उत्पन्न होते हैं। जब इन दायित्वों का पालन कर दिया जाता है तब अनुबंध को समाप्त समझा जाता है।

भारतीय अनुबंध अधिनियम में निम्न विधियों से अनुबंधों की समाप्ति समझी जाती है :–

1. By Performance (अनुबंधों के निष्पादन द्वारा)
2. By Mutual Consent (पारस्परिक समझौते से)
3. By Impossibility of Performance (निष्पादन की असम्भवता से)
4. By Lapse of Time (समय व्यतीत हो जाने पर)
5. By Operation of Law (कानून द्वारा)
6. By Breach (खण्डन द्वारा)

इसे निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :–

1. **निष्पादन द्वारा** :– अनुबंध के पक्षकारों द्वारा अपने–अपने वचनों व दायित्वों का पालन करके अनुबंध समाप्त करने का यह साधारण तरीका है। Ex. : A ने B को अपना घर 100000/- (एक लाख) में बेचनें का अनुबंध किया है इस दिशा में B जब A को एक लाख रुपयें दें, देगा तो अनुबंध समाप्त हो जाएगा।

   (विस्तार वर्णन के लिए देखे अध्याय अनुबंधों का निष्पादन)

2. **पारस्परिक समझौते द्वारा** :– अनुबंध को पक्षकार पारस्परिक समझौते द्वारा अनुबंध में परिवर्तन आदि करते हैं तो मूल अनुबंध के अन्तर्गत उनके दायित्वों की समाप्ति हो जाएगी। दायित्वों से यह मुक्ति निम्न स्थितियों में प्राप्त होती है :–

   a) परिवर्तन द्वारा :– यदि पक्षकारों की सहमति में पुराने अनुबंध के स्थान पर नए अनुबंध की स्थापना होती है तथा जिसमें कुछ शर्ते भी परिवर्तित होती है तो इसे 'परिवर्तन द्वारा' पुराने अनुबन्ध की समाप्ति समझा जाएगा।

   b) नवकरण द्वारा :– इसका अर्थ है पुराने अनुबंध के एक पक्षकार का अनुबंध के अन्तर्गत अपने दायित्वों से मुक्त होना और उसके स्थान पर नए पक्षकार का दायित्व स्वीकार करना।

      नवकरण में पक्षकारों में परिवर्तित होता है। किन्तु परितर्वन में अनुबंध की शर्तों में परिवर्तन होता है, पक्षकारों में नहीं।

   c) त्याग या छुटकारे द्वारा :– यदि कोई पक्षकार अनुबंध के अन्तर्गत अपने अनुबंधों का त्याग करता है तो इससे मूल अनुबंध समाप्त हो जाएगा।

3. **निष्पादन की असम्भवता से** :– यदि किसी अनुबंध के अधीन वचनों का निष्पादन किसी ऐसी घटना के कारण अषाधनिक या असम्भव हो जाते हैं जिस पर वचनदाता का कोई बस नहीं होता तो अनुभव की समाप्ति समझी जाती है।

4. **समय व्यतीत हो जाने पर** :– भारतीय लिमिटेशन अधिनियम उन अवधियों का निर्धारण करता है जिनमें किसी अनुबंध के अधीन पक्षकारों के दायित्व प्रर्वतनीय कराए जा सकते हैं, यदि यह अवधि समाप्त हो जाती है तो अनुबंधों की पवर्तनीयता वर्जित हो जाती है और अनुबंध का अन्त हो जाता है।

5. **किसी कानून के प्रर्वतनीय होने पर** :– कुछ परिस्थितियों में कुछ कानूनों के लागू होने पर सम्बन्धित पक्षधारों को अपने–अपने दायित्व से मुक्ति मिल जाती है।

   उदाहरण :– अनुबंध अधिनियम के अन्तर्गत यदि कुछ अनुबंध किसी पक्षधार की व्यक्तिगत कुशलता पर आधारित है। तो ऐसे पक्षकार की मत्यु अथवा स्थायी शारीरिक अयोग्यता के कारण अनुबंध को समाप्त मान लिया जाएगा।

6. **अनुबंध खण्डन द्वारा समाप्ति** :– यदि अनुबंध का कोई पक्षधार अपने वचन को पूरा करने से मना कर देता है अथवा अपने आप को अनुबंध पूरा करने के अयोग्य बना लेता है तो सविंदा समाप्त मान लिया जाएगा। यह अनुबंध खंडन द्वारा समाप्ति मानी जाएगी।

   (विस्तत अध्ययन के लिए पढ़े अध्याय अनुबंध खण्डन द्वारा समाप्ति)।

अध्याय-6

अनुबंध खण्डन के हल

(Remedies for Breach of Contracts) (Sec. 73-75)

1. **अनुबंध खंडन का अर्थ (Meaning of Breach of Contract)** :– जब अनुबंध का एक पक्षकार अपने वचन का पालन नहीं करता अथवा अपने आपको अनुबंध निष्पादन के अयोग्य बना लेता है, तो यह अनुबंध का खंडन माना जाता है।

   अनुबंध खण्डन की दशा में पीड़ित पक्षकार को न केवल अपने दायित्व से मुक्त होने का, बल्कि कुछ अन्य अधिकार भी मिल जाते हैं।

   अनुबंध खण्डन दो प्रकार से हो सकता है :–

   A. वास्तविक खंडन :– जब नियम प्रकार अथवा निर्धारित अवधि में अपने वचन को पूरा करने में पक्षकार असफल होता है।

   B. रचनात्मक खंडन :– जब निर्धारित तिथि से पूर्व ही पक्षकार अनुबंध का निष्पादन करने से मना कर देता है।

अनुबंध खंडन पर पीड़ित पक्षकार को प्राप्त उपचार
(Remedies for Breach of Contract to Aggrived Party)

(A) अनुबंध की समाप्ति

अनुबंध भंग की दशा में पीड़ित पक्षकार को अनुबंध रद्द करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। साथ ही वह अपने वचन के निष्पादन से मुक्त हो जाता है।

अपवाद (Exceptions)

1. जबकि पीड़ित पक्षकार ने जो अनुबंध के निष्पादन से मुक्त होना चाहता है या गर्भित रूप से अनुबंध की पुष्टि कर दी हो।
2. जब अनुबंध विभाजन योग्य न हो और अनुबंध की आंशिक समाप्ति की माँग की जाए।
3. जब किसी भी पक्षकार की त्रुटि के बिना अनुबंध करने के बाद परिस्थितियों के पक्षकारों की पूर्व स्थिति में नहीं लाया जा सकता है।
4. जब अनुबंध प्रवर्तनीय स्थिति में हो और अनुबंध के तीसरे पक्षकार से प्रतिफल के बदले तथा सद्भावना से अनुबंध की विषय–वस्तु का अधिकार ग्रहण कर लिया है।

(B) हर्जाने के लिए अधिकार

हर्जाने का आशय क्षतिपूर्ति से है। अनुबंध खण्डन की दशा में पीड़ित पक्षकार दोषी पक्षकार से अपनी हानि की क्षतिपूर्ति करा सकता है। जो अनुबंध के निष्पादन के न होने के कारण हुई है।

(C) निर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार

अनुबंध खण्डन में क्षतिपूर्ति को पर्याप्त उपचार न समझा जाए तो पीड़ित पक्षकार निर्दिष्ट निष्पादन की मांग करने का अधिकारी होता है।

(D) निषेधाज्ञा

निषेधाज्ञा किसी काम से अलग रहने के वचन को लागू कराने के लिए न्यायालय द्वारा जारी की गई एक आज्ञा है। यह निर्दिष्ट निष्पादन को पाने का दूसरा रूप है।

क्षतिपूर्ति के प्रकार
(Kinds of Damages)

1. **साधारण क्षतिपूर्ति :-** अनुबंध खण्डन की दशा में पीड़ित पक्षकार को होने वाली प्रत्यक्ष व स्वाभाविक हानि को साधारण क्षति कहा जाता है। प्रायः पीड़ित पक्षकार इसी प्रकार की क्षतिपूर्ति की मांग करता है।
2. **विशेष क्षति :-** विशेष परिस्थितियों के कारण अनुबंध खण्डन की दशा में जो हानि होती है। यद्यपि पीड़ित पक्षकार हर्जाने की केवल साधारण क्षतिपूर्ति करा सकती है।
3. **दण्डात्मक क्षतिपूर्ति :-** कभी–कभी अनुबंध खण्डन के कारण दूसरे पक्षकार की मान–हानि होती है। अथवा उसकी प्रतिष्ठा को ठेस लगती है। यह क्षति साधारणतया प्रत्यक्ष क्षति की राशि से अधिक मूल्य के लिए होती है।
4. **नाम मात्र की क्षति :-** यदि न्यायालय यह समझता है कि अनुबंध भंग के कारण पीड़ित पक्षकार को कोई विशेष हानि नहीं हुई है, लेकिन वह दोषी पक्षकार को दण्ड भी देना चाहती है। ऐसी क्षतिपूर्ति नाममात्र की क्षतिपूर्ति है। इसकी राशि बहुत कम होती है।
5. **ब्याज के रूप में क्षति :-** यदि एक पक्षकार अनुबंध में दी गई निश्चित तिथि पर देय राशि का भुगतान नहीं करता, तो ब्याज के रूप में उसमें क्षतिपूर्ति की जाती है।

यह क्षतिपूर्ति निम्न दशाओं में प्राप्त की जा सकती है :–

1. भुगतान की तिथि निश्चित न होने पर।
2. त्रुटि की तिथि से देय ब्याज।
3. चक्रवद्धि (Compound Interest) का भुगतान :'
   a) साधारण ब्याज की दर पर ही।
   b) साधारण ब्याज की दर से ऊँची दर पर।
   c) ब्याज की दर से छूट।

अध्याय-7

विशेष अनुबन्ध : संयोगिक एवं अर्द्ध अनुबन्ध (Discharge of Contracts)

अनुबंध अथवा वचन (*i*) पूर्ण या शर्त रहित अथवा (*ii*) संयोगिक एवं सशर्त हो सकते हैं। शर्त सहित अनुबंध में वचनदाता को किसी भी स्थिति में अनुबंध का निष्पादन करना होगा। परन्तु जहाँ अनुबंध भविष्य में किसी अनिश्चित घटना के घटित होने या न होने पर निर्भर करता है तो ऐसा अनुबंध सांयोगिक कहलाता है।

A) Contingent Contracts

सांयोगिक अनुबंध किसी (*i*) कार्य को करने अथवा न करने (*i*) किसी घटना न होने पर कार्य को करने अथवा न करने पर निर्भर करता है।

Example: x, y को उसके मकान में आग लग जाने पर 50,000/- रूपयें देने का अनुबंध करता है यहाँ किसी घटना के होने पर किसी कार्य को करने का संयोगिक अनुबंध है।

संयोगिक अनुबंध में वे सभी लक्षण होते हैं जो किसी भी वैध अनुबंध के लिए आवश्यक होते हैं। बीमा तथा समस्त हानिरक्षा सम्बन्धी अनुबंध संयोगिक अनुबंध है।

संयोगिक अनुबंधों के प्रर्वतनीय होने के लिए नियम (Sec. 32-36)

1. **संयोगिक अनुबंध जो कि किसी अनिश्चित भावी घटना के होने पर निर्भर है** :– राजनियम द्वारा उस समय तक परिवर्तित नहीं कराए जा सकते जब तक वह घटना घटित नहीं होती, यदि उस घटना का घटना असंभव हो जाता है तो ऐसे अनुबंध व्यर्थ हो जाते हैं।

   Example : A, B को एक मकान बेचने का अनुबंध करता है, यदि C जिसको वह मकान पेश किया गया है, खरीदने से मना कर देता है। यह अनुबंध राजनियम द्वारा उस समय परिवर्तित नहीं कराया जा सकता है जब तक कि C उस मकान को खरीदने को मना नहीं कर देता।

2. **संयोगिक अनुबंध जो किसी अनिश्चित भावी घटना के न होने पर निर्भर है** :– उस समय परिवर्तित कराए जा सकता है, जबकि उस घटना का घटित होना मुश्किल हो जाता है, उससे पहले नहीं।

3. **घटना का घटित होना असम्भव होने पर** :– यदि कोई भावी घटना जिस पर कोई अनुबंध निर्भर करता है, उस घटना का घटित होना उस समय असम्भव माना जाऐगा, जबकि वह व्यक्ति कोई ऐसा कार्य करता है जिससे उस कार्य का होना असम्भव हो जाता है तो ऐसा अनुबंध हो जाने पर व्यर्थ हो जाएगा।

   Example : A, B को कुछ धन इस शर्त पर देता है कि वह C से शादी कर ले, लेकिन C, D से शादी कर लेता है तो B का C से शादी करना असम्भव है। इसलिए यह अनुबंध व्यर्थ माना जाएगा।

4. **संयोगिक अनुबंध जो कि किसी निर्दिष्ट अनिश्चित घटना के निश्चित समय के होने पर निर्भर है** :– व्यर्थ हो जाते है यदि ऐसा निश्चित समय बीतने तक घटना घटित नहीं होती अथवा निश्चित समय के पहले ही ऐसी घटना असम्भव हो जाती है।

5. **संयोगिक अनुबंध जो कि किसी निर्दिष्ट अनिश्चित घटना के निश्चित समय में न होने पर निर्भर है** :– राजनियम द्वारा उस समय परिवर्तित कराए जा सकते हैं, जब निश्चित समय समाप्त हो जाता है और ऐसी घटना घटित नहीं होती अथवा समय–सीमा के समाप्त होने से पहले यह पता चल जाता है कि उक्त घटना घटित नहीं होगी।

6. **संयोगिक ठहराव जो कि किसी असम्भव घटना के होने पर निर्भर है** :– व्यर्थ होते है यदि ठहराव करने के समय उसके पक्षधारों को घटना की असम्भवता ज्ञात न हो अथवा ज्ञात हो।

   Example : A, B को 2000 रुपयें देने का ठहराव करता है, यदि दो सीधी रेखाएँ आपस में मिल जाए और किसी स्थान को घेर दे। यह ठहराव व्यर्थ है।

B) Quasi-Contracts

साधारणतया अनुबंधों का सजन वैध प्रस्ताव तथा उसकी स्वीकृति पर निर्भर करता है। किन्तु अनुबंध अधिनियम में कुछ अनुबंध इस प्रकार के होते हैं जिसमें प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है। लेकिन फिर भी उनका प्रभाव एक अनुबंध की तरह होता है। ऐसा अनुबंधों की Quasi Contracts of Implied Contract कहते हैं।

Various Forms of Quasi Contracts

1. **अनुबंध करने में असमर्थ व्यक्तियों की आवश्यकता पूर्ति :- (Sec. 68) :-** यदि कोई व्यक्ति, अनुबंध करने में असक्षम व्यक्तियों को अथवा ऐसे व्यक्ति को जिसका पालन करने के लिए वह कानून बाध्य है, उनके सामाजिक स्तर के अनुकूल आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए केवल उनकी सम्पत्तियों के द्वारा पूरी कर सकता है।

2. **अपने हित के लिए दूसरे व्यक्ति की ओर से भुगतान कर देने की दशा में** :–

(*i*) **अनुबंध करने में असमर्थ व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति (Supply of Necessities to Persons Incompetent to Contract)** – यदि अनुबंध करने में असमर्थ किसी व्यक्ति (उदाहरण के लिए – अवयस्क या पागल) अथवा किसी ऐसे व्यक्ति को जिसका पालन करने के लिए ऐसा असमर्थ व्यक्ति वैधानिक रूप में बाध्य है, कोई दूसरा व्यक्ति उसकी जीवन की स्थिति के अनुकूल आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, जो वह व्यक्ति जिसने आवश्यकताओं की पूर्ति की है, ऐसे असमर्थ व्यक्ति की सम्पत्ति से भुगतान पाने का अधिकारी है।

(धारा 68)

यह आवश्यक नहीं कि आवश्यकता की वस्तुएँ अयोग्य व्यक्ति को ही दी जाएँ। यदि ये वस्तुएँ उन व्यक्तियों को प्रदान की जाती हैं जिनका पालन करने के लिए वह (अयोग्य व्यक्ति) वैधानिक रूप से उत्तरदायी है तब भी अयोग्य व्यक्ति की सम्पत्ति में से वस्तुओं का मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। आवश्यकता से तात्पर्य आवश्यक वस्तुओं मात्र से है जिसमें सामाजिक प्रतिष्ठा कायम रखने वाली आवश्यकताएं भी शामिल हैं।

(*ii*) **अपने हित के लिए दूसरे व्यक्ति की ओर से भुगतान कर देने की दशा में (Interest in Payment Due by Another)** – जब कोई व्यक्ति ऐसे धन के भुगतान में कोई हित रखता है, जिसका भुगतान करने के लिए दूसरा व्यक्ति वैधानिक रूप से बाध्य है और इसलिये वह उस धन का भुगतान स्वयं कर देता है, तो वह उसे दूसरे व्यक्ति से भुगतान पाने का अधिकारी है।

इस सम्बन्ध में हजारी लाल बनाम नौरंग लाल (Hazari Lal Vs. Naurang Lal) का मामला महत्पपूर्ण है। इस मामले में अशोक की जमीन राम के पास पट्टे पर है। अशोक पर सरकार की मालगुजारी अनेक वर्षों से बकाया थी। सरकार द्वारा जमीन की बिक्री का विज्ञापन दिया गया। मालगुजारी विधान के अनुसार बिक्री के बाद राम का पट्टेदा का अधिकार समाप्त हो जायेगा। राम अपने हित को बचाने के लिए अशोक पर बकाया सरकारी मालगुजारी का भुगतान कर देता है। यह निर्णय किया गया है कि अशोक राम द्वारा सरकार को भुगतान की गई धन–राशि का भुगतान करने के लिए दायी है।

(*iii*) **स्वेच्छा से किन्तु मूल्य लेने की भावना से किये गये काम (Voluntary but non-gratuitous acts)** – जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के लिए वैधानिक रूप से कोई कार्य करता है अथवा उसे कोई वस्तु देता है और ऐसा वह बिना शुल्क के अभिप्राय के नहीं करता तथा वह अन्य व्यक्ति उससे लाभ उठाता है तो वह दूसरा व्यक्ति प्रथम व्यक्ति के प्रति क्षतिपूर्ति करने के लिए अथवा वस्तु लौटाने के लिए बाध्य है।

(धारा 70)

(*iv*) **माल पाने वाले का उत्तरदायित्व (Responsibilities for Finder of Goods)** – एक व्यक्ति जो किसी दूसरे व्यक्ति का कोई पड़ा हुआ माल पाता है और वह उसे अपने संरक्षण में ले लेता है, तो उसका उत्तरदायित्व निक्षेपग्रहीता के समान हो जाता है।

(धारा 71)

5. **गलती से अथवा उत्पीड़न के अधीन धन अथवा माल देने की दशा में (Payment of Money or Delivery of Goods by Misake or Under Coercion)** – धारा 72 के अनुसार, ''यदि कभी गलती से अथवा उत्पीड़न के अधीन किसी व्यक्ति को कुछ धन दिया गया है या कोई वस्तु सुपुर्द की गई है तो पाने वाले व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह उस धन अथवा वस्तु को उसे वापस कर दे।''

अध्याय-8
हानिरक्षा व गारण्टी के अनुबंध
(Contracts of Indemnity and Guarantee)
(Sec. 124 to 147)

अनुबंध अधिनियम के प्रथम भाग में अनुबंध से सम्बन्धित सामान्य प्रावधान दिए गए हैं जो कि सभी प्रकार के अनुबंधों पर लागू होते हैं। अतः वे हानि रक्षा व गारन्टी के अनुबंधों पर भी लागू होगें।

हानिरक्षा अनुबंध
(Contract of Indemnity)

Sec. 124 के अनुसार ''हानिरक्षा अनुबंध एक ऐसा अनुबंध है, जिसके अंतर्गत एक पक्षवार दूसरे पक्षवार को स्वयं अथवा किसी दूसरे व्यक्ति के आयरण से होने वाली हानि से बचाता है। या बचाने का वचन देता है।'' जो व्यक्ति हानिपूर्ति का वचन देता है उसे हानिरक्षण (Indemnifier) तथा जिसको ऐसा वचन दिया जाता है उसे हानिरक्षाधारी (Indemnified) कहते हैं।

Example : H, S से 200 रुपयें के दावे से सम्बन्ध में R द्वारा S के खिलाफ की जाने वाली कार्यवाही के परिणामों से बचाने के लिए अनुबंध करता है। यह क्षतिपूर्ति का अनुबंध है। इसमें H हानिरक्षा व S हानिरक्षाधारी है।

हानिपूर्ति के ऐसे वचन जो (*i*) गर्भित है अथवा (*ii*) किसी घटना या दुर्घटना के कारण जिसके लिए वचनगहीता या अन्य कोई व्यक्ति जिम्मेदार है, इसके अन्तर्गत शामिल नहीं किया जा सकता।

भारतीय न्यायालय इंगलिश राजनियम में क्षतिपूर्ति के अनुबंध की परिभाषा का अनुसरण करते है जिसके अनुसार ''हानिरक्षा का अनुबंध ऐसा अनुबंध होता है जिसके अन्तर्गत किसी दूसरे व्यक्ति को ऐसी होने वाली हानि से रक्षा का वचन दिया जाता है जिसके अंतर्गत किसी दूसरे व्यक्ति को ऐसी हानि से रक्षा का वचन दिया जाता है जो कि वचनदाता के कहने पर किए गए आचरण के परिणामस्वरूप हुई है।'' इस प्रकार इसमें किसी घटना या दुर्घटना के कारण होने वाली हानि को भी शामिल किया जाता है।

हानि रक्षा का अनुबंध सामान्य अनुबंध का ही एक प्रकार है। इसमें एक वैध अनुबंध के सभी लक्षण पाए जाते हैं।

Agent or प्रधान के बीच अधिकृत कार्यों के सम्बन्ध में क्षतिपूर्ति का अनुबंध गर्भित अनुबंध है।

हानिरक्षा अनुबंध की विशेषताएं
(Characteristics of a Contract of Indemnity)

1. यह एक संविदा है। अतः एक वैध संविदे के सभी लक्षण इसमें होते हैं।
2. हानिपूर्ति का वचन स्पष्ट (जैसे बीमे के अनुबंध) या गर्भित (जैसे सांझेदारों द्वारा किए गए अनुबंध) होते है।
3. वचनदाता द्वारा वचनगहीता को होने वाली हानि की पूर्ति का वचन दिया जाता है।
4. ये अनुबंध केवल हानि होने पर ही उसकी पूर्ति करने के वचन होते हैं। हानि न होने पर किसी भी प्रकार का कोई दायित्व उत्पन्न नहीं होता।

हानिरक्षाधारी के अधिकार
(Right of Indemnity Holder) (Sec. 125)

1. **मुआवजे की राशि** :– हानिरक्षाधारी किसी भी ऐसी हानि की क्षतिपूर्ति हानिरक्षक से करा सकता है जिसकी पूर्ति करने का वचन, हानिरक्षा अनुबंध से अन्दर दिया गया है।
2. **समझौता राशि** :– यदि हानिरक्षाधारी ने किसी विवाद के सम्बन्ध में कोई राशि समझौता करने में चुकायी है तथा यह समझौता वचनदाता के आदेशों के विपरीत नहीं होना चाहिए।
3. **मुकदमें के खर्चे** :– दावे करने या उनका प्रतिवाद करने के सम्बन्ध में हानिरक्षाधारी ने जो भी खर्चे किए है उन सभी को प्राप्त करने का अधिकारी है किन्तु हानिरक्षाधारी द्वारा दूरदर्शिता से काम लिया जाना चाहिए।

गारंटी अथवा प्रतिभूति के नियम
(Contract of Guarantee)

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 126 में गारण्टी के अनुबंध को पारिभाषित किया गया है :– ''प्रतिभूति का अनुबंध एक ऐसा अनुबंध है जिसमें एक व्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति की गलती (त्रुटि) की दशा में उसके (तीसरे पक्षकार) वचन को पूरा करने के लिए अथवा उसके दायित्व को चुकाने के लिए वचन देता है। वह व्यक्ति जो इस प्रकार की गारंटी देता है प्रतिभू या गारण्टर कहलाता है। जिसे गारंटी दी जाती है उसे लेनदार तथा जिसके चूक के लिए गारंटी दी जाती है, उसे मूल ऋणी कहते है।''

गारंटी लिखित या मौखिक या दोनों हो सकते हैं।

प्रतिभूति संविदे में निम्न लक्षण होते हैं

(Essential Features of a Contract of Guarantee)

1. गारंटी के अनुबंध के तीन पक्षकार होते हैं।
   (*i*) ऋणदाता
   (*ii*) मूल ऋणी
   (*iii*) प्रतिभू
2. गारंटी के अनुबंध में तीनों पक्षकारों के मध्य तीन अनुबंध होते हैं :–
   (*i*) मूल ऋणी और ऋणदाता
   (*ii*) ऋणदाता व प्रतिभू
   (*iii*) मूलऋणी व प्रतिभू के बीच।
3. मुख्य उत्तरदायित्व मूल ऋणि का होता है यदि मूलऋणी वचनपालन करने में चूक जाता है तो प्रतिभू का दायित्व उत्पन्न होता है।
4. गारंटी के अनुबंधों में प्रतिफल का होना आवश्यक नहीं है।
5. गारंटी का अनुबंध एक वैध अनुबंध है, इसलिए एक वैध अनुबंध के सभी लक्षण इसमें पाए जाते हैं।

प्रकार
(Types of Guarantee)

1. **विशिष्ट गारंटी (Specific Guarantee)** :– जब गारंटी किसी एक विशेष ऋण या वचन के लिए दी जाती है तो उसे विशिष्ट गारंटी कहते हैं। प्रतिभू का दायित्व केवल वचन के पूरा होने तक ही सीमित होता है।
2. **चालू गारंटी (Continuing Guarantee)** :– चालू गारंटी अनेक भावी ऋणों के लिए दी जाती है। जो एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते है। Sec. 129 :- 'वह प्रतिभूति जो व्यवहारों की एक श्रंखला तक विस्तत हो , चालू गारंटी है।'

कोई गारंटी चालू है या नहीं, यह पक्षधारी के इरादे तथा सम्बन्धित परिस्थितियों पर निर्भर करता है। किस्तों में भुगतान की गारंटी चालू गारंटी नहीं है।

चालू गारंटी की समाप्ति
(Revocation of Continuing Gurantee)

a) **नोटिस द्वारा (By Notice) :-** ऋणदाता को सूचना देकर भावी लेन–देन के सम्बन्ध में चालू गारंटी किसी भी समय समाप्त की जा सकती है। प्रतिभू भी केवल सूचना की तिथि तक के अनुबंधों के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी होगा। (Sec. 130)

b) **प्रतिभू की मत्यु (By Death of Surety) :- (Sec. 131) :-** किसी विपरीत अनुबंध के अभाव में, प्रतिभू की मत्यु हो जाने पर, मत्यु के पश्चात् के व्यवहारों के लिए चालू गारंटी समाप्त हो जाती है। चाहे ऋणदाता की प्रतिभू की मत्यु की सूचना हो या नहीं।

प्रतिभू का दायित्व
(Nature of Surety's Liabilities)

गारंटी के संविदे में प्रतिभू का दायित्व केवल तभी उत्पन्न होता है जबकि मूल्य ऋणी ऋण का भुगतान अपने वचन के निष्पादन से मना करता है या अपने वचन के निष्पादन से मना करता है या उससे कोई गलती (चूक) करता है। यदि कोई चूक आदि नहीं होती तो प्रतिभू का दायित्व उत्पन्न सही होता क्योंकि प्रतिभू का दायित्व गौंण होता है। प्रथम दायित्व मूल ऋणी का होता है। मूल ऋणी के चूक करने पर प्रतिभू के दायित्वों की सीमा निम्न होगी :–

1. मूल ऋणी की त्रुटि की दशा में, प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के दायित्व के साथ सह–विस्तत होता है। (Sec. 128) मूल ऋणी के त्रुटि की दशा में प्रतिभू का दायित्व उतना ही उत्पन्न होगा जितना कि प्रतिभू की गारंटी है।
2. लेकिन यदि अनुबंध में प्रतिभू ने अपने दायित्वों की कोई सीमा निर्धारित की है तो प्रतिभू का दायित्व उक्त सीमा से अधिक नहीं होगा।
3. प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी द्वारा त्रुटि की सूचना देने के लिए बाध्य नहीं है। इस प्रकार कानून में प्रतिभू के दायित्व की मात्रा सम्बन्धी व्यवस्था की गई है। उसके दायित्व की प्रकृति के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है।
4. जब दो व्यक्ति संयुक्त रूप से ऋण लेते हैं और उन दोनों में पारस्परिक ठहराव द्वारा एक का दायित्व केवल दूसरे की त्रुटि की दशा में ही है और ऋणदाता उस ठहराव का पक्षधार नहीं है तो ऋणदाता के लिए वे दोनों ही मूल ऋणी माने जाएंगे और त्रुटि की दशा में वह एक या दोनों पर विवाद कर सकता है।

प्रतिभू की दायित्व से मुक्ति
(Circumstances in which Surety's Liability is Discharged)

1. By Notice (सूचना देकर) (Sec 130)
2. By Death of Surety (मत्यु द्वारा) (Sec 131)
3. Change in the terms of the original contract (संविदे की शर्तों में परिवर्तन होने पर) (Sec. 133)
4. By discharge of Principal Debtor (मूल ऋणी के मुक्त होने पर) (Sec. 134)
5. By arrangement between Principal Debtor (मूल ऋणी और ऋणदाता के बीच समझौता होने पर) (Sec. 135)
6. ऋणदाता के किसी कार्य या मूल से प्रतिभू के अधिकार में कमी आने पर (Sec. 138)
7. By loss of Security (प्रतिभूति खो जाने पर) (Sec. 141)
8. प्रतिभूति अनुबन्ध के अवैध हो जाने पर (Sec. 142)
9. By execution of contract (अनुबंध के निष्पादन द्वारा) (Sec. 144)

प्रतिभू के अधिकार
(Rights of Surety)

A) ऋणदाता (Against the Creditor)

1. **प्रतिभूमि वापिस आने का अधिकार** :– प्रतिभू द्वारा मूल ऋणी की अदायगी कर देने पर प्रतिभू को मूल ऋणी के सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। अतः प्रतिभू ऋणदाता से वह सारी प्रतिभूति जो कि मूल ऋणी ने अनुबंध करते समय ऋणदाता को ऋण के बदले में दी है वापिस प्राप्त कर सकता है।
2. **ऋणी के आचरण के सम्बन्ध में सूचना पाने का अधिकार** :– प्रतिभू को गारंटी देते समय मूलऋणी के आचरण के सम्बन्ध में ऋणदाता से सभी सूचनाए जिसकी कि उसे जानकारी है, प्राप्त करने का अधिकार है। यदि वह पर्याप्त जानकारी नहीं देता तब प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाएगा।

B) मूल ऋणी के विरूद्ध अधिकार (Rights against Principal Debtor)

1. **प्रतिस्थापन का अधिकार** :– जब मूल ऋणी द्वारा त्रुटि होने पर भी प्रतिभू उसको ऋण देता है तो वह ऋणदाता का स्थान ग्रहण कर लेता है और उसे वह सभी अधिकार मिल जाते हैं जोकि एक ऋणदाता के एक ऋणी के प्रति होते हैं।
2. **क्षतिपूर्ति का अधिकार** :– गारंटी के प्रत्येक अनुबंध में मूल ऋणी द्वारा प्रतिभू की क्षतिपूर्ति करने का वचन निहित होता है अतः मूल ऋणी के लिए ऋण का भुगतान कर दिए जाने पर उसे उस सब धन जो मूल ऋणी से प्राप्त करने का अधिकार है। जोकि उसने वैध रूप से चुकाई है।

C) सह प्रतिभू के विरूद्ध अधिकार (Right against Co-sureties)

जब एक ऋण या वचन के लिए एक से अधिक प्रतिभू होते हैं तो उन्हें सह–प्रतिभू कहते हैं। सह प्रतिभू का दायित्व संयुक्त अथवा पथक होता है।

1. दायित्व को बराबर बाँटने का अधिकार
2. भिन्न–भिन्न रकम के लिए प्रतिभूति
3. Sec. 138 के अनुसार यदि ऋणदाता किसी एक प्रतिभू को मुक्त कर देता है तो इससे अन्य प्रतिभू के दायित्व मुक्त नहीं होते।

Difference Between Contracts of Indemnity and Guarantee

	Basis (आधार)	Indemnity (हानि रक्षा)	Guarantee (प्रतिभूमि)
1.	पक्षधार	दो पक्षधार होते हैं हानि रक्षक व हानि रक्षाधारी।	तीन पक्षधार होते हैं, ऋणी, ऋणदाता प्रतिभू
2.	अप्रबंधेकी संस्था	हानिरक्षक व हानि–रक्षाधारी के बीच केवल एक अनुबंध होता है।	तीन अनुबंध होते हैं, ऋणी व ऋणदाता, ऋणी व प्रतिभू, ऋणदाता व प्रतिभू के बीच
3.	वचन	हानिरक्षक सम्भावित हानि से बचाने का वचन देता है।	प्रतिभू एक विद्यमान ऋण की प्रतिभूति देता है।
4.	उत्तरदायित्व	हानिरक्षक, हानिरक्षाधारी की हानि से बचान का वचन देता है। अतः वचन–	प्रतिभू, मूल ऋणी की त्रुटि की दशा में ही अपने वचन पालन के लिए उत्तरदायी होता है। प्रतिभू का

		दाता का दायित्व स्वतंत्र व प्रमुख होता है।	दायित्व गौंण होता है।
5.	क्षेत्र	इसमें गारंटी अनुबंध नहीं आते	गारंटी अनुबंधों में हानिपूर्ति का गर्भित वचन होता है।
6.	प्रतिफल	प्रारम्भ से ही मूल्यवान प्रतिफल होता है।	प्रतिफल का होना आवश्यक नहीं।
7.	प्रकृति	क्षतिपूर्ति का अनुबंध केवल क्षति के भुगतान के लिए होता है।	ये जमानत के रूप में होते हैं।
8.	दायित्व की उत्पत्ति	क्षतिपूर्ति देने वाले का दायित्व घटना के घट जाने पर ही उत्पन्न होता है।	मूल ऋणी द्वारा भुगतान न करने की दशा में गारंटी देने वाले का दायित्व उत्पन्न होता है।

अध्याय-9
निक्षेप के अनुबंध
(Contracts of Bailment and Pledge)

निक्षेप का शाब्दिक अर्थ माल की सुपुर्दगी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को एक निश्चित समय अथवा उद्देश्य के लिए देना है। जो कि एक निश्चित समय या उद्देश्य के पूरा होने पर उसके देने वाले को लौटा देता है। गिरवी के अनुबंध भी निक्षेप के अनुबंध है।

निक्षेप का साधारण अर्थ एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छा से किसी विशिष्ट उद्देश्य से वस्तु का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरण से है। जिसमें उद्देश्य पूरा होने पर वस्तु को वापिस करने का अनुबंध होता है।

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 148 के अनुसार ''जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विशेष उद्देश्य से, इस अनुबंध पर माल की सुपुर्दगी करता है कि उस उद्देश्य को पूरा हो जाने पर माल सुपुर्दगी देने वाले को लौटा दिया जायेगा या उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जाएगी तो माल की ऐसी सुपुर्दगी को निक्षेप कहते है।

Example : राम, श्याम को परीक्षा देने के लिए कए पुस्तक देता है जो कि परीक्षा होने पर लौटा दी जाएगी। यह निक्षेप का अनुबंध है जिसमें राम निक्षेपी श्याम निक्षेपगहीता।

निक्षेप के आवश्यक लक्षण व तत्व
(Main Features of Elements or Assumptions of Bailment)

1. **माल की सुपुर्दगी :** निक्षेप अनुबंध का महत्वपूर्ण लक्ष्य माल को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति का सुपुदर्गी है। यदि माल की Delivery नहीं हो निक्षेप का अनुबंध नहीं।

   माल की Delivery वास्तविक तथा रचनात्मक हो सकती है :–

   जब माल की निक्षेपी द्वारा निक्षेपगहीता को सुपुर्द किया जाता है तो वास्तविक सुपुर्दगी है। इसके अन्दर माल पर अधिकार का हस्तांतरण होता है, माल के स्वामित्व का नहीं।

   जब माल पहले से ही किसी व्यक्ति के पास है और बाद में उसे निक्षेपगहिता के रूप में रखना स्वीकार कर लेता है तो यह रचनात्मक सुपुर्दगी (Constructive Delivery) है।

2. **दो पक्षकार :** निक्षेप के अनुबंध में भी दो पक्षकारों का होना आवश्यक है। दो पक्षकार Bailee or Bailor है। Bailor माल की Delivery देता है तथा Bailee Delivery लेता है।

3. **सुपुर्दगी किसी विशेष उद्देश्य के लिए :** निक्षेप के अनुबंध में माल की सुपुर्दगी किसी विशेष उद्देश्य के लिए की जाती है तथा ऐसा उद्देश्य अस्थायी होता है।

4. **विशिष्ट माल की वापसी :** पक्षकारों के बीच यह अनुबंध होता है कि विशिष्ट उद्देश्य हो जाने पर माल को निक्षेपी को वापिस कर देगा। विशिष्ट माल वापस किया जाना चाहिए। उसका रूप चाहे बदल गया हो।

5. **माल का अधिकार हस्तांतरण :** निक्षेप के अनुबंध में माल का अधिकार प्रयोग के लिए हस्तांतरित होना चाहिए। यदि ऐसा हस्तांतरण नहीं होता तो वह निक्षेप नहीं। हस्तांतरण स्वामित्व का नहीं होना चाहिए। केवल माल के कब्जे का होना चाहिए।

6. **वस्तु की चल प्रकृति :** निक्षेप का अनुबंध केवल चल वस्तुओं से ही सम्बन्धित है। अचल वस्तुएं जैसे – मकान, जमीन आदि का निक्षेप नहीं किया जा सकता।

क्या बैंक में जमा धन निक्षेप है ?

किसी भी व्यक्ति द्वारा बैंक में चालू खाता, जमा खाता, अवधि मुद्दती खाते में रुपया जमा करवाना निक्षेप नहीं कहलाता क्योंकि बैंक उसी रुपये को नहीं लौटाता जो जमा किया जाता है, बल्कि बैंक जमा राशि के बराबर रुपया वापस करता है। यहां पर बैंक और जमा करवाने वाले के बीच ऋण और ऋणदाता के सम्बन्ध होते हैं। लेकिन जब कोई व्यक्ति कुछ मूल्यवान धातु, जेवरात या रुपया बैंक के लॉकर में सुरक्षा के लिये रखता है तो वह निक्षेप कहलाएगा।

निक्षेप अनुबन्ध के प्रकार

(Kinds of Bailment Contract)

निक्षेप अनुबंध को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. शुल्क की दष्टि से
2. उद्देश्य की दष्टि से

1. **शुल्क की दष्टि से** (From Fee Point) –
   (*i*) **सशुल्क निक्षेप** (Bailment with Fee) – निक्षेप की शर्तों के अनुसार यदि निक्षेपी अथवा निक्षेपगहीता को कोई पारिश्रमिक या शुल्क मिलना निश्चित हुआ है तो ऐसा निक्षेप शुल्क सहित निक्षेप कहलाएगा। जैसे – रेलवे या बैंक लॉकर में वस्तुएं सुरक्षित रखने के लिए सशुल्क क्लाकरूम लेना इत्यादि।

   (*ii*) **निशुल्क निक्षेप** (Bailment without Fee) – जब निक्षेप के लिये कोई पारिश्रमिक या शुल्क नहीं लिया जाता है तो इसे निशुल्क निक्षेप कहा जाएगा।

उदाहरण के लिए अनिल द्वारा अपनी साइकिल अपने मित्र केशव को स्कूल तक जाने के लिये देना निशुल्क निक्षेप है।

2. **उद्देश्य की दष्टि से** (From Objective Point) –
   (*i*) **प्रयोग के लिये निक्षेप** (Bailment for use) – जब स्वामी स्वेच्छा से अपनी वस्तु को किसी अन्य व्यक्ति को प्रयोग के लिये सुपूर्द करता है तो यह प्रयोग के लिये निक्षेप कहलाएगा।

   (*ii*) **सुरक्षित रखने के लिये निक्षेप** (Bailment for Safe Custody) – जब निक्षेपी किसी वस्तु को केवल सुरक्षा के लिये निक्षेपगहीता को सौंपता है तो इसे सुरक्षा के लिये निक्षेप कहा जाएगा। जैसे – 'अ' यात्रा के लिये बाहर जाता है तथा कुछ कीमती सामान 'ब' के पास उसकी सुरक्षा के लिये छोड़ देता है (अ के आने तक) तो ऐसा निक्षेप सुरक्षा के लिये निक्षेप कहलाएगा।

   (*iii*) **परिवहन सम्बन्धी या दूसरे स्थान पर ले जाने का निक्षेप** (Bailment for Transportation or for taking to another place) – यदि कुछ वस्तुएं वाहक को इस उद्देश्य से दी जाती हैं कि वह उन्हें निश्चित स्थान पर पहुंचा दे तो यह परिवहन संबंधी निक्षेप कहलाएगा। जैसे – रेलवे को माल सौंपना।

   (*iv*) **मरम्मत के लिये निक्षेप** (Bailment for Repairs) – यदि कोई वस्तु किसी अन्य व्यक्ति को मरम्मत के लिये सुपुर्द की जाती है तो यह मरम्मत के लिये निक्षेप कहलाएगा। जैसे – बढ़ई को मरम्मत के लिए फर्नीचर सौंपना।

   (*v*) **स्वरूप परिवर्तन के लिये निक्षेप** (Bailment for Changing the State) – जैसे गेंहू पीसने के लिये चक्की मालिक को गेहूं सौंपना या दर्जी को सूट सिलवाने के लिए कपड़ा सौंपना।

   (*vi*) **गिरवी द्वारा निक्षेप** (Bailment for Pledge) – ऋण लेते समय प्रतिभूति के रूप में वस्तुएं ऋणदाता के यहां जमा करना गिरवी कहलाता है।

निक्षेपी के कर्त्तव्य अथवा उत्तरदायित्व

(Duties and Rights of Bailee)

1. **निक्षेप किये गये माल के दोषों को प्रकट करना** – धारा 150 के अनुसार निक्षेपी का कर्त्तव्य है कि निक्षेपगहीता को निक्षेप किये गये माल के उन सब दोषों को प्रकट कर दे जिनका निक्षेपी को ज्ञान है तथा जिनसे माल के प्रयोग में बाधा पड़ती है अथवा जो निक्षेपग्रहीता को असाधारण संकट में डाल दें, तो वह ऐसे दोषों से निक्षेपगहीता को प्रत्यक्ष रूप से होने वाली क्षति के लिये उत्तरदायी होगा। किराये के निक्षेपी में निक्षेपी का उत्तरदायित्व अपेक्षाकृत अधिक होता है।

   उदाहरण के लिये रमेश अपनी गाड़ी किराये पर महेश को देता है गाड़ी में कुछ दोष हैं जिनके कारण गाड़ी असुरक्षित है परन्तु इन दोषों का ज्ञान रमेश को नहीं है। गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है। जिसमें महेश को चोट लग जाती है। रमेश, महेश का क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी है भले ही उसे गाड़ी के दोषों का ज्ञान नहीं था।

2. **निक्षेपगहीता द्वारा किये गये आवश्यक व्ययों का भुगतान** – धारा 158 के अनुसार तथा निक्षेप की शर्तों के आधार पर निक्षेपगहीता को निक्षेप के लिए कोई वस्तु रखनी है , अथवा ले जानी है, या निक्षेप के लिये उस पर कोई काम करना है और निक्षेपगहीता को उसका कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता है तो ऐसी दशा में निक्षेपी निक्षेपगहीता को ऐसे सभी व्यय चुकाने के लिए बाध्य है जो निक्षेपगहीता द्वारा निक्षेप के आशय के लिये किये गये हैं।

3. **निक्षेपगहीता की क्षतिपूर्ति करना** – धारा 164 के अनुसार निक्षेप, निक्षेपगहीता की ऐसी किसी भी हानिपूर्ति के लिये उत्तरदायी है जो निक्षेपगहीता को इस कारण उठानी पड़ी कि निक्षेपी निक्षेप करने अथवा माल को वापस पाने अथवा उसके सम्बन्ध में कोई आदेश देने का अधिकारी नहीं था अर्थात् जो हानि निक्षेपगहीता को निक्षेपी के अधिकार की कमी या स्वामित्व में दोष के कारण पहुंचे इसके लिये निक्षेपी उत्तरदायी होगा। उदाहरण के लिये 'अ' एक ऐसी मोटर किसी नीलामकर्त्ता 'स' को देता है। जिसका वास्तविक स्वामी 'ब' है और उस मोटर को नीलाम करने का आदेश देता है। 'स' यह जानते हुए कि मोटर का वास्तविक स्वामी 'ब' है उसे तीसरे व्यक्ति के लिये नीलाम कर देता है। 'ब' 'स' पर अनाधिकृत विक्रय के लिए वाद प्रस्तुत करता है। यहां पर 'अ', 'स' को उप सब हानियों को पूरा करने के लिये बाध्य है जो 'स' द्वारा भुगतान की गई हैं।

4. **निर्धारित समय से पूर्व निक्षेप समाप्ति पर दायित्व** – धारा 159 के अनुसार निःशुल्क निक्षेप की दशा में यदि उद्देश्य की समाप्ति या पूर्व या निर्धारित समय से पूर्व की निक्षेपी वस्तुओं को वापिस ले लेता है और यदि इस व्यवहार के कारण निक्षेपगहीता को लाभ की अपेक्षा हानि उठानी पड़ती है , तो निक्षेपी ऐसी हानि व लाभ के अन्तर को चुकाने के लिये बाध्य है।

निक्षेपी के अधिकार

(Rights of Bailor)

1. **निक्षेपगहीता की असावधानी से हुई हानि की क्षतिपूर्ति** – धारा 152 के अनुसार यदि निक्षेपगहीता ने माल की उचित देखभाल नहीं की है जैसे कि एक सामान्य व्यक्ति से उसी प्रकार की वस्तु के सम्बन्ध में समान परिस्थितियों में अपेक्षा की जा सकती है तो इसके परिणामस्वरूप होने वाली क्षति की पूर्ति निक्षेपी, निक्षेपगहीता से प्राप्त करने का अधिकारी है।

2. **निक्षेपगहीता द्वारा असंगत कार्य करने पर निक्षेप समाप्त करना** – धारा 153 के अनुसार यदि निक्षेपगहीता निक्षेप किये गये माल कें संबंध में कोई ऐसा कार्य करता है जो निक्षेप की शर्तों के असंगत है तो निक्षेपी अपनी इच्छा पर अनुबंध समाप्त कर सकता है तथा निक्षेप किया गया माल वापिस ले सकता है।

3. **निक्षेपगहीता द्वारा अनाधिकृत उपयोग करने पर क्षतिपूर्ति प्राप्त करना** – धारा 154 यदि निक्षेपगहीता शर्तों के विपरीत कोई अनाधिकृत उपयोग करता है और निक्षेपी के माल के संबंध में या वस्तु के संबंध में कोई हानि उठानी पड़ी है तो निक्षेपी को ऐसी समस्त हानियों का क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार है।

यहां पर यह समझना जरूरी है कि यदि कार्य शर्तों के असंगत है तो निक्षेपी को अनुबन्ध समाप्त करने का अधिकार और यदि वह यह कार्य अनाधिकृत उपयोग के अन्तर्गत आता है तो केवल क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार है। असंगत तथा अनाधिकृत का फैसला न्यायालय द्वारा किया जाएगा।

4. **निक्षेपगहीता द्वारा निक्षेपित माल को स्वयं के माल में मिलाने पर क्षतिपूर्ति** – धारा 155 के अनुसार यदि निक्षेपगहीत निक्षेपी की सहमति से निक्षेपित माल को अपने माल में मिला लेता है तो ऐसी मिलावट में निक्षेपी का अधिकार अंग या भाग के बराबर होगा। लेकिन धारा 156 के अनुसार यदि ऐसी मिलावट बिना निक्षेपी की सहमति से की जाती है और माल अलग–अलग होने योग्य है तो दोनों पक्षकार अपने–अपने माल के अधिकारी होंगे तथा इस संबंध में होने वाले सभी व्यय तथा मिलावट के कारण होने वाली हानियों की पूर्ति निक्षेपगहीता द्वारा की जाएगी।

   घारा 157 के अनुसार यदि माल विभाजन योग्य नहीं है तो निक्षेप निक्षेपगहीता से सम्पूर्ण माल की क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी है।

5. **निशुल्क निक्षेप की स्थिति में किसी भी समय निक्षेपित वस्तु प्राप्त लेने को अधिकार** – धारा 159 निशुल्क निक्षेप की दशा में निक्षेपी को अधिकार है कि वह किसी भी समय निक्षेपित वस्तु को ले सकता है बेशक निक्षेप निश्चित अव्ययी या समय के लिये किया गया हो लेकिन यदि निक्षेपगहीता को निक्षेप से प्राप्त लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है तो निक्षेपी को निक्षेपगहीता की इस क्षति की पूर्ति करनी होगी।

6. **माल को वापस पाने का अधिकार** – धारा 160 के अनुसार निक्षेप की निश्चित अवधि अथवा उद्देश्य पूरा होने पर निक्षेपी, निक्षेपित माल को पाने का अधिकार है।

7. **निक्षेपित माल में वद्धि या लाभ पाने का अधिकार** – धारा 163 के अनुसार किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में यदि निक्षेप किये गये माल में कुछ वद्धि होती है या लाभ होता है तो निक्षेपी को इस वद्धि या लाभ को पाने का अधिकार है उदाहरण के लिए 'अ' अपनी गाय अपने मित्र 'ब' के पास कुछ समय के लिए देखभाल के लिये छोड़ देता है लेकिन इस दौरान गाय बछड़े को जन्म देती है इस दशा में 'अ' को गाय के साथ बछड़ा भी प्राप्त करने का अधिकार है।

निक्षेपगहीता के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व

1. **निक्षेप किये गये माल की उचित देखभाल करना** – धारा 151 के अनुसार निक्षेपगहीता का कर्त्तव्य है कि निक्षेप किये गये माल की उतनी ही सावधानी से देखभाल करे जितनी की एक साधारण बुद्धि का व्यक्ति समान परिस्थितियों में अपने माल की देखभाल करता है यदि निक्षेपगहीत इस संबंध में कोई लापरवाही करता है तो वह क्षतिपूर्ति के लिये उत्तरदायी होगा।

2. **निक्षेप की शर्तों के असंगत कोई कार्य न करना** – धारा 153 के अनुसार यदि निक्षेपगहीता निक्षेपित माल के संबंध में कोई ऐसा कार्य करता है जो निक्षेप की शर्तों के असंगत है तो निक्षेपी अपनी इच्छा पर अनुबन्ध समाप्त कर सकता है तथा निक्षेप किया गया माल वापिस ले सकता है।

3. **अनाधिकृत उपयोग न करना** – धारा 154 के अनुसार ऐसा करने पर निक्षेपगहीता क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा।

4. **निक्षेपित माल को निजीमाल के साथ न मिलाना** – धारा 155, 156 तथा 157 इनका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

5. **निक्षेपित किये गये माल को वापिस करना** – धारा 160 व 161

6. **वद्धि अथवा माल को वापिस करना** – धारा 163

7. **विरोधी स्वामित्वधिकार प्रस्तुत न करना** – भारतीय साक्ष्य अधिनियम का धारा 147 के अनुसार निक्षेपगहीता निक्षेप किये गए माल को न तो बेच सकता है और न ही गिरवी रख सकता है।

निक्षेपगहीता के अधिकार

(Rights of Bailee)

वास्तव में निक्षेपी के कर्त्तव्य ही निक्षेपगहीता के अधिकार हैं। निक्षेपी द्वारा जिन कर्त्तव्यों का पालन करने में त्रुटि की जाती है। उसी के विरूद्ध निक्षेपगहीता को अधिकार प्राप्त हो सकते हैं।

1. **निक्षेप माल के दोषों के कारण क्षतिपूर्ति का अधिकार** – धारा 150 के अनुसार
2. **आवयक व्यय प्राप्त करने का अधिकार** – धारा 158 के अनुसार
3. **निर्धारित समय या उद्देश्य से पहले ही निक्षेप अनुबन्ध का खण्डन करने की दशा में अधिकार** – धारा 159 के अनुसार
4. **झूठे या गलत स्वामित्व की दशा में क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार** – धारा 164 के अनुसार
5. **सह-स्वामियों में से किसी एक को माल सुपुर्द करने का अधिकार** – धारा 165 के अनुसार किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में यदि अनेक सहस्वामियों द्वारा किसी वस्तु का निक्षेप किया गया है तो ऐसी दशा में निक्षेपगहीता किसी भी एक सह–स्वामी को बिना अन्य सहस्वामियों की सहमति लिये वस्तु लौटा सकता है।
6. **वाद चलाने का अधिकार** – धारा (166, 167) के अनुसार यदि माल के संबंध में निक्षेपी को अच्छा अधिकार नहीं है तथ निक्षेपगहीता निक्षेप ऐसी सुपूर्दगी के लिये माल के स्वामी के प्रति उत्तरदायी नहीं है। यदि निक्षेपी के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति निक्षेप किये हुए माल पर दावा रखता है, तो वह न्यायालय में प्रार्थना कर सकता है कि निक्षेपी को माल की सुपुर्दगी रोक दी जाए और माल के संबंध में वास्तविक स्वामित्व का निर्णय कर दिया जाये।
7. **विशिष्ट पूर्वाधिकार** – धारा 170 के अनुसार यदि निक्षेपगहीता ने वस्तु के संबंध में अनुबन्ध के अन्तर्गत कोई ऐसी सेवा की है जिसमें व्यक्ति के श्रम व कौशल का प्रयोग किया गया है तो किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में निक्षेपगहीता को तब तक उस वस्तु को अपने पास रखने का अधिकार है जब तक कि उसे उसकी सेवा का यथोचित पारिश्रमिक नहीं मिल जाता है। यहां पर निक्षेपगहीता उस माल को केवल रोक सकता है बेच नहीं सकता।
8. **सामान्य पूर्वाधिकार** (Right of General Lien) – धारा 171 के अनुसार कुछ विशेष प्रकार के निक्षेपगहतियों को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी भी प्राप्त राशि या व्ययों के न चुकाए जाने पर निक्षेपित किसी भी सम्पत्ति को रोक सकता है, चाहे व रोकी गई सम्पत्ति के लिये हो अथवा अन्य किसी सम्पत्ति के लिये। यह अधिकार केवल बैंक, फैक्टर, घटना लिए, उच्च न्यायालय के अटोरनी जनरल तथा बीमा पालिसी के दलालों को ही प्राप्त है।
9. **अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध अधिकार** – जब किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा निक्षेपगहीता को निक्षेपित वस्तु के प्रयोग या कब्जे से वंचित करने के लिए कोई अनुचित प्रयत्न किया जाता है तो निक्षेपगहीता को उस तीसरे व्यक्ति के विरूद्ध उचित कार्यवाही करने यहां तक कि मुकदमा चलाने का अधिकार भी होगा। ऐसे बाद में क्षतिपूर्ति के रूप में जो भी मिलेगा वह निक्षेपी तथा निक्षेपगहीता के मध्य उनके हितों के अनुसार बांटा जाएगा।

निक्षेपगहीता के रूप में रेलवे कम्पनी सराय तथा होटल चलाने वालों का दायित्व अनुबन्ध अधिनियम की धारा 151 तथा 152 से ही नियमित होगा।

निक्षेप की समाप्ति

(Termination of Bailment)

1. **निक्षपेप की शर्तों के असंगत कार्य करने पर** – धारा 153 के अनुसार
2. **निःशुल्क निक्षपे की दशा में निक्षेपी की इच्छा पर** – धारा 159 के अनुसार
3. **अवधि व्यतीत होने पर** – धारा 160 के अनुसार
4. **उद्देश्य पूर्ण होने पर** – धारा 160 के अनुसार
5. **निःशुल्क निक्षेप की दशा मे निक्षेपी अथवा निक्षेपगहीता की मत्यु होने पर** – धारा 162 के अनुसार

माल पाने वाला

(Finder of Goods)

माल पाने वाला वह व्यक्ति कहलाएगा जो किसी दूसरे व्यक्ति के खोए हुए माल को पाता है। माल पाने वाला व्यक्ति माल के स्वामी से कोई स्पष्ट समझौता नहीं करता लेकिन वास्तव में वह अपनी वैधानिक स्थिति के कारण एक विशिष्ट प्रकार का निक्षेपगहीता बन जाता है। यह अनुबन्ध गर्भित अनुबंध की श्रेणी में आता है।

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 71 के अनुसार खोई हुई वस्तु को पाने वाला निक्षेपगहीता के रूप में ही होता है।

माल पाने वाले का अधिकार

(Rights of Finder of Goods)

1. **माल पर पूर्वाधिकार** – धारा 168 के अनुसार माल पाने वाला व्यक्ति माल के वास्तविक स्वामी से ऐसे सभी व्ययों का भुगतान करने का अधिकारी है जो उसने माल की सुरक्षा व स्वामी का पता लगाने पर व्यय किये हैं। वह इन व्ययों के लिये वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता लेकिन वह माल को उस समय तक अपने अधिकार में रख सकता है जब तक व्ययों की क्षतिपूर्ति न हो जाए।

   विल्सन बनाम एण्डरसन (Wilson Vs. Anderson) के केस में यह फैसला कि पाने वाला वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता लेकिन वह अप्रत्यक्ष रूप से माल को रोक कर प्राप्त कर सकता है।

2. **घोषित पुरस्कार के लिए वाद** – यदि माल के स्वामी वस्तु के लिये किसी पुरस्कार की घोषणा की गई है तो पाने वाला उस पुरस्कार को पाने का अधिकारी होगा तथा पुरस्कार मिलने तक उस वस्तु को रोक सकता है।

3. **माल बेचने का अधिकार** – धारा 169 के अनुसार यदि यथोचित परिश्रम के बाद भी स्वामी का पता न चले अथवा मांग करने पर भी वह पाने वाले को वैध व्यय चुकाने से इन्कार करे, तो पाने वाला माल को बेचक सकता है किन्तु उसे बेचने को अधिकार उसी दशा में होगा –

   (*i*) जब वस्तु नष्ट होने या उसके मूल्य का अधिकार भाग कम हो जाने का भय है।

   (*ii*) जब पाई हुई वस्तु के संबंध में पाने वाले का वैध व्यय उसके दो तिहाई मूल्य तक पहुँच जाता है।

माल पाने वाले के कर्त्तव्य

(Duties)

1. माल के उचित देखरेख का कर्त्तव्य
2. वास्तविक स्वामी की खोज का कर्त्तव्य
3. वास्तविक स्वामी को माल लौटाने का कर्त्तव्य
4. पाए हुए माल को स्वयं के लिये उपयोग न करना।
5. पाए हुए माल को निजी माल के साथ न मिलाना

ग्रहणधिकार या पूर्वाधिकार

(Lien)

''एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के माल को जो कि उसके अधिकार में है, परन्तु जो किसी दूसरे का है, उस समय तक रोक रखने का अधिकार है, जब तक कि उसकी कुछ मांगों के पूरा न कर दिया जाए।''

ग्रहणधिकार में वस्तु या माल को केवल अपने कब्जे में रोके रखने का अधिकार ही मिलता है, बेच देने अथवा उसकी अन्य किसी प्रकार से व्यवस्था कर देने का नहीं।

ग्रहणाधिकार के लक्षण

1. माल पर अधिकार होने पर ही ग्रहणाधिकार की उत्पत्ति होती है।
2. ग्रहणाधिकार का जन्म कानून द्वारा होता है न कि अनुबन्ध द्वारा।

3. माल पर अधिकार वैधानिक ढंग से किया गया हो, उत्पीड़न, कपट, मिथ्यावर्णन आदि द्वारा नहीं।
4. माल को केवल रोक कर रखने का अधिकार मिलता है न कि बेचने का।
5. माल का वास्तविक स्वामी ग्रहणाधिकारी का प्रयोग करने वाले व्यक्ति के अलावा अन्य व्यक्ति होना चाहिये।
6. ग्रहणाधिकार को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तान्त्रण नहीं किया जा सकता है।
7. ग्रहणाधिकार उस समय तक ही रहता है जब तक निक्षेपगहीता की मांगें पूरी नहीं कर दी जाती।
8. माल अधिकार से बाहर होने पर ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है।

ग्रहणाधिकार के प्रकार

ग्रहणाधिकार दो प्रकार का होता है :–

1. विशिष्ट ग्रहणाधिकार
2. साधारण ग्रहणाधिकार

1. **विशिष्ट ग्रहणाधिकार** (Particular Lien) – विशिष्ट ग्रहणाधिकार किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु का केवल उसी वस्तु विशेष के संबंध में किए गऐ परिश्रम तथा व्ययों का भुगतान पाने हेतु उस वस्तु को रोके रखने के अधिकार को कहते हैं। ऐसे ग्रहणाधिकार का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण धारा 170 के अधीन निक्षेपगहीता को प्राप्त विशेषाधिकार है। राजनियम के अनुसार, विशिष्ट ग्रहणाधिकार निम्नलिखित व्यक्तियों को प्राप्त हैं :–

   (*i*) खोया हुआ माल पाने वाले को (Finders of Goods) — Sec. 168
   (*ii*) निक्षेपगहीता को (Bailees) — Sec. 170
   (*iii*) गिरवी रखने वाले को (Pawnees) — Sec. 173
   (*iv*) एजेण्ट को (Agent) — Sec. 221
   (*v*) अदत विक्रेता को (Unpaid Sellers) — Sec. 47 Under Goods Sales Act

2. **साधारण ग्रहणाधिकार** (General Lien) – व्यापक अथवा साधारण ग्रहणाधिकार किसी भी वस्तु को हिसाब की साधारण बाकी का भुगतान पाने तक रोक रखने के अधिकार को कहते हैं। अनुबंध अधिनियम की धारा 171 के अनुसार, निम्नलिखित व्यक्तियों को साधारण ग्रहणाधिकार प्राप्त हैं :–

   (*i*) बैंकर (Bankers) — Sec. 171
   (*ii*) आढतिया (Factors) — Sec. 171
   (*iii*) गोदाम के अधिकारी (Wharfinger) — Sec. 171
   (*iv*) हाईकोई के वकील (Attorney of High Court) — Sec. 171
   (*v*) बीमा–पत्र के दलाल (Policy Brokers) — Sec. 171
   (*vi*) अन्य व्यक्ति लिखित अनुबंध द्वारा (Any Person by Express Contract) — Sec. 171

इसके अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति इसका प्रयोग नहीं कर सकता।

साधारण ग्रहणाधिकार तथा विशिष्ट ग्रहणाधिकार में अन्तर
(Difference between General Lien and Particualr Lien)

क्रम	अन्तर का आधार	साधारण ग्रहणाधिकार	विशिष्ट ग्रहणाधिकार
	(1)	(2)	(3)
1.	अधिकार की प्राप्ति	यह कुछ व्यक्तियों का विशेष अधिकार है। अनुबन्ध अधिनियम के अनुसा, यह अधिकार निम्नलिखित व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है :	अधिकार सभी निक्षेपगहीताओं को प्राप्त होता है। कानून के अनुसार या अधिकार निम्नलिखित व्यक्तियों को प्राप्त होता है :

	(1)	(2)	(3)
		1. बैंकर (Bankers), 2. आढ़तिये (Factors), 3. घाटे वाले (Wharfingers), 4. हाईकोर्ट के एटॉर्नी (Attonerny) 5. बीमा–पत्र के दलाल (Policy Brokers) 6. ठहराव द्वारा यह अधिकार प्राप्त होता है।	1. माल के अदत्त विक्रेता को, 2. निक्षेपगहीता को , 3. खोया हुआ माल पाने वालो (Finder of Goods) को, 4. गिरवीं रख लेने वाले (Pownee) को, और 5. एजेण्ट हो
2.	किस प्रकार की वस्तु पर अधिकार की प्राप्ति	यह अधिकार निक्षेपगहीता को निक्षेप की गयी प्रत्येक वस्तु पर प्राप्त होता है।	यह अधिकार केवल उन्हीं वस्तुओं पर ही प्राप्त होता है जिन पर कुछ पारिश्रमिक व्यय किया गया है।
3.	किस प्रकार के कार्यों के लिए अधिकार को प्रयोग	यह अधिकार हिसाब की साधारण बकाया के सम्बन्ध में किसी प्राप्य रकम के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।	यह अधिकार किसी वस्तु विशेष के संबंध में किये गये कार्य के पारिश्रमिक के लिए ही प्रयोग में लाया जा सकता है।

गिरवी
(Pledge)

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 172 के अनुसार ''किसी श्रेणी के भुगतान अथवा किसी वचन के निष्पादन के लिये जमानत के रूप में निक्षेप को गिरवी कहते हैं। इस दशा में जो व्यक्ति गिरवी रखता है अर्थात् निक्षेपी को गिरवी रखने वाला (Plege or Pawnee) कहते हैं, एवं जिस व्यक्ति के पास वस्तु रखी जाती है अर्थात् निक्षेपगहीता को गिरवी रख लेने वाला (Pledge of Pawnee) कहते है।''

इससे स्पष्ट होता है कि गिरवी का अनुबंध भी एक विशेष प्रकार का निक्षेप है इनमें अन्तर केवल उद्देश्य का है।

यदि निक्षेप का उद्देश्य किसी ऋण के भुगतान या किसी वचन को पूरा करने के लिये जमानत हो तो उसे गिरवी कहा जाता है। गिरवी रखने वाले द्वारा माल गिरवी रख लेने वाले को सुपुर्द किया जाता है। यह सुपुर्दगी (Actual) अथवा रचनात्मक (Constructive) दोनों की प्रकार से हो सकती है। अचल सम्पत्तियों के प्रपत्र जमानत के लिये दिये जाने पर यह रहन (Mortgage) कहलाती है गिरवी नहीं।

गिरवी में कब्जे (Possession) का वैधानिक हस्तान्तत्रण होता है अर्थात् केवल वैधानिक कब्जा देना है मौलिक कब्जा देना नहीं।

वैध गिरवी के आवश्यक लक्षण
(Essentials of Valid Pledge)

1. **केवल चल सम्पत्तियों को ही गिरवी रखा जा सकता है** – जैसे चल वस्तुएं, बहुमूल्य चीजें, दस्तावेज, कम्पनियों के अंश, सरकारी प्रतिभूति आदि को ही गिरवी रखा जा सकता है।
2. **माल पर वैधनिक अधिकार** – गिरवी रखने वाले का मल पर वैधानिक अधिकार होना चाहिये वहां पर अधिकार नहीं अपितु वैधानिक अधिकार जरूरी है।
3. **अधिकार का हस्तान्त्रण** – गिरवी रखने वाले व्यक्ति से गिरवी एवं लेने वाले व्यक्ति को वस्तु का हस्तान्त्रण होना आवश्यक है। बिना हस्तान्त्रण के गिरवी की उत्पत्ति नहीं हो सकती।
4. **वस्तु विक्रय योग्य होनी चाहिए** – गिरवी रखी जाने वाली वस्तु बिक्री योग्य होनी चाहिये क्योंकि यदि गिरवी रखने वाला ऋण का भुगतान नहीं करता है तो गिरवी रख लेने वाला माल को बेचकर अपनी राशि प्राप्त कर सकता है।
5. **माल को वापस करना** – गिरवी के उद्देश्य के पूरा हो जाने पर अथवा निश्चित समय बाद गिरवी रख लेने वाले द्वारा गिरवी की विषय वस्तु रखने वाले को वापस कर दी जाती है और गिरवी अनुबंध समाप्त हो जाता है।

गिरवी रखने वाले अथवा गिरवीकर्त्ता के अधिकार

(Rights of Pawner or Pledger)

गिरवी रखने वाले के अधिकार निक्षेपी के अधिकारो के समान ही हैं। इसके कुछ प्रमुख अधिकार निम्नलिखित हैं :–

1. **माल को वापस पाने का अधिकार** (Right to get back goods Pledged) – धारा 160-161 के अनुसार निश्चित समय पर वचन के पालन करने अथवा ऋण का भुगतान करने पर गिरवी रख लेने से उसे वस्तु वापस पाने का अधिकार है।
2. **वद्धि अथवा लाभ पर अधिकार** (Right on Increase or Profit) – धारा 163 के अनुसार यदि गिरवी रखे हुए माल में कोई वद्धि या लाभ होता है तो वह उसको भी पाने का अधिकारी है।
3. **क्षतिपूर्ति का अधिकार** (Right to Compensation) – यदि गिरवी रख लेने वाले व्यक्ति ने माल की उचित देखभाल नहीं की है अथवा माल का दुरुपयोग किया है अथवा माल के सम्बन्ध में कोई त्रुटि की है तो गिरवीकर्त्ता को क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार है।
4. **बिक्री की दशा में लाभ प्राप्त करना** (Right to get Profit in case of Sale) – धारा 176 के अनुसार, गिरवी रखने वाले की त्रुटि की दशा में यदि गिरवी की सम्पत्ति को बेच दिया गया है और इस प्रकार विक्रय की राशि ऋण तथा उसके ब्याज से अधिक हो तो गिरवी रखने वाले को इस आधिक्य (Surplus) राशि को प्राप्त करने का अधिकार है।
5. **त्रुटि करने के बाद गिरवी रखने वाले का अधिकार** (Defaulting Powner's Right) – धारा 177 के अनुसार, यदि ऋण के भुगतान अथवा वचन के निष्पादन के लिए कोई समय निश्चित है और गिरवी रखने वाला निश्चित समय पर भुगतान करने अथवा वचन का निष्पादन करने में त्रुटि करता है, तो वह बाद में माल की वास्तविक बिक्री से पहले किसी भी समय उस माल को छुड़ा सकता है, किन्तु ऐसी दशा में उसको मूल ऋण के अतिरिक्त वह खर्चे भी देने होंगे जो उसकी त्रुटि के कारण हुए हों।

गिरवी रखने वाले अथवा गिरवीकर्त्ता के कर्त्तव्य

(Duties of Pawner or Pledger)

गिरवी रखने वाले के प्रमुख कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं :

1. **ऋण के भुगतान का दायित्व** (Duty of pay debt) – गिरवी रखने वाले का कर्त्तव्य है कि लिये गये ऋण तथा उस पर देय ब्याज का भुगतान देय तिथि पर अथवा उचित समय में कर दे।
2. **माल के दोषों को प्रकट करना** (To disclose the defects in Good) – धारा 150 के अनुसार गिरवी रखने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वस्तु गिरवी रखते समय उसे उन दोषों के बारे में गिरवी रख लेने वाले को बता देना चाहिए जिनका कि उसे ज्ञान है अथवा जो गिरवी रख लेने वाले को संकट में डाल दे।
3. **आवश्यक व्ययों का भुगतान** (To repay the necessary Expenses) – धारा 175 के अनुसार, यदि गिरवी रख लेने वाले द्वारा अनुबन्ध की प्रगति में गिरवी रखी हुई वस्तु की सुरक्षा आदि के सम्बन्ध में उचित व्यय किये गए हैं तो गिरवी रखने वाले का कर्त्तव्य है कि ऐसे समस्त साधारण एवं असाधारण व्ययों का भुगतान गिरवी रख लेने वाले को कर दे।
4. **विक्रय के बाद दायित्व** (Duty after Sale) – ऋण का उचित समय पर भुगतान न करने पर यदि गिरवी रख लेने वाला वस्तु को बेच देता है तथा बिक्री से प्राप्त राशि यदि देय ऋण व ब्याज की मात्रा से कम है तो गिरवी रखने वाले को शेष राशि भुगतान करनी पड़ेगी।

गिरवी रखने लेने वाले अथवा गिरवीग्राही के अधिकार

(Rights of Pawnee or Pledgee)

गिरवी रख लेने वाले को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं :–

1. **माल रोक लेने का अधिकार** (Right of Retaining of Goods) – धारा 173 के अनुसार गिरवीग्राही को मूल ऋण तथा उसका ब्याज या उससे संबंधत अन्य भुगतानों के न हो जाने से पूर्व माल रोकने का अधिकार रहता है, अर्थात् यदि गिरवीकर्त्ता के लिए ऋण या ऋण के ब्याज का भुगतान नहीं करता है तो गिरवीग्राही को अधिकार है कि वह गिरवी

के समान को रोक ले। परन्तु धारा 174 इस बात का स्पष्ट उल्लेख करती है कि केवल उसी माल को रोका जा सकता है जिसको गिरवी रखकर ऋण लिया गया है, अन्य ऋणी के लिए उस माल को नहीं रोका जा सकता है।

2. **बाद में दिये गये कर्ज के लिए माल रोकने का अधिकार** (Right of Retaining for subsequent Advances) – जब गिरवीग्राही, गिरवीकर्त्ता को गिरवी की तारीख के बाद कुछ और कर्ज देता है, तो यह समझा जाता है कि माल रोकने का अधिकार बाद में दिए गए कर्ज पर भी लागू होगा। इस सम्बन्ध में एक विपरीत अनुबन्ध द्वारा ही इस धारणा का खण्डन किया जा सकता है।
3. **असाधारण व्यय पाने का अधिकार** (Right as to Extra-ordinary Expenses) – धारा 175 के अनुसार, गिरवीग्राही गिरवी रखने वाले से उन सम्पूर्ण असाधारण व्ययों को प्राप्त करने का अधिकार रखता है जोकि गिरवी के माल के सम्बन्ध में उसने किये हैं।
4. **गिरवी रखने वाले की त्रुटि की दशा में अधिकार** (Right in case Pawner makes Default) – धारा 176 के अनुसार यदि गिरवीकर्त्ता ऋण का भुगतान या वचन का निष्पादन समय पर नहीं करता तो गिरवीग्राही गिरवीकर्ता के विरूद्ध ऋण तथा वचन के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है और माल को संपार्श्विक या सहायक जमानत (Collateral Security) के रूप में रोक सकता है या गिरवीकर्त्ता को बिक्री की उचित सूचना देकर गिरवी रखे हुए माल को बेच सकता है।

   यदि किसी बिक्री से प्राप्त धन, ऋण या वचन के सम्बन्ध में उचित धन (Due Amount) से कम है तो गिरवीग्राही को यह अधिकार है कि वह शेष धन गिरवीकर्त्ता से प्राप्त कर ले। यदि बिक्री से प्राप्त धन उचित धन से अधिक है तो गिरवीग्राही को चाहिये कि वह आधिक्य (Surplus) धन को गिरवीकर्त्ता को वापस कर दे।
5. **अच्छा अधिकार** (Battle Title) – धारा 177 अ. के अनुसार यदि गिरवी कर्त्ता ने किसी व्यर्थनीय अनुबन्ध (उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, मिथ्यावर्णन तथा कपट से प्रभावित) के अन्तर्गत माल प्राप्त किया है तथा अनुबन्ध होने से पूर्व की वह उस माल को गिरवी रख देता है तो गिरवीग्राही को माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त होता है। परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि गिरवीग्राही ने माल सद्विश्वास से गिरवी रखा है अर्थात् गिरवीग्राही को गिरवीकर्त्ता के दोषयुक्त स्वामित्व का ज्ञान नहीं था।

गिरवी रख लेने वाले अथवा गिरवीग्राही के कर्त्तव्य

(Duties of Pawnee or Pledgee)

गिरवीग्राही के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं :

1. **गिरवी रखे माल की उचित देखभाल करना** (To take reasonable care of the goods pledged) – धारा 151 के अनुसार गिरवी रखे हुए माल की उचित देखभाल करना।
2. **गिरवी रखे माल का अनुचित उपयोग न करना** (Not to make improper use of goods pledged) – धारा 154 के अनुसार गिरवी रखे हुए माल का अनुचित प्रयोग न करना।
3. **गिरवी रखे माल को अपने माल के साथ न मिलाना** (Not to mix the goods pledged with his own goods) – धारा 156 व 157 के अनुसार गिरवी रखे गए माल को अपने माल में न मिलाना।
4. त्रुटि के संबंध में बिक्री करते समय गिरवीकर्त्ता को सूचित करना।
5. बिक्री की अधिक्य राशि को गिरवीकर्त्ता को लौटाना।
5. गिरवी रखे गए माल को गिरवीकर्त्ता को लौटाना।

1. गिरवी तथा निक्षेप में अन्तर

(Distinction between Pledge and Bailment)

अन्तर का आधार	गिरवी (Pledge)	निक्षेप (Bailment)
(1)	(2)	(3)
1. उद्देश्य	इसमें वस्तुओं की सुपुर्दगी किसी ऋण के भुगतान अथवा वचन के निष्पादन की जमानत के रूप में बिक्री की जाती है।	इसमें साधारणतः माल की सुपुर्दगी देखभाल अथवा किसी विशेष प्रयोग के उद्देश्य से होती है।

(1)	(2)	(3)
2. प्रयोग का अधिकार	इसमें गिरवी रख लेने वाले को माल का प्रयोग का अधिकार नहीं होता है।	इसमें माल के प्रयोग के सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है।
3. विक्रय का अधिकार	इसमें ऋण का भुगतान न मिलने पर गिरवी रख लेने वाले को वस्तु बेच देने का अधिकार होता है।	इसमें निक्षपेग्रहीता अपनी वैध मांगों के लिये केवल माल पर विशिष्ट एवं साधारण ग्रहणाधिकार प्राप्त करता है। वस्तु को बेचने का अधिकार नहीं।
4. प्रतिफल	गिरवी में ऋणदाता वस्तु रखने के प्रतिफल में ही ऋण की स्वीकृति प्राप्त करता है।	इसमें प्रतिफल का होना अनिवार्य नहीं होता।
5. क्षेत्र	गिरवी में निक्षेप सम्मिलित है।	निक्षेप में गिरवी सम्मिलित नहीं है।

2. गिरवी तथा ग्रहणाधिकार में अन्तर
(Distinction Between Pledge and Lien)

अन्तर का आधार (Basis of Difference)	गिरवी (Pledge)	ग्रहणाधिकार (Lien)
(1)	(2)	(3)
1. उत्पत्ति (Origin)	इसकी उत्पत्ति अनुबन्ध से होती है।	इसकी उत्पत्ति अधिनियम के द्वारा होती है।
2. उद्देश्य (Object)	गिरवी का उद्देश्य ऋण की जमानत अथवा वचन के निष्पादन की जमानत देना है।	ग्रहणाधिकार का उद्देश्य ग्रहणाधिकारी द्वारा वस्तु पर गए श्रम, सेवा या लागत की वस्तु की स्वामी से मांग करना।
3. विक्रय का अधिकार (Right to Sale)	ऋण का भुगतान प्राप्त न होने पर अथवा वचन का निष्पादन पर किए जाने पर गिरवी रख लेने वाले को वस्तु की बिक्री करके ऋण एवं ब्याज पाने का अधिकार होता है।	ग्रहणाधिकार केवल वस्तु को अपने कब्जे में बनाए रखने का अधिकार है, वस्तु की बिक्री का अधिकार नहीं।
4. समाप्ति (Termination)	गिरवी की समाप्ति केवल ऋण के चुकता हो जाने का वचन के निष्पादित हो जाने पर ही सम्भव है। यदि गिरवी रख लेने वाला ऋण को चुकता होने से पहले वस्तु गिरवी रखने वाले को वापस कर देता है तो भी गिरवी रख लेने वाले का अधिकार समाप्त नहीं होता।	वस्तु पर ग्रहणाधिकारी का कब्जा समाप्त होते ही ग्रहणाधिकार समाप्त मान लिया जाता है।

3. गिरवी तथा रहन में अंतर
(Distinction Between Pledge and Mortgage)

साधारण बोलचाल की भाषा में दोनों ही शब्द समानार्थी समझे जाते हैं, परन्तु वैधानिक दष्टिकोण से दोनों में बहुत अंतर है जो निम्नलिखित आधार पर स्पष्ट होते हैं :–

अन्तर का आधार (Basis of Difference)	गिरवी (Pledge)	ग्रहणाधिकार (Lien)
(1)	(2)	(3)
1. प्रकृति (Nature)	गिरवी हमेशा चल सम्पत्ति की होती है।	रहन सदैव अचल सम्पत्ति का होता है।
2. हस्तांतरण (Transfer)	गिरवी में माल के अधिकार को हस्तांतरण होता है।	रहन में माल के स्वामित्व का भी हस्तांतरण होता है।

(1)	(2)	(3)
3. लिखित होना (Written)	गिरवी के अनुबन्ध का लिखित होना कोई आवश्यक नहीं है।	100 रुपये से अधिक का होने पर रहन का लिखित एवं रजिस्टर्ड होना तथा दो व्यक्तियों की गवाही होना आवश्यक है।
4. प्रयोग का अधिकार (Right to Use)	गिरवी में जमानत के यप में दी गयी वस्तु का प्रयोग गिरवी रख लेने वाला नहीं कर सकता।	रहन में जमानत के रूप में दी गई वस्तु का प्रयोग रहनदार कर सकता है।

गिरवी कौन रख सकता है ?

(Who may Pledge ?)

अथवा

उन व्यक्तियों द्वारा गिरवी, जो वस्तु के स्वामी नहीं हैं

(Pledge by Non-owners)

सिद्धान्त के अनुसार तो केवल माल का मालिक ही अपने माल (चीज) को गिरवी रख सकता है, अन्य व्यक्तियों को दूसरे का माल गिरवी रखने का अधिकार नहीं होता। अतएव यदि कोई अन्य व्यक्ति किसी दूसरे के माल को गिरवी रखता है तो वह अवैध होगा, लेकिन निम्नलिखित दशाओं में अन्य व्यक्ति द्वारा गिरवी रखना भी वैध होता है :–

1. **किसी व्यापारिक एजेण्ट द्वारा गिरवी रखना** (Pledge of goods by a merchantile agent) – धारा 178 के अनुसार, यदि कोई व्यापारिक एजेण्ट अपने मालिक की सहमति से, एजेण्ट के रूप में तथा अपने अनुसार, माल या माल के अधिकार सम्बन्धी कागज–पत्र (Document of Title of Goods) गिरवी रखता है तो वह ऐसा कर सकता है बशर्ते कि उसे अपने स्वामी द्वारा ऐसा करने का अधिकार प्राप्त हो एवं वह ऐसा स्वामी के हित में ही कर रहा हो। यहां यह उल्लेखनीय है कि केवल कमीशन एजेण्ट ही वैध रूप से अपने मालिक की वस्तुओं को गिरवी रख सकते हैं, एक अन्य व्यक्ति (जो एजेण्ट नहीं है), जिसके अधिकार में किसी दूसरे की वस्तुएं हैं वह (दलाल) उनको गिरवी नहीं रख सकता। भारतीय वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 2 (9) के अनुसार, एक 'व्यापारिक एजेण्ट' से तात्पर्य ऐसे एजेण्ट से होता है जिसे व्यापार की सामान्य गतिविधियों के अनुसार माल बेचने, क्रय करने अथवा गिरवी रखने के अधिकार प्राप्त हों।

   उल्लेखनीय है कि नौकर या माल की देखरेख के लिये नियुक्त व्यक्ति व्यापारिक एजेण्ट की भांति वैध गिरवी नहीं रख सकते।

2. **जब गिरवी रखने वाले का माल में सीमित हित हो** (Pledge where pawner has limited interest in goods) – धारा 179 के अनुसार, यदि गिरवी रखने वाला माल का पूर्ण स्वामी नहीं है, किंतु उसका माल में थोड़ा हित है तो उस हित की सीमा तक, उस वस्तु का गिरवी रखना वैध होगा। उदाहरण के लिये, 'अ' को 'ब' की घड़ी सड़क पर पड़ी मिलती है और जो खराब है। 'अ' उस पर 30 रू. मरम्मत के व्यय करता है और 100 रू. में गिरवी रख देता है ऐसी दशा में गिरवी 30 रू. तक वैध होगी और 'ब' 'अ' को 30 रु. देकर घड़ी वापस ले सकता है।

3. **व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी** (Pledge by a person in possession under voidable contract) – धारा 178 अ. के अनुसार यदि गिरवीकर्त्ता ने माल का अधिकार उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट या मिथ्या–वर्णन इत्यादि से प्राप्त किया है और अनुबन्ध व्यर्थ हो जाने से पहले वह उसे किसी अन्य के पास गिरवी रख देता है तो ऐसी गिरवी वैध मानी जायेगी बशर्ते गिरवीग्राही ने ऐसा कार्य सद्भावना से किया हो और उसे इस बात का पता न हो कि उसे गिरवी रखने का अधिकार नहीं है।

4. **सह-स्वामी के अधिकार में रखे माल की गिरवी** (Pledge by co-owner in a possession of Goods) – जब किसी वस्तु के स्वामी एक से अधिक हों और वस्तु उनमें से किसी एक के पास रखी हो और यदि वह व्यक्ति (जिसके पास वह वस्तु रखी है) अन्य सह–स्वामियों की सहमति से उसको गिरवी रख देता है तो वह गिरवी वैध होगी।

मोहन एक बेचे हुए रेडियों सेट को विकास के यहां 300 रू. में गिरवी रख देता है तथा विकास को इस बात का पता नहीं है कि यह रेडियों को बेचा जा चुका है। इस दशा में यह गिरवी का वैध अनुबन्ध है।

अध्याय-10
अभिकरण अथवा एजेंसी के अनुबंध
(Contracts of Agency) : (Sec. 182-238)

एजेंसी
1. (Agency)

Agency से अभिप्रायः दो पक्षकारों के बीच स्थापित उस वैधानिक सम्बन्ध से है जिसके अन्तर्गत कोई व्यक्ति अपना कार्य अथवा वचनों का निष्पादन किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कराता है।

वह व्यक्ति जो किसी दूसरे व्यक्ति की कार्य करने अथवा उसका प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त किया जाता है एजेन्ट कहलाता है। तथा जो व्यक्ति Agent को नियुक्त करता है प्रधान कहलाता है।

Agent or प्रधान के बीच का अनुबंध अथवा सम्बन्ध एजेन्सी का अनुबंध अथवा सम्बन्ध एजेन्सी का अनुबंध अथवा सम्बन्ध कहलाता है। कानून Agent द्वारा किए गए कार्यों को वही मान्यता प्रदान करता है जो कि किसी व्यक्ति के स्वयं के द्वारा किए जाने पर होता है।

Example : R, Bombay में S को कपड़े खरीदने के लिए नियुक्त करता है। यह एक Agency का अनुबंध है। जिसमें R प्रधान व S Agent है।

एजेंसी के नियम
(Rule of Agency)

(*i*) Agent क द्वारा किए गए कार्य प्रधान द्वारा किए गए कार्य माने जाते हैं।

(*ii*) अनुबंध करने के योग्य व्यक्ति जो स्वयं कार्यकर सकता है वह उन सब कार्यों को Agent द्वारा भी करा सकता है। लेकिन व्यक्तिगत प्रकृति के कार्य को Agent से नहीं करा सकता।

जैसे : Painting or Doctor का काम।

Who may employ an agent ?

एजेंट कौन नियुक्त कर सकता है :- Sec. 183 :-

कोई भी व्यक्ति जो स्वस्थ मस्तिष्क तथा वयस्क ही एजेन्ट नियुक्त कर सकता है।

शर्तें

(Requisites)

1. नियोक्ता वयस्क हो।
2. अनुबंध करने की क्षमता रखता हो।
3. स्वस्थ मस्तिष्क का हो।
4. वैधानिक रूप से अनुबंध करने के अयोग्य घोषित न किया गया हो।

एजेंट के लिए प्रतिफल है ?

Agency के अनुबंधों में प्रतिफल का होना अनिवार्य नहीं है। Agent द्वारा किसी दूसरे के लिए कार्य करने के लिए सहमत हो जाना Agency अनुबंधी में पर्याप्त प्रतिफल माना जाता है। Agency के अनुबंध प्रतिफल सहित व प्रतिफल रहित भी हो सकते हैं। यह Agent नियोक्ता के पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर करता है।

एक पत्नी को अपने पति के एजेंट के रूप में कानूनी स्थिति
(Legal Position of a Wife as an Agent of her Husband)

यह सामान्य नियम है कि पति–पत्नी एक–दूसरे के एजेंट नहीं है परन्तु स्पष्ट प्रदर्शन द्वारा या पुष्टिकरण द्वारा वे एक–दूसरे के एजेंट हो सकते हैं। विवाहित स्त्री अपने पति की साख पर क्रय कर सकती है अथवा नहीं यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। पुरुष का अपनी पत्नी के ऋण के लिए दायित्व एजेंसी के सिद्धान्त पर ही निर्भर है। साधारणतः पति तथा पत्नी में एक–दूसरे के लिये एजेंट होने की क्षमता नहीं है। किन्तु यदि पति, पत्नी को आवश्यकताओं को उचित व्यवस्था करने की उपेक्षा करता है तो पत्नी अपनी आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए अपने पति की साख गिरवी रख सकती है और ऐसी स्थिति में पत्नी आवश्यकता के कारण अपने पति की एजेंट हुई। पुरुष अपनी स्त्री के कार्यों के लिए तभी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है जब यह सिद्ध हो जाये कि जो कुछ भी उसकी पत्नी ने किया है, वह अपने पति की व्यक्त या गर्भित आज्ञा से किया है। जब पुरुष ने अपनी पत्नी को स्पष्ट रूप से ऋण लेने का अधिकार दिया है तो वह उत्तरदायी होगा की। जब पति–पत्नी साथ रहते हैं तो उसे अपने पति के नाम पर जीवन की आवश्यकताओं को खरीदने का गर्भित अधिकार है। पति–पत्नी के बीच एजेंसी संबंध है या नहीं, इस संबंध में गिरधारीलाल बनाम क्रोफोर्ड (Girdhari Lal Vs. Crowford) का मामला महत्वपूर्ण है। इस मामले के अनुसार पत्नी के ऋण का दायित्व पति पर एजेंसी सिद्धान्तों पर आधारित है। पति केवल उसी दशा में दायी ठहराया जा सकता है जब यह सिद्ध हो जाये कि पत्नी द्वारा किया गया कार्य उसके पति की स्पष्ट या गर्भित स्वीकृति द्वारा किया गया था। यदि पति ने पत्नी को रुपया उधार लेने या किसी अन्य कार्य को करने को अधिकार दे रखा है तो ऐसी दशा में पति दायी होगा। समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब पत्नी को पति की ओर से एजेंट का कार्य करने का गर्भित अधिकार होता है। यदि पति–पत्नी साथ रह रहे हैं तो पत्नी को अपने पति के नाम से उधार माल खरीदने का गर्भित अधिकार है। पति अपने–आप को दायित्व मुक्त केवल उसी स्थिति में कह सकता है जब वह निम्नलिखित सिद्ध कर दे :–

(*i*) खरीदी हुई वस्तु जीवन के लिए आवश्यक नहीं थी।

(*ii*) उसने स्पष्ट रूप से अपनी पत्नी को ऋण लेने अथवा उधार माल खरीदने से मना कर दिया था।

(*iii*) पति ने विक्रेताओं (दुकानदार) को स्पष्ट कह रखा था कि उसकी पत्नी को उधार न दें।

(*iv*) आवश्यक वस्तुओं के क्रय के लिए उसने पर्याप्त धन पत्नी को दे दिया था।

जब पत्नी अलग रहती है – अपने पति से अलग रहने वाली पत्नी को आवश्यक वस्तुओं के लिए पति की साख पर उधार लेने का अधिकार है।

(*i*) **जब पत्नी, पति की किसी गलती के कारण अलग रहती है** – यदि पति, पत्नी की किसी गलती के बिना ही उसे छोड़ देता है, तो पत्नी को पति की साख पर आवश्यक वस्तुएं उधार लेने का अधिकार है। पत्नी से यह कहकर कि 'वह पति की साख पर उधार न खरीदे' या व्यापारियों से 'पत्नी को उधार न दे' कहने के बाद भी पति इस दायित्व से बच नहीं सकता। किन्तु पत्नी को यह अधिकार तभी है जब पति उसके भर–पोषण के लिए व्यवस्था नहीं करता।

(*ii*) **जब पत्नी अपनी स्वयं की इच्छा के कारण अलग रहती है** – जब पत्नी अपनी इच्छा या बिना किसी कारण अलग रहती है, तो उसे पति का एजेंट नहीं माना जायेगा और आवश्यक वस्तुओं के लिये भी वह पति की साख पर उधार नहीं ले सकती। ऐसी स्थिति में उसके भरण–पोषण के लिए वह बाध्य नहीं होगा।

एजेंट तथा नौकर में अन्तर
(Distinction between Agent and Servant)

एजेंट तथा नौकर में अन्तर समझना आवश्यक है। एजेंट तीसरे पक्षकार के साथ किए गए व्यवहारों में अपने नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करता है तथा नियोक्ता एवं तीसरे पक्षकार के बीच वैधानिक संबंध स्थापित करता है और नियोक्ता की ओर से कार्य करते हुए उसे स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से बाध्य करने का अधिकार है। उसके कार्य की महत्वपूर्ण कसौटी ही यही है

कि नियोक्ता उसके कार्य से बाध्य होता है। नौकर अपने मालिक के नियंत्रण में कार्य करता है और कार्य की प्रगति में अपने मालिक के सभी उचित आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य है, परन्तु साधारणतया तीसरे पक्ष और मालिक के बीच अपने कार्य द्वारा वैधानिक संबंध स्थापित नहीं करता। नौकर और मालिक के बीच अपने कार्य द्वारा वैधानिक संबधं स्थापित नहीं करता। नौकर और मालिक के बीच के संबंधों के मध्य एजेंसी का एक तत्व अवश्य है कि वह भी मालिक की ओर से ततीय पक्ष से व्यवहार तो कर सकता है, परन्तु वैधानिक संबंध स्थापित न होने के अभाव में नौकर एजेंट नहीं हो जाता तथा एजेंट कभी नौकर के रूप में कार्य नहीं करता। एजेंट यद्यपि प्रधान द्वारा दिए गए सभी उचित आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य है, परन्तु नौकर की भांति उस पर नियोक्ता का सीधा नियंत्रण या निरीक्षण नहीं होता। वह अधिकांशतः अपनी बुद्धि–विवेक से कार्य करता है जो उसने करने को कहा जाए। अतः एक एजेंट को नौकर नहीं कहा जा सकता, परन्तु एक नौकर को एक एजेंट के रूप में कार्य करने के लिये विशेष रूप से नियुक्त किया जा सकता है अतः एजेंट तथा नौकर में निम्नलिखित अन्तर है :–

1. नौकर को हर दशा में मालिकों का पालन करने के लिये नियुक्त किया जाता है जबकि एजेंट की नियुक्ति, उसके द्वारा नियोक्ता (Principal) और तीसरे पक्षकार के बीच अनुबंध करने के संबंध (Contractual Relations) स्थापित करने के लिए की जाती है।
2. क्या काम करना है और किस प्रकार करना है, यह आदेश मालिक द्वारा नौकर को दिया जा सकता है जबकि कब काम करना है, यही केवल नियोक्ता बतलाता है, किस प्रकार करना है, यह एजेंट की बुद्धि एवं व्यवहार कुशलता पर छोड़ दिया जाता है।
3. नौकर द्वारा किया गया कार्य मालिक को तीसरे पक्षकारी के विरूद्ध बाध्य नहीं करता, जबकि एजेंट द्वारा किये जाने वाले कार्य से नियोक्ता, तीसरे पक्षकार के विरूद्ध बाध्य (Liable) होता है।
4. एजेंट नियोक्ता का नौकर नहीं है, जबकि नौकर, मालिक का गर्भित एजेंट (Implied Agent) माना जाता है।

एजेंसी का निर्माण अथवा स्थापना
(Creation of Agency)

एजेंसी का संबंध निम्नलिखित रीतियों में से किसी भी रीति द्वारा स्थापित हो सकता है :–

1. **ठहराव द्वारा; मौखिक या लिखित** (By Agreement; Oral or Written) धारा 186 के अनुसार, एक एजेंसी की स्थापना एक लिखित या मौखिक ठहराव द्वारा हो सकती है। जब किसी एजेंट की नियुक्ति, स्पष्ट रूप से या मौखिक की जाती है तो इसे स्पष्ट ठहराव द्वारा एजेंसी कहते हैं। जब एजेंसी की स्थापना एक लिखित अनुबंध द्वारा होती है तो ऐसे अनुबंध में जो शर्तें लिखी होती हैं एजेंट को उन्हीं के अनुसार कार्य करना होता है। जब एक एजेंसी की स्थापना किसी अचल सम्पत्ति के हस्तांतरण के लिए की जाती है तो उस समय ऐसी एजेंसी का अनुबंध केवल लिखित रूप में ही नहीं बल्कि रजिस्टर्ड भी होना चाहिए।

   वकालतनाम भरकर अथवा स्टाम्प पेपर पर लिखकर प्राधिकरण शक्ति (Power of Attorney) द्वारा किसी व्यक्ति को कार्य करने का अधिकार सौंपा जाता है। इस प्रकार की एजेंसी का यह ज्वलंत उदाहरण है। ऐसी एजेंसी को पूर्वनिर्णीत अधिकार से स्थापित एजेंसी (Agency by Precedent Authority) भी कहा जाता है।

2. **सांकेतिक रूप से अथवा गर्भित अधिकार द्वारा** (By Implication or Implied Authority) – धारा 187 के अनुसार, जब पक्षकारों के व्यवहार, आचरण तथा विशेष परिस्थितियों से ऐसा प्रकट होता है कि उनमें एजेंसी के संबंध हैं तो इसे गर्भित ठहराव द्वारा एजेंसी कहते हैं। जैसे साझेदारी में प्रत्येक साझेदार एक–दूसरे का एजेंट समझा जाता है।

   गर्भित एजेंसी की स्थिति में नियोक्ता तीसरे पक्षकार को स्पष्ट सूचना दिए बिना एजेंट के गर्भित अधिकारों को सीमित नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति ने अपनी पत्नी को उसकी ओर से माल उधार क्रय करने का गर्भित अधिकार दिया हुआ है, अर्थात् वह साधारणतः माल उधार खरीदती रहती है और जिसका भुगतान पति द्वारा कर दिया जाता है, तो विक्रेता को पत्नी के इस अधिकार को सीमित करने की सूचना दिये बिना पति भविष्य में क्रय किये जाने वाले माल के उत्पन्न दायित्व से इंकार नहीं कर सकता।

3. **पुष्टिकरण द्वारा** (By Ratification) – धारा 196 के अनुसार जब एक व्यक्ति बिना नियोक्ता की जानकारी अथवा अधिकारी के उसके लिए कोई कार्य करता है तो बाद में नियोक्ता उस कार्य की पुष्टि कर देता है तो पक्षकारों के बीच पुष्टिकरण द्वारा एजेंसी स्थापित होना माना जाता है।

   यह स्पष्ट ही है कि अपने नियोक्ता की ओर से कार्य करने के लिए एजेंट को स्पष्ट अथवा गर्भित अधिकार होना आवश्यक है, अन्यथा उसके द्वारा किये गये कार्यों के लिए नियोक्ता बाध्य न होगा। अतः यदि नियोक्ता की जानकारी अथवा अधिकार के बिना किसी व्यक्ति ने कोई कार्य किया है तो इस कार्य की पुष्टि करना अथवा इसको अस्वीकार करना नियोक्ता की इच्छा पर निर्भर है। यदि वह इस कार्य की पुष्टि का देता है तो इसका वही वैधानिक प्रभाव होगा जैसे कि वह कार्य उसके अधिकार से ही किया गया था। वास्तव में पुष्टिकरण के सिद्धान्त द्वारा जिस एजेंसी की स्थापना होती है उसे घटित हो जाने के बाद की एजेंसी (Ex-post Facto Agency) कहते हैं।

   धारा 197 के अनुसार कार्य का पुष्टिकरण स्पष्ट हो सकता है अथवा उस व्यक्ति, जिसकी ओर से कार्य किया गया है, के आचरण से गर्भित हो सकता है। उदाहरण के लिए, 'अ' 'ब' के अधिकार बिना, 'ब' का रुपया 'स' को उधार देता है। बाद में 'ब' 'स' से उक्त रुपये का ब्याज स्वीकार करता है। 'ब' के आचरण में ऋण का पुष्टिकरण गर्भित है।

4. **गत्यावरोध अथवा प्रदर्शन द्वारा** (By Estoppel or Holding Out) – **गत्यावरोध** (Estoppel) का सिद्धान्त मूल रूप से **भारतीय साक्ष्य अधिनियम** (Indian Evidence Act) की धार 115 के अन्तर्गत दिया गया है। इस सिद्धान्त की एजेंसी के संबंध में **भारतीय अनुबंध अधिनियम** (Indian Contract Act) की धारा 237 में व्याख्या की गई है। इस धारा में वर्णित है कि जब कोई व्यक्ति अपने शब्दों अथवा आचरण द्वारा (अर्थात् अपने प्रदर्शन द्वारा) किसी अन्य व्यक्ति को यह विश्वास करने के लिए प्रेरित करता है कि कोई अमुक व्यक्ति उसका एजेंट है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है, तो इस प्रकार विश्वास कराने वाला व्यक्ति, अन्य व्यक्ति द्वारा उस अमुक व्यक्ति के साथ किये गय व्यवहारों के लिए अपने दायित्व को अस्वीकार करने से रोक दिया जाता है (He is estoppeled or precluded from denying the truth of his statement)। इसका आश्य यह है कि नियोक्ता को अपने प्रदशर्न का खंडन करने से रोक दिया जाता है भले ही उसने प्रदर्शन झूठा किया हो। लेकिन यदि तीसरे पक्षकार के सम्मुख वह अपने शब्दों या आचरण द्वारा पहले यह प्रदर्शन कर चुका है कि एजेंसी है तो उसे बाद में अस्वीकार नहीं कर सकता। यदि तीससे पक्षकार ने उस प्रदर्शन पर विश्वास करके कोई कार्य या अनुबंध किया हो और उसे हानि उठानी पड़ी तो वह उसकी हानि–पूर्ति के लिए दायी ठहराया जायेगा। गत्यावरोध अथवा प्रदर्शन के तीन प्रमुख रूप हैं :–

   (*i*) एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अपना एजेंट मान सकता है यद्यपि वह दूसरा व्यक्ति उसका एजेंट नहीं है और न कभी रहा है। उदाहरण के लिए, 'अ' 'स' के सामने और उसकी जानकारी में 'ब' से कहता है कि वह (अर्थात् 'अ') 'स' का एजेंट है। 'स' उसको सुन लेता है, परन्तु वह उसका कोई विरोध नहीं करता है। बाद में 'ब', इस विश्वास पर कि 'अ' 'स' का एजेंट है, 'अ' के साथ कोई व्यवहार करता है। ऐसी दशा में 'स' उस व्यवहार से बाध्य है, और 'ब' तथा 'स' के बीच बाद में 'स' यह नहीं कह सकता कि 'अ' उसका एजेंट नहीं था, जबकि वास्तव में 'अ' उसका एजेंट नहीं था।

   (*ii*) ऐसी ही दशा उस समय होती है जबकि एक व्यक्ति (नियोक्ता) किसी अन्य व्यक्ति को यह विश्वास कर लेने देता है कि उसके एजेंट के अधिकार उतने व्यापक हैं जितने कि उसने उसे वास्तव में दे रखे हैं। उदाहरण के लिए, एक मामले में एक होटल के मैनेजर को नियोक्ता की ओर से कुछ विशेष वस्तुएं ही खरीदने का अधिकार था। मैनेजर ने कुछ अन्य वस्तुएं खरीदीं यद्यपि उसे ऐसा करने का अधिकार नहीं था। होटल का स्वामी उन अन्य वस्तुओं के लिए भी दायी ठहराया गया क्योंकि उसने अपने व्यवहार से यह माना कि मैनेजर को होटल से संबंधित प्रत्येक वस्तु खरीदने का अधिकार था।

   (*iii*) इसी प्रकार एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अपना एजेंट होना मान सकता है यद्यपि अब वह उसका एजेंट नहीं रहा है। उदाहरण के लिए, एक मामले में 'ब' 'अ' के एजेंट के रूप में कार्य करता था। कुछ समय बाद वह 'अ' का एजेंट नहीं रहा। परन्तु 'अ' ने इस तथ्य की सूचना अपने ग्राहकों को नहीं दी। इसेलिये जब 'ब' ने 'स' के साथ अनुबंध किया, तो 'अ' उस अनुबंध के लिए दायी ठहराया जा सकता है।

5. **आवश्यकता द्वारा** (By Necessity) – कभी–कभी परिस्थितियां एक व्यक्ति को विवश कर देती हैं कि वह किसी दूसरे की ओर से, बिना उसके स्पष्ट अधिकार के ही, कार्य करे, ऐसी दशाओं में 'आवश्यकता द्वारा एजेंसी' उत्पन्न होना कहा जाता है। ऐसी परिस्थितियों में नियोक्ता की सहमति के बिना भी एक व्यक्ति एजेंट के रूप में मान लिया जाता है। धारा 189 के अनुसार, किसी आकस्मिक परिस्थिति (Emergency) से नियोक्ता को होने वाली हानि से बचाने के लिए ऐसा कोई कार्य करना जोकि एक सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति वैसी ही परिस्थितियों में अपने माल को बचाने के लिए करता, आवश्यकता द्वारा एजेंसी कहलाती है। अतः किसी आकस्मिक घटना अथवा आवश्यकता के समय, माल के स्वामी की ओर से माल की देख–भाल करने के लिये आवश्यकता द्वारा एजेंट हो सकता है, और उसके द्वारा किये गये कार्यों के लिए स्वामी उत्तरदायी होगा। उदाहरण के लिए, एक घोड़ा रेल द्वारा भेजा गया और निर्दिष्ट स्टेशन पर स्वामी द्वारा उसकी सुपुर्दगी नहीं ली गई। स्टेशनमास्टर को विवशतावश घोड़े को खिलाना पड़ा। न्यायालय ने निर्णय दिया कि स्टेशनमास्टर घोड़े के स्वामी का 'आवश्यकता द्वारा एजेंट' था। अतः घोड़े का स्वामी घोड़े को खिलाने के समस्त व्यय स्टेशनमास्टर को चुकाये।

इस संबंध में **बैरन पार्क इन हावलियन** बनाम **बोर्ने** (Baron Park in Hawlayen Vs. Bourne) का मामला महत्वपूर्ण है। इस मामले में जहाज का कप्तान आवश्यकता पड़ने पर यात्रा के दौरान जहाज को दुर्घटना से बचाने के लिए मार्ग में उसकी मरम्मत के लिए तथा **गन्तव्य** (Destination) तक पहुंचाने के लिये आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराने के लिये जहाज को गिरवी रखने का अधिकारी घोषित किया गया।

'आवश्यकता का सिद्धान्त' उन सभी मामलों में लागू होता है जिसमें एजेंट अपने अधिकारों से बाहर कार्य करता है परन्तु इसके लिये निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है :

(*i*) एजेंट नियोक्ता से सम्पर्क स्थापित कर सकने की स्थिति में नहीं था।

(*ii*) नियोक्ता की रक्षा हेतु उसने सभी आवश्यक एवं उचित कदम उठाये थे।

(*iii*) उसने सद्भावना से कार्य किया था।

(*iv*) आवश्यकता वास्तविक एवं निश्चित थी।

एजेंट का अधिकार
(Authority of an Agent)

धारा 186 के अनुसार, "**एजेंट का अधिकार स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है।**" (Agents authority may be express or implied). धारा 187 स्पष्ट अथवा गर्भित अधिकार की व्याख्या करती है। मुंह से बोल अथवा लिखित शब्दों द्वारा दिया गया अधिकार स्पष्ट (Expressed) तथा नियोक्ता के आचरण द्वारा उत्पन्न अधिकार **गर्भित** (Implied) कहलाता है। (An authority is said to be expressed when it is given by words spoken or written. An Authority is said to be implied when it is inferred from the circumstances of the case, and things, spoken or written, or the ordinary course of dealing, may be accounted circumstances of the case).

एजेंट के अधिकार की सीमा
(Extent of Agent's Authority)

अब प्रश्न यह है कि एजेंट का अधिकार क्या होता है ? निम्नलिखित परिस्थितियां एजेंट के अधिकार के विस्तार को स्पष्ट करती हैं :–

1. **साधारण एजेंट के अधिकार का विस्तार** (Extent of Agent's Authority Normally) – **धारा** 188 के अन्तर्गत एक एजेंट नियोक्ता द्वारा सौंपे गए कार्य को करने के लिए वे समस्त कार्य कर सकता है, जो वैध रूप से किये जाते हैं। अर्थात् एक एजेंट जिसे किसी व्यापारी को चलाने का अधिकार दिया गया है व्यापार के संबंध में वे सम्पूर्ण कार्य करने का अधिकार रखता है जो व्यापार के लिए आवश्यक है।

   उदाहरण –

   (*i*) 'अ' जो अमेरिका में रहता है 'ब' को मुम्बई में किसी ऋण को वसूल करने के लिए एजेंट नियुक्त करता है। यहां 'ब' ऋण वसूल करने के लिए कोई भी आवश्यक वैध कार्य प्रयोग में ला सकता है।

(*ii*) 'क' 'ख' को जहाज बनाने के व्यापार को चलाने के लिए एजेंट नियुक्त करता है। जहां 'ख' को यह अधिकार है कि वह व्यापार को चलाने के लिए लकड़ी या कोई दूसरी आवश्यक वस्तुएं खरीद सकता है और मजदूरों को भी काम पर रख सकता है।

साधारणतः एजेंट को जब तक स्पष्ट अधिकार प्राप्त न हों नियोकता की ओर से ऋण लेने का अधिकार नहीं है। परन्तु जहां एजेंट को कोई ऐसा कार्य सौंपा गया है जिसके लिए ऋण लेना अनिवार्य है जैसे – बैंकिंग का कार्य आदि जो एजेंट ऐसा कर सकता है। अथवा व्यापार की प्रकृति ऐसी हो कि नियोक्ता के आदेशों का पालन करने के लिये तथा अपने कर्त्तव्यों को निभाने के लिए ऋण लेना आवश्यक है तो ऐसी दशा में एजेंट का ऋण लेने का अधिकार गर्भित माना जाता है।

2. **आपत्ति काल में एजेंट के अधिकार** (Agent's Authority in an Emergency) – **धारा** 189 के अनुसार, ''आपत्तिकाल में किसी एजेंट को अपने मालिक या नियोक्ता की हानि से रक्षा करने के उद्देश्य से ऐसे सारे कार्य करने के अधिकार हैं, जोकि साधारण बुद्धि वाले सामान्य व्यक्ति द्वारा अपने को हानि से बचाने के लिए वैसी ही परिस्थितियों में किये जाते हैं।''

   उदाहरण –

   (*i*) विक्रय करने के लिए एजेंट आवश्यकता होने पर वस्तुओं की मरम्मत (Repairs) करा सकता है।

   (*i*) राम कलकत्ता से श्याम को कुछ माल, सोहन को कटक भेजने के लिए प्रेषित (Consign) करता है। कलकत्ता पहुंचने पर माल सड़ने लगता है और कटक भेजने के लिए ठीक नहीं रहता। श्याम उस माल को कटक न भेजकर कलकत्ता में ही बेच सकता है।

3. **अधिकार का सौंपना** (Delegation of Authority) – साधारणतः एक एजेंट अपने अधिकार दूसरे व्यक्ति को नहीं दे सकता। अर्थात् एक एजेंट दूसरे व्यक्ति को वह कार्य करने के लिए नियुक्त नहीं कर सकता जिसके करने का भार उसने अपने ऊपर लिया हो। इस विषय में **फ्रेंच** भाषा की कहावत प्रसिद्ध है – "Delegatus non potest delegare" अर्थात् **सौंपा गया अधिकार आगे नहीं सौंपा जा सकता** (Delegated powers cannot be further delegated)। इस कहावत के अनुसार एक एजेंट अपने अधिकारों को किसी दूसरे एजेंट को सौंपने का अधिकारी नहीं है। दूसरे शब्दों में, एक एजेंट जो स्वयं अपने नियोक्ता का एजेंट है, अपने अधिकारों को आगे हस्तान्तरण नहीं कर सकता। इस सिद्धान्त का आधार किसी व्यक्ति विशेष में ही विश्वास होना है। एजेंसी क्योंकि परस्पर विश्वास के आधार पर संचालित होती है अतः नियोक्ता किसी व्यक्ति की नियुक्ति उस व्यक्ति की ईमानदारी, कार्यक्षमता आदि में विश्वास के आधार पर ही करता है, किन्तु एजेंट द्वारा नियुक्ति व्यक्ति में उसका उतना ही विश्वास बना रहे यह आवश्यक नहीं है। अतः एजेंट को अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करने से रोक दिया। जिस व्यक्ति को एजेंट द्वारा, अधिकारों का इस प्रकार हस्तान्तरण किया जाता है, वह **उप-एजेंट** (Sub-agent) अथवा **स्थानापन्न एजेंट** (Substituted Agent) कहलाता है।

उप-एजेंट

(Sub-Agent)

परिभाषा (Definition) – अनुबंध अधिनियम की धारा 191 के अनुसार, ''उप–एजेंट वह व्यक्ति है जो एजेंसी व्यापार में मूल एजेंट द्वारा नियुक्त किया जाता है और उसी के नियंत्रण में कार्य करता है।'' (A 'Sub-Agent' is a person employed by and acting under the control of the original agent in the business of Agency).

उदाहरण – 'अ' ने 'ब' को अपना एजेंट किसी कार्य के लिए नियुक्त किया और 'ब' इस कार्य के लिए 'स' को नियुक्त कर देता है। 'स' उप–एजेंट है।

एजेंसी के संबंध में यह एक सामान्य नियम है कि एक एजेंट अपने अधिकार का हस्तान्तरण नहीं कर सकता। फ्रेंच भाषा में यह एक सिद्धान्त है कि "Delegatus non potest delegate" इसका अर्थ यह है कि "Delegate cannot further delegate" अर्थात् एक व्यक्ति जो स्वयं दूसरे से अधिकार प्राप्त करता है, वह अपने अधिकार का हस्तान्तरण किसी तीसरे व्यक्ति को नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि एक नियोक्ता किसी विशेष व्यक्ति की ईमानदारी में विश्वास करके अपने कार्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए उसे एजेंट नियुक्त करता है। ऐसी अवस्था में नियोक्ता यह नहीं चाहेगा कि एजेंट अपने अधिकार को हस्तान्तरण किसी दूसरे व्यक्ति को करे।

परन्तु धारा 190 के अनुसार यदि व्यवसाय की साधारण प्रथा के अनुसार कोई उप–एजेंट रखा जा सकता है अथवा एजेंसी का स्वभाव इस प्रकार का है कि उप–एजेंट की नियुक्ति के बिना उसका संचालन नहीं किया जा सकता तो ऐसी दशा में उप–एजेंट नियुक्त किया जा सकता है।

नियुक्ति की दशांए

(Conditions for Appointment)

'एक एजेंट अपने अधिकारों को और आगे हस्तांतरण नहीं कर सकता' (A delegate cannot delegate) नामक सिद्धान्त के अपवाद धारा 190 में सन्निहित है। धारा 190 की व्यवस्थाओं एवं विभिन्न न्यायालयों के निर्णयों के आधार पर केवल निम्नांकित दशाओं में ही उप–एजेंट की नियुक्ति वैधानिक होगी –

(*i*) जबकि नियोक्ता ने अपने एजेंट को उप–एजेंट नियुक्त करने का स्पष्ट अधिकार दे दिया है।

(*ii*) जबकि व्यवसाय की साधारण रीति के अनुसार उप–एजेंट रखा जा सकता है।

(*iii*) जबकि नियोक्ता या जानता है कि उसका एजेंट उप–एजेंट नियुक्त करना चाहता है और वह ऐसा करने से एजेंट को माना नहीं करता।

(*iv*) जबकि कार्य सीधा–सादा और लिपिकीय प्रकृति (Clerical Nature) का है एवं जिसके लिए विशेष सूझ–बूझ एवं गोपनीयता की आवश्यकता न हो।

(*v*) यदि एजेंसी व्यापार का स्वभाव इस प्रकार है कि उप–एजेंट की नियुक्ति आवश्यक है और इसकी नियुक्ति के अभाव में कार्य संचालन कठिन हो।

(*vi*) अकस्मात् कोई आपातकालीन स्थिति उत्पन्न हो जाने पर।

नियोक्ता, एजेंट तथा उप-एजेंट के बीच वैधानिक उत्तरदायित्व

(Legal Obligations Between Principal, Agent and Sub-Agent)

नियोक्ता, एजेंट तथा उप–एजेंट के परस्पर संबंध इस बात पर निर्भर करते हैं कि उप–एजेंट की नियुक्ति उचित ढंग से की गई है अथवा अनुचित ढंग से इस संबंध में धारा 192 तथा 193 स्थिति स्पष्ट करती है।

1. **जब एक उप-एजेंट अधिकृत रूप से नियुक्त किया जाता है** (Where a Sub-agent is Properly Appointed) – धारा 192 के अनुसार जब उप–एजेंट की नियुक्ति उचित ढंग से की गई हो तो उसके वैधानिक दायित्व निम्न प्रकार होंगेः–

   (*i*) **नियोक्ता ततीय पक्षकार के प्रति उत्तरदायी है** (The Principal is Liable to Third Party) – जहां तक तीसरे पक्षकार का संबंध है, नियोक्ता का प्रतिनिधित्व उप–एजेंट द्वारा होता है और नियोक्ता उसके कार्यों के लिए उसी प्रकार बाध्य तथा उत्तरदायी है जैसे वह एक ऐसा एजेंट है जो मूल रूप में ही नियोक्ता द्वारा नियुक्त किया गया था। (Where such an agent is properly appointed, the principal is, so far as regards third person, represented by such agent and is bound by the responsibile for his acts as if he were an agent originally appointed by the principal).

   (*ii*) **एजेंट नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी है** (The Agent is Liable to Principal) – जब एक एजेंट अपनी सहायता के लिए कोई दूसरा व्यक्ति उप–एजेंट के रूप में नियुक्त कर लेता है तो ऐसे उप–एजेंट के कार्यों के लिए वह (मूल एजेंट) नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होगा। (The agent is responsible to the principal for the acts of the subagent).

   (*iii*) **उप-एजेंट, एजेंट के प्रति उत्तरदायी है** (The Sub-agent is Liable to Agent) – उप–एजेंट, कपट तथा जान–बूझकर त्रुटि की स्थिति के अतिरिक्त अपने कार्यों के लिए एजेंट के प्रति उत्तरदायी होता है, नियोक्ता के प्रति नहीं। (Such agent is responsible for his acts, to the agent but not to the principal, except in case of fraud or wilful wrong). उप–एजेंट एजेंट द्वारा ही नियुक्त होता है, और उसी के नियंत्रण में कार्य करता है। नियोक्ता तथा उप–एजेंट के बीच मे कोई अनुबंध नहीं होता, इसलिए उप–एजेंट अपने किसी पारिश्रमिक

के लिए नियोक्ता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता, और न नियोक्ता ही अपना रुपया वसूल करने के लिए उप–एजेंट के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है। नियोक्ता तथा उप–एजेंट दोनों ही केवल एजेंट के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकते हैं, क्योंकि ये दोनों की पक्षकार एजेंट से प्रत्यक्ष रूप से अनुबंध करते हैं और केवल एजेंट के द्वारा ही एक दूसरे से सम्पर्क में आते हैं। इस संबंध में एक अपवाद यह है कि यदि उप–एजेंट कपट करता है अथवा जानबूझकर कोई त्रुटि करता है, तो नियोक्ता, एजेंट तथा उप–एजेंट दोनों के ही विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।

2. **जब एजेंट एक उप-एजेंट को बिना अधिकार के नियुक्त कर देता है** (When a sub-agent is not properly appointed) – धारा 193 के अनुसार, यदि किसी एजेंट ने बिना किसी अधिकार के ही उप–एजेंट नियुक्त कर दिया है अर्थात् जब उप–एजेंट एजेंट द्वारा अनधिकृत रूप से नियुक्त किया गया है, तो उसके वैधानिक दायित्व निम्न प्रकार होंगे :–

   (*i*) ऐसी दशा में नियोक्ता, उप–एजेंट के कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

   (*ii*) नियोक्ता उप–एजेंट को उसके कपट तथा जानबूझकर की गई गलतियों के लिए भी उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता।

   (*iii*) ऐसे उप–एजेंट (जो अनधिकृत रूप से नियुक्त किया गया है) के कार्यों के लिए मूल एजेंट, नियोक्ता तथा तीसरे पक्ष दोनों के प्रति उत्तरदायी होगा।

   (*iv*) यदि नियोक्ता इस प्रकार से नियुक्त किए गए अनधिकृत उप–एजेंट की नियुक्ति का, बाद में पुष्टिकरण (Ratification) कर देता है तो वह नियोक्ता उसके सब कार्यों के लिए तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा।

स्थानापन्न एजेंट

(Substituted Agent)

कभी–कभी नियोक्ता द्वारा नियुक्त एजेंट नियोक्ता के लिए स्वयं व्यवहार नहीं करता, बल्कि दूसरे व्यक्ति से कराता है। ऐसे दूसरे व्यक्ति को स्थानापन्न (Substituted) एजेंट कहते हैं।

परिभाषा (Definition) – धारा 194 के अनुसार, ''जब किसी एजेंट ने नियोक्ता की ओर से कार्य करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नामांकिक करने को स्पष्ट अथवा गर्भित अधिकार रखते हुए इस प्रकार किसी व्यक्ति को एजेंसी व्यापार में कार्य करने के लिए नामांकित कर दिया है तो ऐसा व्यक्ति उप–एजेंट नहीं होता बल्कि स्थानापन्न एजेंट कहलाता है।'' (Where an agent holding an express or implied authority to name another person to act to the principal in the business of the agency, has named another person accordingly, such person is not a sub-agent, but an agent of the principal for such part of the business of the agency, as is entrusted to him).

स्थानापन्न एजेंट सौंपे गए कार्यों के लिए नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करता है। जब स्थानापन्न एजेंट की नियुक्ति हो जाती है तो वह सीधा नियोक्ता के नियंत्रण में कार्य करता है तथा नियोक्ता के प्रति ही उत्तरदायी होता है।

उदाहरण – राम अपने सॉलीसीटर पन्नालाल को अपनी भू–सम्पत्ति (Estate) को नीलाम कराने के लिए नीलाम करने वाले (Auctioneer) की नियुक्ति के लिए आदेश देता है। पन्नालाल इस कार्य के लिए रूपलाल की नियुक्ति कर देता है। यहां रूपलाल उप–एजेंट न होकर स्थानापन्न एजेंट (Substituted Agent) है।

स्थानापन्न एजेंट को नामांकित करने में एजेंट का कर्त्तव्य (Agent's duty in naming substituted agent) – एजेंट को स्थानापन्न एजेंट के चुनाव में उतने ही विवेक (Discreation) से काम करना चाहिए, जितना विवेक एक साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति अपने निजी मामलों में करता है और यदि वह एजेंट ऐसा करता है तो वह ऐसे चुन हुए एजेंट के कार्यों तथा असावधानी (Negligence) के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

उदाहरण – उमेश अपने एजेंट महेश को अपने लिए एक जहाज खरीदने का आदेश देता है। महेश एक ख्याति प्राप्त विशेषज्ञ नरेश को जहाज खरीदने के लिए नियुक्त करता है। नरेश जहाज के चुनाव में लापरवाही करता है तथा जहाज समुद्र में चलने के अयोग्य सिद्ध होता है तथा नष्ट हो जाता है। इस दशा में उमेश के प्रति महेश उत्तरदायी नहीं है बल्कि विशेषज्ञ नरेश उत्तरदायी है।

उप-एजेंट और स्थानापन्न एजेंट में अंतर
(Difference between Sub-Agent and Substituted Agent)

अन्तर का आधार		गिरवी	स्थानापन्न एजेंट
(1)		(2)	(3)
1.	स्थिति	उप–एजेंट, एजेंट के अधीन काम करता है	स्थानापन्न एजेंट स्वतंत्र रूप से प्रधान एजेंट के रूप मे काम करता है।
2.	पारिश्रमिक मांगने का अधिकार	उप–एजेंट अपने पारिश्रमिक की मांग नियोक्ता से नहीं कर सकता	स्थानापन्न एजेंट मूल एजेंट का स्थान ग्रहण करता है। अतः वह अपना पारिश्रमिक नियोक्ता से मांग सकता है।
3.	नियोक्ता द्वारा उत्तरदायी ठहराना	नियोक्ता उप–एजेंट को उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता।	नियोक्ता, स्थानापन्न एजेंट को उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहरा सकता है।
(1)		(2)	(3)
4.	दायित्व	उप–एजेंट, एजेंट के प्रति उत्तरदायी होता है तथा कपट अथवा जानबूझकर की गयी गलतियों के अतिरिक्त वह नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी नहीं होता।	स्थानापन्न एजेंट केवल नियोक्ता के प्रति ही उत्तरदायी होता है।
5.	नियुक्त की दशा	उप–एजेंट का एजेंट केवल उसी समय नियुक्त कर सकता है जब ऐसी नियुक्ति व्यवसाय की साधारण प्रथा के अनुसार उचित है अथवा एजेंसी की प्रकृति के अनुसार आवश्यक है।	स्थानापन्न एजेंट का एजेंट केवल उसी दशा में नियुक्त कर सकता है जब नियोक्ता की तरफ से कार्य करने के लिए अन्य व्यक्ति का नाम देने के लिए उसे स्पष्ट अथवा गर्भित अधिकार प्राप्त है।

सह-एजेंट
(Co-Agent)

कुछ दशाओं में दो यो दो से अधिक व्यक्ति एक कार्य को पूरा करने के लिए नियुक्त किये जाते हैं। इस प्रकार नियुक्त किये गये व्यक्ति आपस में सह–एजेंट (Co-Agent) कहलाते हैं। उनका दायित्व संयुक्त एंव पथक् (Joint and Several) हो सकता है। जब एजेंसी अनुबंध करते समय कुछ भी स्पष्ट नहीं किया जाता, तो उनका दायित्व संयुक्त (Joint) माना जाता है। जहां अधिकार पथक रूप से होता है , वहां एक एजेंट दूसरे की राय लिए बिना कार्य कर सकता है।

एजेंटों का वर्गीकरण
(Classification of Agents)

1. **सामान्य एजेंट** (General Agent) – यह वह व्यक्ति होता है जिसको एक निश्चित सीमा के अन्दर वह सब कार्य करने का अधिकार होता है जो सामान्य प्रकृति के होते हैं। उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति को व्यवसाय के संचालन के लिए नियुक्त करना।
2. **विशिष्ट एजेंट** (Specific Agent) – यह वह व्यक्ति होता है जिसको किसी विशेष कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है। इसका अधिकार उस विशेष कार्य करने तक ही सीमित होता है, अतएव वह अपने नियोक्ता को किसी अन्य कार्य के संबंध में बाध्य नहीं कर सकता।
3. **अव्यापारिक एजेंट** (Non-mercantile or Non-commercial Agent) – अव्यापारिक एजेंट उस एजेंट को कहते हैं जिसका कार्य क्रेता तथा विक्रेता के बीच मध्यस्थता करना नहीं होता। वह नियोक्ता के लिए ऐसे कार्यों को करता है जिसका संबंध व्यापार से न होकर किन्हीं अन्य अधिकारों और कर्तव्यों से होता है। जैसे – 'कानूनी एजेंट' (Law Agent) जो अपने नियोक्ताओं को कानून संबंधी आवश्यक सलाह देते हैं। सम्पत्ति संबंधी एजेंट (Estate Agent) अथवा

मकान संबंधी एजेंट (House Agent) भी गैर व्यापारिक ही कहलाता हैं। इसी तरह 'एटार्नी' (Attorney) और 'प्लीडर' (Pleader) भी गैर–व्यापारिक एजेंट की कहलाता हैं। एक पत्नी भी अपने पति की ओर से जब कोई कार्य करती है, तो उसे गैर–व्यापारिक एजेंट कहते हैं।

4. **व्यापारिक एजेंट** (Mercantile Agent) – ऐसे व्यक्ति जो व्यापारिक व्यवहारों में अपने नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करता है व्यापारिक एजेंट कहलाता है। इस प्रकार के एजेंट साधारणतः उत्पादक (Producers) तथा थोक विक्रेताओं के बीच अथवा थोक विक्रेताओं तथा फुटकर विक्रेताओं का काम करते हैं। साधारण व्यापारिक एजेंट निम्नलिखित प्रकार के होते हैं :–

(*i*) **दलाल** (Broker) – 'दलाल' वह एजेंट है जो दलाली (Brokerage) के प्रतिफल में दो पक्षकारों के बीच व्यापार वाणिज्य अथवा नौवहन (Navigation) संबंधी कार्यों के लिए अनुबंध अथवा सौदा (Bargain) करने के लिए नियुक्त किया जाये। दलाल को माल का अधिकार नहीं होता। किसी विशेष प्रथा के अभाव में दलाल प्रायः अपने ही नाम से क्रय–विक्रय नहीं कर सकता। दलाल को जब खरीदने तथा बेचने का अधिकार प्राप्त हो, तो वह बाजार की प्रथा के अनुसार काम कर सकता है तथा अपने कार्यों के लिए नियोक्ता को बाध्य कर सकता है बशर्ते कि यह प्रथा अवैधानिक अथवा अनुचित (Unreasonable) न हो। दलाल को वस्तु पर ग्रहणाधिकार (Lien) प्राप्त नहीं होता है, किन्तु नियोक्ता के कागज तथा बहियों (Books) पर दलाल को ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है।

(*ii*) **बीमा दलाल** (Insurance Broker) – ये दलाल जहाजी बीमा कराने के लिए नियुक्त किये जाते हैं ये बीमादार (Assured) तथा बीमादाता (Underwriter) के बीच मध्यस्थता का काम करते हैं।

(*iii*) **आढ़तिया** (Factor) – आढ़तिया उस एजेंट को कहते हैं जो कि प्रतिफल के बदले में नियोक्ता द्वारा भेजे या सुपुर्द किये गये माले को बेचने के उद्देश्य से नियुक्त किया जाये। यह चालानी माल पाने वाला (Consignee) तथा कमीशन एजेंट दोनों होता है। इसको माल पर अधिकार तथा ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है। यह ग्राहकों को अपने नाम से रसीद दे सकता है तथा उन पर अपने नाम से ही वाद भी प्रस्तुत कर सकता है। इसे माल में बीमा–योग्य हित भी होता है। यह माल की जमानत पर रुपया उधार भी देता है।

(*iv*) **नीलामकर्त्ता** (Auctioneer) – 'नीलामकर्त्ता' वह व्यक्ति है जिसे जनसाधारण में माल को नीलाम करने या बेचने का अधिकार होता है।

(*v*) **बैंकर** (Banker) – साधारणतः बैंकर तथा ग्राहक के बीच ऋणी तथा महाजन का संबंध होता है। बैंकर अपने ग्राहक का एजेंट भी होता है क्योंकि बैंकर को ग्राहकों द्वारा जमा की हुई रकम को उसकी मांग पर वापस करना पड़ता है। बैंकर अपने ग्राहकों के लिए सिक्युरिटी (Security) खरीदने तथा बेचने, ब्याज, कम्पनियों का लाभ, चैक, बिल, इत्यादि का रुपया वसूलने तथा बहुमूल्य चीजों की सुरक्षा करने का कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त बैंकर अपने ग्राहकों के लिए बिजली कम्पनी के बिल, आय–कर तथा बीमा के प्रीमियम का भुगतान तथा अन्य दूसरे कार्य करते हैं। बैंकर को अपने कमीशन तथा बकाया के लिए ग्राहकों की सम्पत्ति पर साधारण ग्रहणाधिकार (General Lien) प्राप्त है। अनुबंध–भंग तथा ग्राहक का रुपया जमा रहने पर चैक अथवा बिल का भुगतान न करने पर बैंकर क्षति के लिए दायी होता है। बैंकर को अपने ग्राहकों के हिसाब–किताब की बातें बिल्कुल याद रखनी होती हैं, किन्तु वह कानून की ओर से आवश्यक होने पर तथा अपने हित को सुरक्षित रखने के लिए इसको प्रकट (Disclose) भी कर सकता है।

(*vi*) **कमीशन एजेंट** (Commission Agent) कमीशन एजेंट साधारणतः विदेशी नियोक्ता की तरफ से कमीशन के बदले में कार्य करता है। वह अपने नियोक्ता के लिए अपने ही नाम से माल खरीदता है तथा अपने श्रम के लिए कमीशन पाता है। वह खरीदे हुए माल की कीमत अदा करने के लिए स्वयं उत्तरदायी होता है। यदि नियोक्ता कमीशन एजेंट को माल की कीमत का भुगतान न करे, तो कमीशन एजेंट नियोक्ता पर क्षति (Indemnity) के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(*vii*) **परिशोधी एजेंट** (Del-Credere Agent) – परिशोधी एजेंट उस एजेंट को कहते हैं जो अतिरिक्त (Extra) कमीशन के बदल में, जिसे परिशोधी (Del Credere) कमीशन कहते हैं, अपने नियोक्ता से वह वायदा करता है कि उधार बेची गयी रकम का ऋणी द्वारा भुगतान न होन पर, वह स्वयं नियोक्ता को ऐसी रकम का भुगतान कर देगा। इस प्रकार का एजेंट तभी भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होता है, जब ऋणी दिवालिया हो जाता

है। जहां तक नियोक्ता का संबंध है, इस प्रकार का एजेंट परिशोधी एजेंट कहलाता है, किन्तु जहां तक तीसरे पक्षकार का संबंध है, यह नियोक्ता की स्थिति में समझा जाता है पक्का आढ़तिया भी परिशोधी एजेंट के समान ही होता है, किन्तु पक्का आढ़तिया एकमात्र एजेंट ही होता है।

पुष्टिकरण
(Ratification)

पुष्टिकरण का अर्थ (Meaning of Ratification) – पुष्टिकरण से आश्य एजेंट द्वारा बिना अधिकार किये गए किसी कार्य को बाद में नियोक्ता द्वारा स्वीकृत कर लेने से है। नियोक्ता की ओर से कार्य करने के लिए एजेंट को स्पष्ट गर्भित अधिकार होना आवश्यक है। अन्यथा नियोक्ता उसके द्वारा किये गये कार्यों के लिए दायी नहीं होगा।

परिभाषा (Definition) – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 196 के अनुसार, ''जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के लिए उसकी जानकारी अथवा अधिकार के बिना कोई कार्य करता है, तो इस कार्य को स्वीकार करना अथवा अस्वीकार करना दूसरे व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है। यदि दूसरा व्यक्ति इस कार्य को स्वीकार कर लेता है तो उसका वही प्रभाव होगा जैसे कि वह कार्य उसके अधिकार से ही किया गया था।'' (Where acts are done by one person on behalf of another, but without his knowledge or authority, he may elect to ratify or to disown such acts. If he ratifies them same effect will fillow as they had been performed by his authority). अर्थात् किसी अनधिकृत कार्य को स्वीकार करना ही पुष्टिकरण है।

विलसन बनाम टम्मन (Wilson Vs. Tumman) के मामले में निर्णय देते समय न्यायाधीश टिण्डल (Tindel) ने कहा था, ''जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे के लिए कार्य करता है और उसे ऐसा करने के लिए पहले से कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता और यदि नियोक्ता बाद में उसके कार्य की पुष्टि कर देता है तो ऐसा कार्य नियोक्ता द्वारा किया हुआ कहलायेगा।''

धारा 197 के अनुसार, पुष्टिकरण स्पष्ट हो सकता है अथवा उस व्यक्ति के आचरण में गर्भित हो सकता है जिसकी ओर से वह कार्य किया गया है।

उदाहरण – 'अ' 'ब' के अधिकार बिना 'ब' का रुपया 'स' को उधार देता है। बाद में 'ब' 'स' से उक्त धन का ब्याज स्वीकार करता है। 'ब' के आचरण में ऋण का पुष्टिकरण गर्भित है।

पुष्टिकरण से संबंधित नियम
(Rules Governing Ratification)

भारतीय अनुबंध अधिनियम की व्यवस्थाओं एवं विभिन्न न्यायालयों द्वारा दिये गये प्रमुख निर्णयों के आधार पर वैध पुष्टिकरण के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन आवश्यक है :–

1. **कार्य नियोक्ता के नाम में होना चाहिए** (The Act must be in the name of Principal) – वैध पुष्टिकरण के लिए आवश्यक है कि एजेंट द्वारा किया गया कार्य नियोक्ता के लिए तथा उसकी ओर से एवं उसके नाम में होना चाहिए, स्वयं एजेंट के नाम में नहीं अर्थात् अनुबंध करते समय एजेंट के रूप में कार्य करना चाहिए। (Agent must act as agent) यदि एजेंट ने अपने लिए अथवा अपने हिसाब में कार्य किया है तो उसका नियोक्ता द्वारा वैध पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता।

2. **पुष्टिकरण केवल उसी व्यक्ति द्वारा होना चाहिए जिसकी ओर से कार्य किया गया हो** (Ratification must be made by the person on whose behalf the act was done) – पुष्टिकरण के लिए यह आवश्यक है कि पुष्टिकरण उसी व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए जिसकी ओर से अथवा जिसके नाम में कार्य किया गया है, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कार्य की पुष्टि वैधानिक प्रभाव नहीं रखती। जैसे 'अ' द्वारा 'ब' के धन मं से 'स' को रुपया उधार दिया जाये तो 'द' 'अ' के कार्य की पुष्टि करे तो यह मान्य न होगा। पुष्टि 'ब' द्वारा ही होनी चाहिए।

3. **अनुबंध करते समय नियोक्ता का अस्तित्व होना आवश्यक है** (The Principal must be in existence at the time of Contract) – पुष्टिकरण उसी व्यक्ति द्वारा नियोक्ता की ओर से किया जा सकता है जोकि अनुबंध के समय विद्यमान हो अर्थात् अस्तित्व में हो। उदाहरणार्थ, समामेलन से पहले कम्पनी के प्रवर्तकों द्वारा किये गए अनुबंधों की पुष्टि कम्पनी नहीं कर सकती, क्योंकि अनुबंध करते समय कम्पनी अर्थात् नियोक्ता का कोई अस्तित्व ही नहीं था।

4. **नियोक्ता में अनुबंध करने की क्षमता होनी चाहिए** (The Principal must have Contractual Capacity) – नियोक्ता में अनुबंध एवं उसकी पुष्टि करते समय अनुबंध क्षमता का होना आवश्यक है। यह इसलिए जरूरी है क्योंकि पुष्टि एजेंट के कार्य करने के समय से ही लागू होती है। यदि अनुबंध करते समय नियोक्ता में अनुबंध क्षमता नहीं है तो बाद में अनुबंध करने की क्षमता आ जाने पर भी वह अनुबंध की पुष्टि नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, यदि नियोक्ता स्वयं अनुबंध नहीं कर सकता तो वह एजेंट द्वारा उसके लिए किए गए अनुबंध भी नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, एक अवयस्क द्वारा अपने अवयस्कता काल में किये गए अनुबंधों का व्यस्क होने पर भी पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता।

5. **केवल वैध कार्यों की ही पुष्टि की जा सकती है** (Only Lawful Acts can be Ratified) – नियोक्ता केवल उन्हीं कार्यों का पुष्टिकरण कर सकता है जो वह स्वयं वैधानिक ढंग से कर सकता है। अतः पुष्टिकरण केवल उन कार्यों का होता है जो कानून की दष्टि में व्यर्थ (Void) न हों। जैसे, यदि कोई व्यक्ति जाली हस्ताक्षर कर देता है तो ऐसे हस्ताक्षर का पुष्टिकरण नहीं हो सकता। अवैधानिक अथवा दण्डनीय कार्यों का पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता।

6. **तथ्यों की पूरी जानकारी के बाद ही पुष्टि की जानी चाहिए** (Ratification must be with full knowledge of facts) – धारा 198 के अनुसार, पुष्टिकरण करने वाले व्यक्ति को मामले की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी होना आवश्यक है, अन्यथा पुष्टिकरण वैध न होगा। यदि नियोक्ता यह प्रमाणित कर दे कि पुष्टिकरण करते समय उसे मामले की घटनाओं की पूरी जानकारी न थी अथवा जानकारी महत्वपूर्ण रूप से दोषयुक्त थी, तो वह उस पुष्टिकरण से बाध्य न होगा।

7. **पूरे व्यवहार की पुष्टि की जा सकती है** (The whole transaction can be ratified) – धारा 199 के अनुसार, यदि एक व्यक्ति अपने नियोक्ता के अधिकार के बिना कोई कार्य करता है और नियोक्ता उस कार्य के किसी भी भाग की पुष्टि कर देता है, तो ऐसी पुष्टि से ही सम्पूर्ण कार्य की पुष्टि समझी जायेगी। नियोक्ता ऐसा नहीं कर सकता कि वह एक कार्य के केवल एक भाग का पुष्टिकरण करे; इसलिए उसके द्वारा किसी व्यवहार के किसी भाग का पुष्टिकरण करने का प्रभाव सम्पूर्ण व्यवहार का पुष्टिकरण होता है।

8. **पुष्टिकरण से किसी अन्य पक्ष को हानि नहीं होना चाहिए** (Ratification should not put a third party to damages) – धारा 200 के अनुसार, यदि एक व्यक्ति दूसरे की ओर से, बिना उसके अधिकार के कोई ऐसा कार्य करता है जो कि यदि अधिकार होने पर किया गया होता, तो उसके परिणामस्वरूप किसी तीसरे व्यक्ति को हानि पहुंचती, अथवा उसके अधिकार या हित को समाप्त कर देता, तो ऐसे कार्य का पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, हरी, मोहन के पट्टे (Lease) पर एक भूमि प्राप्त करता है। जिसे 1 माह की सूचना पर समाप्त किया जा सकता है। शेखर, मोहन के अधिकार के बिना हरी को पट्टे की समाप्ति की सूचना भेज देता है। यहां मोहन शेखर के इस कार्य की पुष्टि करके, हरी के पट्टे पर अधिकार को समाप्त नहीं कर सकता।

9. **पुष्टिकरण निश्चित या उचित समय में किया जाना चाहिए** (Ratification must be within prescribed reasonable time) – यदि पुष्टिकरण करने का कोई समय निश्चित है तो पुष्टिकरण उस समय के अन्तर्गत किया जाना चाहिए। उक्त समय के व्यतीत हो जाने के बाद कार्य का पुष्टिकरण मान्य न होगा। यदि कोई समय निर्धारित नहीं है तो पुष्टिकरण उचित समय में ही होना चाहिए। उचित समय क्या होगा, यह एक तथ्य संबंधी प्रश्न है एवं विभिन्न दशाओं में व्यवहार की परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न हो सकता है।

10. **पुष्टिकरण स्पष्ट या गर्भित हो सकता है** (Ratification may be expressed or implied) – पुष्टिकरण या तो स्पष्ट हो सकता है या नियोक्ता के आचरण से गर्भित हो सकता है।

11. **पुष्टिकरण की सूचना दी जानी चाहिए** (Ratification must be communicated) – पुष्टिकरण की सूचना उस पक्षकार को अवश्य दी जानी चाहिए जो एजेंट द्वारा किये गये कार्य से बाध्य अर्थात् प्रभावित होता है।

पुष्टिकरण का प्रभाव
(Effects of Ratification)

पुष्टिकरण के पश्चात् नियोक्ता एजेंट के सम्पूर्ण कार्यों के लिए उत्तरदायी हो जाता है। पुष्टिकरण का प्रभाव भूतलक्षी (Retrospective) होता है अर्थात् पुष्टिकरण एजेंट द्वारा किये गये कार्य की तारीख से लागू समझा जाता है। अतः जब

पुष्टिकरण द्वारा एजेंसी स्थापित की जाती है, तब यह पुष्टिकरण के समय से नहीं बल्कि एजेंट द्वारा किये गए कार्य के समय से आरम्भ समझी जाती है। इसे घटित हो जाने के बाद की एजेंसी (Ex-post Facts Agency) भी कहते हैं। उदाहरणार्थ, मदन अधिकार के बिना वासुदेव के लिए, राजेन्द्र से एक कार खरीदने का अनुबंध 20 अगस्त को करता है। वासुदेव, मदन के कार्य की पुष्टि 28 अगस्त को करता है। इस दशा में वासुदेव और राजेन्द्र के मध्य अनुबंध 20 अगस्त से ही माना जायेगा। पुष्टिकरण हो जाने पर अनधिकृत रूप से किए गए कार्यों से एजेंट का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है और वे अधिकार के अन्तर्गत किए गए कार्यों जैसा ही प्रभाव रखते हैं। पुष्टिकरण के पश्चात् नियोक्ता एवं ततीय पक्षकार के मध्य एक अनुबंध स्थापित हो जाने के कारण एजेंट ततीय पक्षकार के प्रति अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है तथा किये गये कार्यों (अनधिकृत कार्य) एवं सेवाओं के लिए एजेंट, नियोक्ता से कमीशन एवं अन्य व्यय उसी प्रकार पाने का अधिकारी है जैसे कि वह वास्तव में ही एजेंट था।

एजेंसी की समाप्ति

[धारा 201-210]

भारती अनुबंध अधिनियम की धारा 201 तथा राजनियम के प्रभावशील होने पर एजेंसी व्यवहार निम्नलिखित प्रकार से समाप्त किया जा सकता है :–

1. **एजेंसी अनुबंध के निष्पादन द्वारा** (By Performance) – जिस काम के लिए नियोक्ता ने एजेंट को नियुक्त किया है उस काम को पूरा हो जाने पर एजेंसी की समाप्ति स्वतः हो जाती है। उदाहरणार्थ, किसी सम्पत्ति को बेचने की एजेंसी सम्पत्ति के बिक जाने के बाद समाप्त हो जाती है।

   [धारा 201]

2. **पक्षकारों के ठहराव द्वारा** (By mutual agreement between the parties) – एजेंसी की समाप्ति किसी भी समय तथा किसी भी अवस्था में नियोक्ता तथा एजेंट के आपसी समझौते द्वारा की जा सकती है। ऐसा करने में किसी प्रकार की वैधानिक अड़चन नहीं है।

   [धारा 201]

3. **एजेंसी की अवधि समाप्त हो जाने पर** (By expiry of Agency term) – यदि एजेंसी किसी निश्चित अवधि तक के लिए ही हुई है, तो जिस काम के लिए एजेंसी हुई है उस काम के पूरा न होने पर भी या निश्चित अवधि के बीत जाने पर एजेंसी की समाप्ति हो जाती है। अतः निश्चित अवधि के बीत जाने पर बिक्री की एजेंसी भी समाप्त हो जाती है। पक्षकारों के व्यक्त अथवा गर्भित ठहराव के द्वारा एजेंसी जारी रहती है, तो ऐसी दशा में उसकी समाप्ति नहीं होगी। [धारा 201]

4. **विषय-वस्तु के नष्ट होने पर** (By destruction of ageny subject matter) – जब वह वस्तु जिसके लिए एजेंसी स्थापित की गयी थी नष्ट हो जाती है तो एजेंसी समाप्त हो जाती है। उदाहरणार्थ 'अ' अपना मकान बेचने के लिए 'ब' को एजेंट नियुक्त करता है। मकान जलकर नष्ट हो जाता है। एजेंसी की विषय–वस्तु नष्ट हो जाने के कारण एजेंसी समाप्त हो जाती है।

   [धारा 201]

5. **नियोक्ता के दिवालिया होने पर** (By insolvency of the Principal) – नियोक्ता के दिवालिया हो जाने पर एजेंसी की समाप्ति हो जाती है तथा कई प्रकरणों में एजेंट के दिवालिया होने पर भी एजेंसी की समाप्ति होती है, किन्तु जब एजेंट का कार्य केवल औपचारिक [साधारण (Formal)] हो, तो उसके दिवालिया होने पर एजेंसी का अंत नहीं होता। यदि कोई एजेंट यह जानते हुए कि उसका नियोक्ता दिवालिया हो गया है, एजेंसी का काम करता रहता है, तो ऐसे कार्यों के लिए एजेंट व्यक्तिगत रूप से दायी होता है। इंग्लैंड में नियोक्ता के दिवालिया होने पर एजेंसी का अंत होने के लिए तीसरे पक्षकार को नियोक्ता के दिवालिया होने की सूचना का मिलना कोई आवश्यक नहीं है, पर भारत में यह आवश्यक है।

   [धारा 201]

6. **नियोक्ता अथवा एजेंट की मत्यु द्वारा** (By death of principal or agent) – नियोक्ता अथवा एजेंट की मत्यु होने पर एजेंसी समाप्त हो जाती है। मजीद–उन–निसा बनाम अब्दुल रहीम के विवाद में एक एजेंट को प्रपत्रों को रजिस्ट्रेशन

के लिए प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकर्ता–अधिकार (Power of Attorney) प्राप्त था, किन्तु उसने इसे नियोक्ता की मत्यु के बाद रजिस्ट्रेशन के लिए प्रस्तुत किया। रजिस्ट्रार के नियोक्ता की मत्यु के विषय में जानकारी होते हुए भी इसका रजिस्ट्रेशन कर हो दिया। न्यायालय ने इस रजिस्ट्रेशन को अमान्य (Invalid) घोषित किया। जब नियोक्ता की मत्यु के कारण एजेंसी समाप्त हो जाती है, तो एजेंट को अपने नियोक्ता के प्रतिनिधियों की ओर से उसे सौंपे गये हितों की रक्षा एवं सुरक्षा के लिए सभी उचित उपाय करने चाहिए।

[धारा 209]

7. **किसी भी पक्षकार के पागल हो जाने पर** (By Unsoundness of Parties) – नियोक्ता या एजेंट के पागल होने पर भी एजेंसी समाप्त हो जाती है। यद्यपि एजेंट नियुक्त करते समय ऐसा किसी प्रकार कोई प्रतिबंध नहीं है, फिर भी एजेंट के पागल होने पर कानून की ओर से यह आदेश है कि एजेंसी समाप्त कर दी जाये। एजेंसी का अन्त करने के लिए एजेंट अथवा नियोक्ता के पागल होने की सूचना देना आवश्यक है।

8. **एजेंसी के अनुबंध के निष्पादन के असंभव हो जाने पर** (By impossibility to complete agency business) – किसी सरकारी कानून के द्वारा प्रतिबंध लगा देने पर अथवा किसी दूसरे कारण से जब एजेंसी कार्य का निष्पादन करना भविष्य से असंभव हो जाये, तो ऐसी दशा में एजेंसी समाप्त हो जाती है।

9. **एजेंट द्वारा एजेंसी का परित्याग करने पर** (By agent renouncing agency business) – साधारण एजेंट नियोक्ता को उचित सूचना देकर एजेंट का पद त्याग करता है। एजेंट के परित्याग करने पर एजेंसी का अन्त हो जाता है।

   [धारा 205]

10. **नियोक्ता द्वारा खंडन करने पर** (By Principal revoking his authority) – नियोक्ता किसी भी समय एजेंट के अधिकार का खंडन करके एजेंसी समाप्त कर सकता है। जब एजेंट कोई कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया है, तो उस कार्य के प्रारम्भ किये जाने से पहले कभी भी एजेंट के अधिकार का खंडन किया जा सकता है। निम्नलिखित परिस्थितियों में एजेंसी का खंडन नहीं किया जा सकता।

    (*i*) **जहां एजेंट का एजेंसी की विषय-वस्तु में हित है** – यदि एजेंसी की विषय–वस्तु में एजेंट का स्वयं कोई हित है, तो किसी स्पष्ट अनबुंध के अभाव में ऐसे हित को हानि पहुंचाने के लिए नियोक्ता के खंडन द्वारा एजेंसी समाप्त नहीं की जा सकती है। उदाहरणार्थ, 'क', 'अ', 'ब' को अपनी भूमि बेचने का तथा प्राप्त रकम में से अपने ऋण के भुगतान का अधिकार देता है। 'अ' इस अधिकार का खंडन नहीं कर सकता है और न यह नियोक्ता की मत्यु अथवा पागलपन से ही समाप्त हो सकता है। 'ख' 'अ' 1,000 रुई की गांठे 'ब' को भेजता है। 'ब' ने रुई पर अग्रिम रुपया दिया है। 'अ' यह चाहता है कि 'ब' रुई बेचकर अपना अग्रिम धन प्राप्त मूल्य में से ले ले। 'अ' इस अधिकार का खंडन नहीं कर सकता और न उसकी मत्यु अथवा पागलपन से ही समाप्त हो सकता है।

    [धारा 202]

    हित सहित एजेंसी (Agency coupled with Interest) – यदि कोई एजेंसी एजेंट के किसी हित की रक्षा करने के लिए स्थापित की गयी हो, तो एजेंसी की समाप्ति खंडन द्वारा नहीं की जा सकती। ऐसी एजेंसी 'हित सहित एजेंसी' कहलाती है।

    (*ii*) यदि एजेंसी के खंडन होने से पहले एजेंट ने अपने अधिकार का प्रयोग इस प्रकार कर लिया है कि उसका व्यक्तिगत उत्तरदायित्व उत्पन्न हो गया तो नियोक्ता एजेंसी समाप्त नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए 'अ', 'ब' ने अपने लिए, 1,000 गांठे खरीदने का और उसका मूल्य अपने उन रुपयों में से भुगतान करने का अधिकार देता है जो 'ब' के हाथ में है। 'ब' रुई की 1,000 गांठें अपने नाम से पहले इस प्रकार खरीदता है जिससे वह व्यक्तिगत रूप से उसके मूल्य के लिए दायी बन जाता है। जहां तक रुई के मूल्य के भुगतान का प्रश्न है, 'अ', 'ब' के अधिकार का खंडन नहीं कर सकता।

    (*iii*) **जब एजेंट ने अपने अधिकार का आंशिक प्रयोग किया है** (Partly authority exercised by the Agent) – यदि एजेंट ने आंशिक रूप से अपना अधिकार का प्रयोग किया है तो एजेंसी उसके द्वारा किये गये कार्यों के लिए समाप्त नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए (क) 'अ' अपने एजेंट 'ब' से कहता है कि वह उसके पास रखे

हुए 'अ' के रुपयों में से 1,000 रुपये का भुगतान 'स' को दो बराबर किश्तों में कर दे। 'ब', 'स' को 500 रुपये का भुगतान 'अ' द्वारा इस अधिकार का खंडन करने से पूर्व कर देता है। 'अ' इस भुगतान के लिए बाध्य है। (ख) 'अ' 'ब' को अपने लिए 1,000 रुई की गांठें खरीदने और उनका मूल्य अपने उन रुपयों में से भुगतान करने का अधिकार देता है जो कि 'ब' के पास उसके हैं। 'ब' रुई की 1,000 गांठें 'अ' के नाम से इस प्रकार खरीदता है कि वह व्यक्तिगतरूप से मूल्य के लिए दायी नहीं होता। 'अ', 'ब' के भुगतान करने के अधिकार का खंडन कर सकता है। (धारा 204)

अखण्डनीय एजेंसी

(Irrevocable Agency)

यद्यपि भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 201 में यह व्यवस्था है कि एजेंसी अनुबंध को नियोक्ता द्वारा एजेंट के अधिकार का खंडन करके किसी भी समय समाप्त किया जा सकता है, लेकिन निम्नलिखित में नियोक्ता को यह अधिकार प्राप्त नहीं होता है। दूसरे शब्दो में, निम्न परिस्थितियों में एजेंसी अनुबंध अखंडनीय होता है :–

1. **हित सहित एजेंसी की दशा में** (Agency coupled with interest) – धारा 202 के अनुसार, जब एजेंट का एजेंसी की विषय–वस्तु में कोई व्यक्तिगत हित होता है, तो किसी स्पष्ट अनुबंध के अभाव, नियोक्ता ऐसी 'हित सहित एजेंसी' का समाप्त नहीं कर सकता। क्योंकि यदि इस प्रकार की एजेंसी को समाप्त करने का अधिकार दे दिया जाये, तो एजेंट के हितों को हानि पहुंचेगी। उदाहरण के लिए, 'अ' 'ब' को अपनी भूमि बेचने, एवं प्राप्य राशि में से अपने ऋण को शोधन का अधिकार देता है। 'अ' इस अधिकार का खंडन नहीं कर सकता और न यह अधिकार नियोक्ता की मत्यु अथवा उसके पागल हो जाने से ही समाप्त हो सकता है, क्योंकि इस एजेंसी में एजेंट का हित भी सम्मिलित है। इस संबंध में राम चन्द्र बनाम चिनूभाई (Rama Chandra Vs. Chinnubhai) का मामला महत्वपूर्ण है। इस मामले में यह निर्णय किया गया कि यदि कोई एजेंसी एजेंट के हित की रक्षा के लिये स्थापित की गई है तो एजेंसी की समाप्ति खंडन द्वारा नहीं की जा सकती।

2. **जब एजेंट ने व्यक्तिगत दायित्व उत्पन्न कर लिया है** (Where the Agent has incurred Personal Liability) – धारा 203 के अनुसार, यदि एजेंट के अधिकार का खंडन होने से पहले एजेंट ने अपने अधिकार का प्रयोग इस प्रकार कर लिया है कि उसके कार्यों से नियोक्ता बाध्य होता है, तो एजेंसी समाप्त नहीं की जा सकती। यहां मुख्य आशय यह है कि एजेंसी के व्यापार में यदि एजेंट ने स्वयं कोई उत्तरदायित्व ले लिया है, तो एजेंसी समाप्त नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिये, राम श्याम को, राम के लिये 1000 गांठे रुई की खरीदने तथा श्याम के पास रखे हुए राम के धन से उसका भुगतान करने का अधिकार देता है। श्याम रुई को अपने राम से सोहन से खरीद लेता है, जिससे भुगतान के लिए वह निजी रूप से सोहन के प्रति दायी हो जाता है। राम बाद में श्याम की एजेंसी समाप्त नहीं कर सकता। परन्तु यदि श्याम ने रुई अपने नाम में न खरीदकर राम के नाम से ही खरीदी हो, तो राम, श्याम के रुई के भुगतान करने के अधिकार को समाप्त कर सकता है क्योंकि श्याम का कोई निजी दायित्व (Personal Liability) उत्पन्न नहीं हुआ है।

3. **जब एजेंट ने अपने अधिकार का आंशिक प्रयोग कर लिया है** (Where are the Agent has partly exercised his Authority) धारा 204 के अनुसार, जब एजेंट ने अपने अधिकारों का आंशिक प्रयोग कर लिया है, तब भी एजेंसी समाप्त नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, राम अपने एजेंट श्याम को आदेश देता है कि वह हरी से कोयले के क्रय का अनुबंध करे तथा भुगतान तीन बराबर किश्तों में कर दे। श्याम एक किस्त का भुगतान कर चुका है। राम अब एजेंसी अनुबंध का खंडित नहीं कर सकता।

एजेंसी का खंडन संबंधी अन्य नियम

1. **समय से पूर्व एजेंसी की समाप्ति पर क्षतिपूर्ति** – यदि एजेंसी किसी निश्चित अवधि के लिए स्थापित की गयी है और बिना किसी पर्याप्त कारण के उस अवधि से पहले समाप्त कर दी जाती है तो नियोक्ता अथवा एजेंट को (जिसने एजेंसी समाप्त की है) दूसरे पक्षकार को क्षति की पूर्ति करनी होगी।

   [धारा 205]

2. **एजेंसी की समाप्ति की सूचना** – एजेंसी का खंडन करने वाले पक्षकार को दूसरे पक्षकार को खंडन की सूचना के अभाव में खंडन करने वाले पक्षकार को दूसरे पक्षकार को पहुंचने वाली हानि की पूर्ति करनी होगी।

   [धारा 206]

3. **खंडन अथवा परित्याग स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है** – नियोक्ता एजेंट के अधिकार का खंडन स्पष्ट रूप से कर सकता है अथवा अपने आचरण द्वारा गर्भित रूप से खंडन कर सकता है। इसी प्रकार एजेंट भी अपने अधिकार का परित्याग स्पष्ट रूप से अथवा गर्भित रूप से कर सकता है। उदाहरणार्थ 'अ' अपना मकान किराये पर देने के लिए 'ब' को अधिकार देता है। इसके बाद 'ब' स्वयं इसको किराये पर दे देता है। यह 'ब' के अधिकार का गर्भित खंडन है।

   [धारा 207]

4. **एजेंसी की समाप्ति कब प्रभावी होती है** – एजेंट के अधिकारों की समाप्ति, जहाँ तक एजेंट का सम्बन्ध है, इसको इस बात के मालूम होने से पहले नहीं होती है। जहां तक तीसरे व्यक्तियों का संबंध है, जब तक उन्हें एजेंट के अधिकार की समाप्ति की बात मालूम न हो जाये, एजेंसी की समाप्ति नहीं होती। उदाहरणार्थ, (क) 'अ' अपनी ओर से 'ब' को माल बेचने का अधिकार देता है तथा 'ब' को माल के प्राप्त मूल्य पर 5% कमीशन देना स्वीकार करता है। इसके बाद, 'अ' एक पत्र द्वारा 'ब' के अधिकार का खंडन करता है। पत्र भेज देने के बाद, किन्तु 'ब' को मिलने के पहले, 'अ' 1,000 रुपए में माल बेच देता है। इस बिक्री के लिए 'अ', बाय है तथा 'ब' को 5% कमीशन पाने का अधिकार है। (ख) 'ब' मद्रास से 'ब' को मुम्बई के माल गोदाम (Warehouse) में पड़ी हुई रुई को बेचने के लिए पत्र द्वारा आदेश देता है। इसके बाद 'अ' पत्र द्वारा 'ब' के बिक्री करने के अधिकार का खंडन कर देता है तथा वस्तु को मद्रास भेजने के लिए आदेश देता है। 'ब' द्वितीय पत्र पाने के बाद रुई बेचने का अनुबंध 'स' से करता है। 'स' को प्रथम पत्र की जानकारी है, किन्तु द्वितीय की नहीं। 'स', 'ब' को रुपए का भुगतान कर देता है। जिसे लेकर 'ब' भाग जाता है 'स' का भुगतान 'अ' के प्रति उचित है।

एजेंसी की समाप्ति कब लागू होती है।
(When Termination of Agency Takes Effect)

धारा 208 के अनुसार जहां तक एजेंट का संबंध है, एजेंट के अधिकार की समाप्ति उस समय से मानी जायेगी जबकि एजेंट की समाप्ति की सूचना प्राप्त हो जाती है। अतः जब तक समाप्ति की सूचना का संवहन एजेंट को नहीं हो जाता तब तक उसके अधिकारों की समाप्ति नहीं मानी जाएगी और वह नियोक्ता की ओर से कार्य करते हुए ततीय पक्ष को बाध्य कर सकता है। उदाहरणार्थ 'अ' अपनी ओर से 'ब' को माल बेचने का अधिकार देता है तथा 'ब' को माल से प्राप्त मूल्य पर 5% कमीशन देना स्वीकार करता है। इसके बाद, 'अ' एक पत्र द्वारा 'ब' क अधिकार का खंडन करता है। पत्र भेज देने के बाद, किन्तु 'ब' को मिलने से पहले, 'ब' 1,000 रुपये का माल बेच देता है। इस बिक्री के लिए 'अ' बाध्य है तथा 'ब' 50 रुपये कमीशन पाने का अधिकारी है।

जहां तक तीसरे पक्षकारों का संबंध है, एजेंट के अधिकारों की समाप्ति उस समय से प्रभावशाली होगी जब उनको इस बारे में सूचना प्राप्त हो जाती है। इससे पहले उसका कोई प्रभाव नहीं होगा।

उप-एजेंट के अधिकार की समाप्ति
(Termination of Sub-Agent's Authority)

धारा 201 के अनुसार, किसी एजेंट के अधिकार की समाप्ति उसके द्वारा नियुक्त किए गए सभी उप–एजेंटों के अधिकार को भी समाप्त कर देती है क्योंकि उप–एजेंट एजेंट द्वारा ही नियुक्त किया जाता है; अतः एजेंट का अस्तित्व न रहने पर उप–एजेंट का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। स्थानापन्न एजेंट (Substituted Agent) इससे प्रभावित नहीं होगा।

नियोक्ता के प्रति एजेंट के कर्त्तव्य एवं अधिकार
(Rights and Duties of Agent as against Principal)

एजेन्ट के कर्त्तव्य (Duties of Agent) – एक एजेंट के अपने नियोक्ता के प्रति निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं :–

1. **नियोक्ता के आदेशों का पालन करना** (To follow the instruction of the Principal) – धारा 211 के अनुसार, एजेंट को नियोक्ता द्वारा दिये गये सभी आदेशों का पालन करना चाहिये। यदि नियोक्ता ने एजेंट को कोई निश्चित या स्पष्ट आदेश नहीं दिये हैं तो एजेंट का कर्त्तव्य है कि वह उस स्थान तथा व्यापार में प्रचलित रीति–रिवाज (Custom and Usages) के अनुसार कार्य करे। यदि एजेंट अपने नियोक्ता के आदेशों के या प्रचलित रीति के विपरीत कार्य करता है और इससे नियोक्ता को कोई हानि उठानी पड़ती है (चाहे कार्य सद्भावना से नियोक्ता के हित में किया गया हो) तो वह इस हानि की पूर्ति के लिये नियोक्ता के प्रति दायी होगा तथा यदि कोई लाभ होता है तो वह लाभ नियोक्ता को देना होगा। इस संबंध में लिले बनाम डब्बलडे (Lilley Vs. Doubleday) का मामला महत्वपूर्ण है। इस मामले में नियोक्ता ने अपने एजेंट को कुछ समान एक विशेष स्थान पर रखने के लिए कहा किन्तु एजेंट ने उस समान को एक दूसरी जगह पर रख दिया जो कि पहली जगह की भांति अच्छी थी किन्तु सस्ती थी और समान दुर्भाग्यवश आग द्वारा नष्ट हो गया। जज महोदय ने इस केस में यह निर्णय दिया कि इस नुकसान के लिये एजेंट उत्तरदायी है क्योंकि उसने नियोक्ता के आदेशानुसार कार्य नहीं किया, यद्यपि उसने यह कार्य नियोक्ता के हित के लिये ही किया था और आग भी एजेंट की लापरवाही से नहीं लगी थी।

2. **कार्य का उचित सावधानी, चतुराई एवं परिश्रम से करना** (To work with reasonable care skill and diligence) – धारा 212 के अनुसार, एजेंट को अपने नियोक्ता का कार्य उतनी ही सावधानी, चतुराई एवं परिश्रम से करना चाहिये जितनी कि वह अपने स्वयं के कार्य के लिये लगाता अर्थात् एजेंट एजेंसी का व्यापार उतने ही परिश्रम एवं चतुराई से चलाने के लिए बाध्य है, जितनी चतुराई से उसी प्रकार के व्यवहार में लगे हुये व्यक्ति साधारणतः चलाते हैं। यदि एजेंट की लापरवाही, चतुराई के अभाव या दुराचरण के कारण नियोक्ता को कोई प्रत्यक्ष हानि होती है तो एजेंट इस हानि की पूर्ति करने के लिए बाध्य है परन्तु अप्रत्यक्ष तथा दूरवर्ती (Indirect and Remote) हानि के लिए एजेंट बाध्य नहीं होता।

   उदाहरण – 'क' ने कलकत्ता में 'ख' को उधार माल बेचने के लिये नियुक्त किया। 'ख', 'ग' का उधार माल बेचता है। 'ख' माल बेचने से पूर्व 'ग' की माली हालत के बारे में कोई पूछताछ नहीं करता। माल खरीदने के समय 'ग' दिवालिया (Insolvent) था। यह निर्णय दिया गया कि 'ख' ने माल बेचने में चतुराई व दक्षता का प्रयाग नहीं किया है अतः वह 'क' को होने वाली हानि को पूरा करने के लिये दायी है।

   यदि कोई एजेंट किसी कार्य को करने का दायित्व ग्रहण करता है जिसमें विशेष कौशल की आवश्यकता होती है जबकि वास्तव में उसमें उस कौशल का अभाव होता है तो ऐसी दशा में एजेंट इस कौशल के अभाव के लिए दायी होगा। इस संबंध में जैन्किन्स बनाम बैंथम (Jenkins Vs. Benthem) का मामला महत्वपूर्ण है। इस मामले में एक वकील ने अपने मुवक्किल (Client) का मुकदमा एक ऐसी अदालत में प्रस्तुत कर दिया जिसमें कि नहीं करना था या उसने मुकदमे की पैरवी गलत धारा के अन्तर्गत की जिससे मुकदमा बर्खास्त कर दिया गया। इस मामले में यह निर्णय दिया गया कि वकील हर्जाने के लिये मुवक्किल के प्रति उत्तरदायी होगा क्योंकि वकील जो कि एजेंट का कार्य कर रहा था, विशेष ज्ञान नहीं रखता था।

3. **उचित लेखा प्रस्तुत करना** (To tender proper Accounts) – धारा 213 के अनुसार, एजेंट को एजेंसी से संबंधित उचित लेखा प्रस्तुत करना चाहिये। नियोक्ता के साथ एजेंट के संबंध निक्षेपी (Bailor) तथा निक्षेपगहीता (Bailee) के समान होते हैं। अतः एजेंट नियोक्ता का ट्रस्टी माना जाता है। उसे ट्रस्टी के अनुसार ही समस्त व्यवहारों (Transactions) का हिसाब–किताब रखना चाहिए तथा नियोक्ता के मांगने पर प्रस्तुत करना चाहिए।

   यदि एजेंट उचित लेखा नहीं रखता अथवा अपने अधीन कार्य करने वालों के हिसाब की जांच नहीं करता, तो न केवल वह नियोक्ता को होने वाली हानि के लिए बल्कि कर्मचारियों द्वारा किये गय गोलमाल और कपट (Defalcations and Frauds) के लिए भी नियोक्ता के प्रति दायी होगा।

4. **कठिनाई के समय नियोक्ता से सम्पर्क स्थापित करना** (To communicate with the Principal in Difficulty) – धारा 214 के अनुसार आपत्तिकाल में अथवा किसी कठिनाई की दशा में एजेंट का यह कर्त्तव्य है कि नियोक्ता से सम्पर्क स्थापित करे एवं आवश्यक आदेश प्राप्त करे, यदि वह नियोक्ता से सम्पर्क स्थापित करने की स्थिति में है। इस संबंध में उसे यथोचित परिश्रम प्रयोग में लाना चाहिए। यदि वह नियोक्ता से सम्पर्क करने की स्थिति में नहीं है तो उसे साधारण बुद्धि–विवेक का उपयोग करना चाहिए अन्यथा वह नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होगा।

5. **अपने नाम अथवा हिसाब में कोई व्यवहार न करना** (Deal not in his own name or account) – धारा 215 के अनुसार, एजेंट को अपने नाम में एजेंसी व्यवसाय का कोई व्यवहार नहीं करना चाहिये जब तक कि ऐसा करना जरूरी न हो तथा उसने नियोक्ता की पूर्व–स्वीकृति (Prior Consent) न ले ली हो। वे सभी तथ्य उसे नियोक्ता को बतला देने चाहिएं जो उसकी जानकारी में है। ऐसा न करने पर नियोक्ता एजेंसी समाप्त करने का अधिकार रखता है। यदि बाद में पता चलता है कि एजेंट ने एजेंसी के व्यवहार में नियोक्ता के बिना बताए या नियोक्ता के महत्वपूर्ण तथ्य छिपाकर अपने नाम से व्यवहार किया है जिससे नियोक्ता को हानि हुई है तो नियोक्ता अनुबंध को समाप्त कर सकता है।

   उदाहरण – 'अ' 'ब' को अपनी भूमि बेचने के लिए एजेंट नियुक्त करता है। 'ब' भूमि का निरीक्षण करने पर किन्तु विक्रय से पहले एक ऐसी खान उस भूमि के अन्दर पाता है जिसका पता 'अ' को नहीं है। 'ब', 'अ' से स्वयं ही उस भूमि को खरीदने की इच्छा प्रकट करता है, परन्तु खान के पता लगने के तथ्य को छिपा लेता है। विक्रय के बाद 'अ' को इस तथ्य की जानकारी होने पर 'अ' इस अनुबंध को निरस्त कर सकता है।

   धारा 216 के अनुसार, यदि नियोक्ता की जानकारी के बिना एजेंट कोई ऐसा व्यवहार करता है जिसमें उसे लाभ प्राप्त होता है तो ऐसी दशा में भी उसका कर्त्तव्य है कि वह उसे नियोक्ता को दे दे।

6. **नियोक्ता के नाम पर प्राप्त धन नियोक्ता का देना** (To pay all sums received for Principal) – धारा 218 के अनुसार, एजेंट का कर्त्तव्य है कि नियोक्ता के नाम पर प्राप्त समस्त धन नियोक्ता को सौंप दे। परन्तु धारा 217 के अनुसार, एजेंट को अधिकार है कि नियोक्ता को दी गई अग्रिम (Advance) राशि, स्वयं द्वारा किये गये उचित व्यय तथा अपने पारिश्रमिक की राशि को इस प्राप्त धन में से काट सकता है।

7. **गुप्त लाभ प्राप्त न करना** (Not to earn secret profits) – अपने कमीशन या पारिश्रमिक के अतिरिक्त नियोक्ता की जानकारी के बिना एक एजेंट को एजेंसी व्यवहार के अन्तर्गत अन्य किसी प्रकार का गुप्त लाभ प्राप्त नहीं करना चाहिये अन्यथा नियोक्ता उसे वसूल कर सकता है। वह नियोक्ता की स्वीकृति से नियोक्ता से तथा तीसरे पक्षकार से कमीशन ले सकता है।

8. **विपरीत अधिकार स्थापित न करना** (Not to set up an Adverse Title) – एजेंसी के अन्तर्गत नियोक्ता से प्राप्त माल पर एजेंट को अपना या किसी अन्य पक्ष का अधिकार स्थापित नहीं होने देना चाहिये। यदि वह ऐसा करता है तो संपरिवर्तन (Conversion) के लिये वह उत्तरदायी होगा।

9. **अपने अधिकार का हस्तान्तरण न करना** (Not to delegate authority) – एजेंट को अपने अधिकारों को हस्तान्तरण किसी व्यक्ति को नहीं करना चाहिये। नियोक्ता ने जिस कार्य को करने के लिए एजेंट को रखा है, वह कार्य उसे स्वयं करना चाहिये। यदि व्यापार की प्रथा है या अनुबंध की प्रकृति ऐसी है तो उप–एजेंट की नियुक्ति की जा सकती है अन्यथा नहीं।

10. **नियोक्ता की मत्यु या उसके पागल हो जाने पर उसके हितों की रक्षा करना** (To protect the interests of the Principal in case of his death or insanity) – धारा 209 के अनुसार, नियोक्ता की मत्यु या उसके पागल हो जाने पर, एजेंट का कर्त्तव्य है कि वह उसके हितों की रक्षा के लिए आवश्यक कार्यवाही करे।

11. **एजेंसी के दौरान प्राप्त सूचना को नियोक्ता के विरूद्ध प्रयोग न करना** (Not to use information obtained in the course of business of agency against the Principal) – एजेंट का कर्तव्य है कि समस्त प्राप्त सूचनाओं को नियोक्ता को बता दे। यदि एजेंसी के दौरान प्राप्त किसी सूचना को एजेंट नियोक्ता तक नहीं पहुचाता, जिससे नियोक्ता को हानि होती है या सूचना से स्वयं कोई लाभ प्राप्त करता है, तो एजेंट नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है।

एजेंट के अधिकार
(Rights of Agent)

नियोक्ता के प्रति एजेंट के निम्नलिखित प्रकार है :

1. **निर्धारित समय से पूर्व एजेंसी की समाप्ति पर क्षतिपूर्ति का अधिकार** (Right of Indemnification for premature breach of agency) – धारा 205 के अनुसार, यदि एजेंसी एक निश्चित समय के लिए और नियोक्ता द्वारा समय से पूर्व ही एजेंसी की समाप्ति कर दी जाती है तो एजेंट को नियोक्ता से ऐसी पूर्व समाप्ति के कारण हुई हानि की पूर्ति कराने का अधिकार है। धारा 206 इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख करती है कि एजेंसी की समाप्ति के लिए निर्धारित अवधि

की सूचना दी जानी चाहिए। सूचना के अभाव में खंडित एजेंसी की दशा में एजेंट को क्षतिपूर्ति का अधिकार होगा।

2. **प्राप्य धन रोक रखने का अधिकार** (Right to retain money due to himself) – धारा 217 के अनुसार, एजेंट को यह अधिकार है कि वह नियोक्ता की धनराशि में से व्यापार को चलाने के लिये किये गये व्यय, नियोक्ता को एडवांस के रूप में दी गई रकम तथा एजेंट के रूप में कार्य करने का अपना कमीशन रोक ले।

3. **पारिश्रमिक पाने का अधिकार** (Right to receive remuneration) – एजेंट को अपने परिश्रम के लिए पारिश्रमिक पाने का अधिकार है। ठहराव के अनुसार एजेंट को पारिश्रमिक मिलना चाहिए, ठहराव के अभाव में उसे उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकार है। धारा 216 के अनुसार, वह अपने पारिश्रमिक के लिए बिक्री की प्राप्त राशि को रोक सकता है। परन्तु धारा 220 के अनुसार, यदि वह दुराचरण का दोषी है तो उसे पारिश्रमिक पाने का अधिकार नहीं रहेगा, इसके विपरीत यदि एजेंट को नियोक्ता की त्रुटि अथवा दुराचरण के कारण काम करने से रोक दिया जाए तो उसे अपना कमीशन प्राप्त करने का अधिकार रहेगा।

4. **माल पर पूर्वाधिकार** (Lien on Goods) – धारा 221 के अनुसार, किसी विपरीत अनुबंध के अभाव में एजेंट अपने पारिश्रमिक व अन्य उचित व्ययों के भुगतान के लिये नियोक्ता का माल, चल–अचल सम्पत्ति, प्रपत्र आदि उस समय तक रोककर रख सकता है जब तक उसको इन सबका भुगतान प्राप्त न हो जाए अथवा इसका हिसाब न कर दिया जाए। यह एजेंट का विशिष्ट पूर्वाधिकार है व्यापक पूर्वाधिकार नहीं।

5. **माल को मार्ग में रोकने का अधिकार** (Right of Stoppage of goods in transit) – धारा 221 के अनुसार, जब एजेंट नियोक्ता के लिए अदत्त विक्रेता के रूप में होता है तो माल को मार्ग में रोकने का अधिकार प्राप्त है। अदत्त विक्रेता के रूप में एजेंट को उस दशा में माना जायेगा जबकि (क) उसने अपने धन से नियोक्ता के लिये माल खरीदा हो अथवा (ख) उसने खरीदे गये माल के लिये अपनी गारंटी दी हो।

6. **क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार** (Right of Indemnification) – निम्नांकित दशाओं में एक एजेंट को नियोक्ता से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार है :–

   (*i*) **वैधानिक कार्यों के लिए क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार** (Right to be indemnified for lawful acts) – धारा 222 के अनुसार, यदि एजेंसी संचालन में, वैध कार्यों के करने के परिणामस्वरूप, एजेंट को कोई क्षति उठानी पड़ी है तो उसे नियोक्ता से ऐसी हानि की क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार है, परन्तु अवैध कार्यों के फलस्वरूप होने वाली क्षति की पूर्ति नियोक्ता नहीं करेगा। उदाहरणार्थ, मधुर जो कि दिल्ली में व्यवसाय करता है मुम्बई के अमत को सुधाकर से संबंध करने का कार्य सौंपता है। अमत मधुर की ओर से माल की बिक्री का अनुबंध करता है। परन्तु मधुर समय पर माल नहीं भेजता है। मधुर अमत को मुकदमा लड़ने का निर्देश भेजता है। परन्तु अमत मुकदमा हार जाता है तथा उसे सुधाकर को क्षतिपूर्ति में 1,000 रुपये देने पड़ते हैं। अमत यह राशि मधुर से पाने का अधिकारी है।

   (*ii*) **सद्भावना से कार्य करने करने का क्षतिपूर्ति का अधिकार** (Right to be indemnified for acts done in good faith) – धारा 223 के अनुसार, यदि एजेंट ने पूर्ण सद्भावना से कार्य किया है और उन कार्यों के परिणामस्वरूप उसे कुछ क्षति उठानी पड़ी है तो वह नियोक्ता से ऐसी क्षति की क्षतिपूर्ति करा सकता है। भले ही ऐसे कार्य से तीसरे पक्षकार के हितो को चोट पहुंचती हो। परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि कार्य नियोक्ता के लिए, एजेंट द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत किया गया हो। उदाहरण के लिए, 'क' अपने अधिकार में रखी कुछ वस्तुओं के लिए 'ब' को अपना एजेंट नियुक्त करता है। 'ब' सद्भावना से और वास्तविक स्वामित्व के बारे में अनभिज्ञ होते हुए माल 'स' को बेचकर प्राप्त धनराशि को 'क' के सुपुर्द कर देता है। माल का वास्तविक स्वामी 'ग', 'ब' के विरुद्ध वाद प्रस्तुत कर उसे माल का मूल्य वसूल कर लेता है। 'ब', 'क' से 'ग' को दिया गया पूरा मूल्य एवं वाद–प्रतिरक्षा के व्यय वसूल करने का अधिकारी है क्योंकि उसने अपने अधिकारों के अन्तर्गत पूर्ण सद्भावना से कार्य किया था और उसे 'क' के माल के दोषपूर्ण स्वामित्व (Defective Title) के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

धारा 224 के अनुसार, नियोक्ता एजेंट के दण्डनीय (Criminal) कार्य करने से होने वाली हानि को पूरा करने का उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है। जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को कोई ऐसा कार्य करने के लिए नियुक्त करता है तो दण्डनीय है, तो नियोक्ता ऐसे कार्य के परिणाम से उसकी हानिपूर्ति के लिए दायी नहीं है, भले ही उसने उक्त कार्य के परिणामों के विरूद्ध उसकी हानिरक्षा करने का स्पष्ट अथवा गर्भित वचन दे दिया हो। उदाहरण के लिए, 'अ' 'स' को पीटने के लिए 'ब' को नियुक्त करता है, और उक्त कार्य के समस्त परिणामों से उसकी हानि–रक्षा करने का वचन देता है। इस पर 'ब' 'स' को पीट देता है, और ऐसा करने के कारण उसे 'स' को हर्जाना देना पड़ता है। 'अ' ऐसे हर्जाने के लिए 'ब' की हानि–रक्षा के लिए दायी नहीं है।

7. **नियोक्ता की उपेक्षा अथवा चतुराई के अभाव में एजेंट का अधिकार** (Right of Agent upon Principal's Neglect or for want of skill) – धारा 225 के अनुसार, यदि नियोक्ता की उपेक्षा अथवा चतुराई के अभाव के कारण एजेंट को कोई हानि होती है, तो नियोक्ता को उसकी हानि–पूर्ति करनी होगी। उदाहरण के लिए, 'अ' एक मकान बनाने में 'ब' को ईंट रखने वाले के रूप में नियुक्त करता है, और स्वयं मचान तैयार करता है। मचान चतुराई से नहीं बनाया गया और फलस्वरूप 'ब' को चोट लग जाती है। 'अ' 'ब' की क्षति–पूर्ति करने के लिए दायी है।

एजेंट के प्रति नियोक्ता के अधिकार एवं कर्त्तव्य (Rights and Duties of Principal as against Agent)

नियोक्ता के कर्तव्य

(Duties of Principal)

साधारणतया एजेंट के जो अधिकार हैं वही नियोक्ता के कर्तव्य हैं। एजेंट के अधिकारों का वर्णन पहले किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त नियोक्ता के प्रति निम्नलिखित कर्तव्य हैं :–

1. **सभी वैध कार्यों के परिणामों के संबंध में एजेंट के हर्जाना देना** (To indemnify the agent against the consequences of lawful acts) – धारा 222 के अनुसार, नियोक्ता का यह दायित्व है कि वह एजेंट को, उसे प्रदत्त अधिकारों के अन्तर्गत किये गये सभी कार्यों के परिणमों के संबंध में हर्जाना दे। यदि नियोक्ता की आरे से किए गए वैध कार्यों से एजेंट को कोई हानि होती है तो नियोक्ता को ऐसी हानिपूर्ति करने का कर्तव्य है।

2. **एजेंट द्वारा सत्यनिष्ठा से किये गये सभी कार्यों के परिणामों के संबंध में हर्जाना देना** (To indemnify the agent against consequences of acts done is good faith) – धारा 223 के अनुसार, यदि नियोक्ता की ओर से एजेंट सत्यनिष्ठा (सद्भावना) से कोई कार्य करता है जिससे अन्य पक्षों के अधिकारों को हानि पहुंचती है, तो इसके परिणाम के संबंध में एजेंट को हुई हानि–पूर्ति करने का नियोक्ता का कर्तव्य है।

   परन्तु धारा 224 के अनुसार, यदि एजेंट की नियुक्ति कोई अपराध–जन्य (Criminal) कार्य करने के लिए की जाती है, तो स्पष्ट या गर्भित ठहराव होते हुए भी ऐसे कार्य के परिणामस्वरूप एजेंट को होने वाली हानि को पूरा करने का नियोक्ता का दायित्व नहीं है।

3. **नियोक्ता की लापरवाही से हुइ हानि के लिए एजेंट को हर्जाना देना** (To indemnify the agent for injury caused by Principal's neglect) – धारा 225 के अनुसार, यदि स्वयं नियोक्ता की लापरवाही अथवा चतुराई के अभाव के कारण एजेंट को कोई हानि हुई है तो इस हानि को पूरा करने का नियोक्ता का कर्तव्य है।

4. **पारिश्रमिक तथा अन्य व्यय देना** (To pay remuneration and other expenses) – धारा 217, 219, तथा 220 के अनुसार नियोक्ता का एजेंट को उसका पारिश्रमिक व अन्य उचित व्यय देने का कर्तव्य है।

नियोक्ता का अधिकार

(Rights of Principal)

नियोक्ता एजेंट से उसके सभी कर्तव्यों का पालन करा सकता है। एजेंट के कर्तव्य परोक्ष रूप से नियोक्ता के अधिकार होता हैं। एजेंट द्वारा कर्तव्य–भंग किए जाने पर नियोक्ता को एजेंट के विरूद्ध निम्नलिखित उपचार प्राप्त हैं :–

1. **हर्जाना प्राप्त करना** (To recover damages) – नियोक्ता के आदेशों को पालन न किये जाने, या ऐसे आदेश के अभाव में प्रचलित व्यापारिक प्रथा के अनुसार कार्य न करने, या एजेंट में आवश्यक योग्यता, सावधानी या परिश्रम के अभाव के कारण नियोक्ता को हुई हानि के लिए, वह एजेंट से हर्जाना वसूल कर सकता है।
2. **गुप्त लाभों को हिसाब मांगना** (To obtain account of Secret Profits) – यदि नियोक्ता की पूर्व सहमति के बिना तथा समस्त महत्वपूर्ण परिस्थितियों से उसे अवगत कराये बिना एजेंट अपने नाम से व्यापार करता है अथवा नियोक्ता से छुपाकर किसी व्यापार में कोई गुप्त लाभ प्राप्त करता है तो नियोक्ता को ऐसे लाभ का हिसाब मांगने का अधिकार है। केवल इतना ही नहीं, इस कारण एजेंट पारिश्रमिक पाने के अधिकार से भी वंचित हो जाता है। किन्तु एजेंट के गुप्त लाभ कमाने के अन्य पक्षों से किये गये अनुबंध व्यर्थ नहीं होते।
3. **एजेंट के हर्जाने के दावे का विरोध करना** (To resist Agent's claim for indemnity) – दुराचरण (Misconduct) का दोषी होने पर नियोक्ता एजेंट के दावों को चुकाने के लिए अधिकारी नहीं है। वह ऐसे व्यवहारों के द्वारा एजेंट को पहुंचने वाली हानि को पूरा करने से इंकार कर सकता है। यदि नहीं बल्कि यदि नियोक्ता यह सिद्ध कर दे कि एजेंट ने स्वयं नियोक्ता के रूप में कार्य किया है, तो ऐसे व्यवहार में वह एजेंट द्वारा निर्मित दायित्व के लिए हर्जाने के दावे का विरोध कर सकता है।

तीसरे पक्षकार के प्रति नियोक्ता का उत्तरदायित्व
(Liability of the Principal towards Third Party)

वास्तव में, नियोक्ता अपने एजेंट के उन कार्यों के लिए तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होता है जो कि उसने अपने अधिकार के अधीन किया है अथवा नियोक्ता की सहमति से किया है अथवा जिसका नियोक्ता के बाद में पुष्टिकरण कर दिया है, क्योंकि ऐसे सभी मामलों में नियोक्ता अनुबंध करने वाले पक्षकार को जानता है और एजेंट तो केवल एक मध्यस्थ मात्र होता है। तीसरे पक्षकार के प्रति नियोक्ता के निम्नलिखित कर्तव्य है :–

1. **एजेंट के अनुबंधों का प्रवर्तन एवं परिणाम** – एजेंट द्वारा किये गये अनुबंध और कार्यों से उत्पन्न दायित्व नियोक्ता के विरूद्ध उसी प्रकार प्रवर्तित (Enforce) कराये जा सकते हैं और उनके वैसे ही वैध परिणाम हाते हैं जैसे कि अनुबंध तथा कार्य नियोक्ता द्वारा स्वयं ही किये गये हैं। उदाहरणार्थ, (क) 'अ' को यह मालूम है कि 'ब' वस्तु बेचने के लिए एजेंट है, नियोक्ता के विषय में अनभिज्ञ होते हुए भी 'अ' 'ब' से माल खरीदता है। 'ब' के नियोक्ता को 'अ' से माल का मूल्य मांगने का अधिकार है। (ख) 'अ' के एजेंट 'ब' को 'अ' के लिए रुपया प्राप्त करने का अधिकार है। वह 'स' से 'अ' को प्राप्त होने वाली रकम प्राप्त करता है। 'स' उक्त रकम 'अ' को भुगतान करने के दायित्व से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार नियोक्ता एजेंट किये गये सभी अनुबंधों तथा कार्यों के लिए तीसरे पक्षकार के प्रति उत्तरदायी होता है। (धारा 226)
2. **एजेंट द्वारा अनधिकृत कार्य करने पर नियोक्ता केवल अधिकृत अंश के लिए ही दायी है** – यदि एजेंट प्राप्त अधिकार से अधिक कार्य करता है और उसके कार्य में से अधिकृत अंश तथा अनधिकृत अंश को अलग किया जा सकता है, तो नियोक्ता केवल अधिकृत अंश के लिए ही दायी होता है। उदाहरणार्थ, 'अ' एक जहाज तथा उस पर लदे हुए माल दोनों का स्वामी है। वह 'ब' को 4,000 रुपये में जहाज को सामुद्रिक बीमा का अधिकार देता है। 'ब' 4,000 रुपये की एक पॉलिसी (Policy) जहाज पर तथा दूसरी पॉलिसी 4,000 रुपये की माल पर भी लेता है। 'अ' केवल जहाज के लिए एक पॉलिसी पर प्रीमियम देने के लिए बाध्य है, माल की पॉलिसी के लिए नहीं।

   [धारा 227]
3. **एजेंट का अनधिकृत कार्य सम्पूर्ण कार्य से अलग न करने योग्य होने पर नियोक्ता दायी नहीं होता** – जहां एजेंट अपने अधिकार के बाहर कोई कार्य करता है और उसका अनधिकृत कार्य जो कि वह अधिकार से अधिक करता है, अलग नहीं किया जा सकता, तो नियोक्ता इस पूर्ण व्यवहार को मानने के लिए बाध्य नहीं है। उदाहरणार्थ, 'अ', 'ब' को अपने लिए 5,000 भेंड़ें खरीदने का अधिकार देता है। 'ब' 500 भेड़े और 200 मेमने 6,000 रुपये में खरीदता है। 'अ' सम्पूर्ण व्यवहार को अस्वीकार कर सकता है।

   [धारा 228]

4. **एजेंट को दिये नोटिस का परिणाम** – यदि एजेंट को कोई सूचना दी गयी है अथवा जानकारी प्राप्त की गयी है और वह उस व्यापार की साधारण प्रगति में दी गयी या प्राप्त की गयी है तो उसके द्वारा नियोक्ता की ओर से किया जाता है, तो वह नियोक्ता और अन्य व्यक्तियों के संबंध में उसी प्रकार वैध परिणाम (Legal Consequences) रखती है मानो कि वह सूचना अथवा जानकारी नियोक्ता ने स्वयं प्राप्त की है। अतः ऐसी दशा में यदि एजेंट या नियोक्ता सूचना के अनुसार कार्य नहीं करते हैं, तो इसके लिए नियोक्ता तीसरे पक्षकार के प्रति उत्तरदायी होगा। उदाहरणार्थ 'ब' द्वारा 'अ', 'स' से ऐसी वस्तु खरीदने के लिए नियुक्त किया जाता है जिसका 'स' प्रत्यक्ष रूप से स्वामी है। 'अ' उसे खरीद लेता है। विक्रय के व्यवहार की प्रगति में 'अ' को यह ज्ञात होता है कि वस्तु 'ब' की है, किन्तु 'ब' इस तथ्य से अनभिज्ञ है। 'ब' वस्तु के मूल्य में से 'स' को दिए हुए ऋण का प्रतिवाद करने का अधिकारी नहीं है।

[धारा 229]

5. **एजेंट के अनधिकृत कार्य को अधिकृत कार्य होने का विश्वास दिलाने पर नियोक्ता का उत्तरदायित्व** – जब एजेंट ने अधिकार न रखते हुए अपने नियोक्ता की ओर से तीसरे व्यक्तियों के साथ कोई कार्य किया है, अथवा उत्तरदायित्व लिया है और यदि नियोक्ता ने शब्दों अथवा आचरण द्वारा दूसरे व्यक्तियों को विश्वास दिलाया है कि एजेंट द्वारा किए गये कार्य भी उसके द्वारा अधिकृत है, तो ऐसे कार्यों के लिए अन्य व्यक्तियों के प्रति उत्तरदायी है। उदाहरणार्थ, 'अ', 'ब' के पास बिक्री के लिए कुछ माल भेजता है और उसे आदेश देता है कि वह उस माल को निश्चित मूल्य (Fixed Price) से कम पर न बेचे। 'स' इस आदेश को न जानते हुए 'ब' से निश्चित मूल्य से कम पर खरीदने का अनुबंध करता है। 'अ' अनुबंध के लिए बाध्य है।

[धारा 237]

6. **एजेंट के कपट तथा मिथ्या-वर्ण के लिए नियोक्ता दायी होता है** (Principal Liable for Fraud and Mis-representation of Agent) – जबकि ये एजेंसी के व्यवहार की साधारण प्रगति में (in the ordinary course of business) किये गये हों।

[धारा 238]

7. **आपत्तिकाल में अथवा आवश्यकतानुसार एजेंट द्वारा कार्य करने पर उस कार्य के लिए प्रधान तीसरे पक्षकार के प्रति दायी होता है।**
8. जहां तक एजेंट ने अपने अधिकार के अन्दर कार्य करते समय किसी तीसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुंचायी है, तो इसके लिए नियोक्ता अलग से तथा एजेंट के साथ सम्मिलित रूप से भी उत्तरदायी होता है।
9. **नियोक्ता अपने एजेंट के गलत कार्यों के लिए भी उत्तरदायी होता है** (Principal Liable for his Agents Wrong) – नियोक्ता अपने एजेंट के गलत कार्यों के लिए भी उत्तरदायी होता है, यदि वह काम नियोक्ता के व्यापार की साधारण प्रगति में किया गया है। नियोक्ता एजेंट की लापरवाही के लिए भी उत्तरदायी होता है, किन्तु वह लापरवाही एजेंटों द्वारा नियोक्ता के व्यापार की साधारण प्रगति में ही होनी चाहिए। किसी नौकर द्वारा अपने मालिक या नियोक्ता के काम में मालिक की मोटर किसी घोड़े से टकरा देने पर मालिक या नियोक्ता स्वयं इसके लिए उत्तरदायी होगा, एजेंट नहीं।

अप्रकट नियोक्ता
(Undisclosed Principal)
[धारा 231-232]

वास्तव में, जब एजेंसी के तथ्य को प्रकट नहीं करता, अर्थात नियोक्ता के अस्तित्व तथा उसने नाम को प्रकट नहीं करता, तो ऐसी दशा में नियोक्ता अप्रकट नियोक्ता कहलाता है।

साधारणतः निम्नलिखित परिस्थितियों में तीसरे पक्षकार को या ज्ञात नहीं होता कि नियोक्ता कौन है।

1. जब एजेंट के आचरण से ऐसा प्रकट होता है कि स्वयं नियोक्ता है तथा दूसरे की ओर से अनुबंध नहीं कर रहा है;
2. जब एजेंट अपने नियोक्ता का नाम नहीं बताता है; तथा
3. जब एजेंट अनुबंध अपने नाम से करता है।

अप्रकट नियोक्ता की दशा में पक्षकारों के अधिकार और उत्तरदायित्व – यदि नियोक्ता अपने को अनुबंध सम्पन्न होने के पहले प्रकट कर दे तो अनुबंध के अन्य पक्षकार अनुबंध को पूरा करने से मना कर सकते हैं, परन्तु उसे यह सिद्ध करना होगा कि यदि उसे पहले मालूम हो जाता है कि एजेंट नियोक्ता नहीं है, तो वह उस अनुबंध को ही न करता।

[धारा 231]

यदि तीसरे पक्षकार को अप्रकट नियोक्ता का नाम बाद में मालूम हो जाये, तो वह एजेंट अथवा वास्तविक नियोक्ता दोनों में से जिसे चाहे बाध्य कर सकता है।

एजेंट तीसरे पक्षकार के प्रति कब उत्तरदायी होता है – यदि एजेंट ने तीसरे पक्षकार को अपने एजेंट होने की बात बता दी है, परन्तु अपने नियोक्ता का नाम नहीं बताया है तो ऐसी दशा में एजेंट स्वयं उत्तरदायी नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में तीसरा पक्षकार नियोक्ता को अनुबंध निष्पादन के लिए बाध्य कर सकता है।

तीसरे पक्ष के प्रति एजेंट का व्यक्तिगत दायित्व
(Personal Liability of Agent to Third Party)
or
(Circumstances when Agent can sue or be sued Personally)

सामान्य नियम यह है कि एजेंट अपने नियोक्ता के लिए कार्य करता है तथा उसके द्वारा किये गये कार्यों से नियोक्ता बाध्य होता है, अर्थात् एजेंसी के व्यापार में नियोक्ता के लिए किए गए अधिकृत कार्यों के लिए एजेंट स्वयं व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होता। वह तो नियोक्ता एवं तीसरे पक्षकार के बीच केवल एक मध्यस्थ का कार्य करता है। धारा 230 के अनुसार, किसी विपरीत अनुबंध के अभाव में एजेंट नियोक्ता के लिए किये गये अनुबंधों को न तो स्वयं प्रवर्तन (Enforce) करा सकता है तथा न ही एजेंट इन अनुबंधों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। केवल नियोक्ता ही तीसरे पक्षकार के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है तथा तीसरे पक्षकार भी केवल नियोक्ता पर ही वाद प्रस्तुत कर सकते हैं। उदाहरण के लिये, 'ब' 'अ' का एजेंट है। 'ब' 'स' के साथ 'अ' का मकान बेचने का अनुबंध करता है। बाद में यदि 'स' मकान नहीं खरीदता, तो अनुबंध खंडन के लिये 'अ' दावा कर सकता है, और इसी प्रकार यदि 'अ' मकान को नहीं बेचता, तो 'स' के विरूद्ध दावा कर सकता है। ऐसी दशा में 'ब' स्वयं दावा नहीं कर सकता, और न उसके विरूद्ध ही दावा किया जा सकता है। परन्तु किसी अनुबंध के अनुसार ऐसी व्यवस्था की जा सकती है कि जिससे एजेंट व्यक्तिगत रूप से दावा कर सके। निम्नलिखित परिस्थितियों में ऐसे अनुबंध का होना माना जाता है, और इसलिये इन परिस्थितियों में एजेंट व्यक्तिगत रूप से दावा कर सकता है, और वह व्यक्तिगत रूप से भी दायी ठहराया जा सकता है :–

1. **जब अनुबंध में यह स्पष्ट हो** (When the contract expressly providess) – यदि एजेंट से अनुबंध करने वाला व्यक्ति यह स्पष्ट कर देता है कि अनुबंध भंग की दशा में वह एजेंट को उत्तरदायी ठहरायेगा और एजेंट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होना स्वीकार कर लेता है तो अनुबंध भंग होने की दशा में एजेंट व्यक्तिगत रूप से तीसरे पक्षों के प्रति उत्तरदायी होता है।

2. **जब एजेंट विदेशी नियोक्ता के लिए कार्य करता है** (When the Agent acts for a Foreign Principal) – धारा 230 में यह मान्यता है कि जब एजेंट किसी ऐसे नियोक्ता के लिए माल का क्रय–विक्रय करता है जो विदेश में रहता है तो एजेंट का दायित्व व्यक्तिगत होगा। इस मान्यता का आधार है कि अनुबंध एजेंट की साख पर किया जाता है। किन्तु एजेंट अनुबंध करते समय इस संबंध मे स्पष्ट करने से इस व्यक्तिगत दायित्व से बच सकता है।

3. **जब एजेंट अप्रकट नियोक्ता के लिए कार्य करता है** (When the Agent acts for undisclosed Principal) – जब एजेंट अपने नियोक्ता का नाम प्रकट नहीं करता है और तीसरा पक्षकार केवल एजेंट के विश्वास पर ही नियोक्ता का नाम न जानते हुए अनुबंध कर लेते हैं तो ऐसी दशा में एजेंट को व्यक्गित रूप से दायी ठहराया जा सकता है।

   इसके विपरीत, यदि तीसरे पक्षकार को इस बात की जानकारी हो कि अनुबंध करने वाला केवल एजेंट है और नियोक्ता कोई अन्य व्यक्ति है या उनके पास नियोक्ता को जानने के लिये पर्याप्त साधन थे जिससे यह स्पष्ट होता है कि अनुबंध

करने वाला मात्र एजेंट है तो ऐसी दशा में एजेंट व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं ठहराया जा सकता अर्थात् ऐसी दशा में नियोक्ता ही दायी होगा।

4. **जब नियोक्ता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता** (When the Principal cannot be sued) – यदि एजेंट किसी ऐसे नियोक्ता की ओर से कार्य कर रहा है जो स्वयं अनुबंध करने के अयोग्य है, जैसे अवयस्क, अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति, विदेशी शासक, राजदूत इत्यादि अथवा नियोक्ता सरकार द्वारा अनुबंध करने के अयोग्य घोषित कर दिया गया हो तो अनुबंध करते समय एजेंट द्वारा उस तथ्य की सूचना तीसरे पक्षकार को न दी गई हो तो ऐसी स्थिति में नियोक्ता का नाम प्रकट हो जाने पर भी उस पर वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। अतः यहां एजेंट व्यक्तिगत रूप से दायी होगा।

5. **जब वह किसी व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को हानि पहुंचाता है** (When he causes injury to the body or property of any person) – अपने अधिकारों के बाहर कार्य करते हुये यदि एजेंट किसी व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को हानि पहुंचाता है तो वह व्यक्तिगत रूप से दायी होगा। किन्तु जब यही क्षति अधिकारों के अन्तर्गत कार्य करते हुये एजेंट द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को पहुंचाई गई है तो एजेंट एवं नियोक्ता पथक–पथक एवं संयुक्त (Jointly and Severally) उत्तरदायी होंगे।

6. **जब एजेंट अपने नाम से अनुबंध करता है या विनियम साध्य पत्र पर हस्ताक्षर करता है** (When the Agent signs the contract or negotiable instrument in his own name) – जब एजेंट अपने नाम में अनुबंध करता है और यह नहीं प्रकट करता कि वह एजेंट के रूप में कार्य कर रहा है एवं जब विनियम साध्य प्रलेखों जैसे विनियम–पत्र, प्रतिज्ञा–पत्र, चैक आदि पर यह स्पष्ट किये बिना कि वह एक एजेंट है अपने नाम में हस्ताक्षर करता है तथा यह स्पष्ट नहीं करता कि वह अपने नियोक्ता के लिये हस्ताक्षर कर रहा है तो उसे इस प्रकार दिये गये वचनों के निष्पादन के लिये व्यक्तिगत रूप से दायी ठहराया जायेगा। किन्तु जब अपने नियोक्ता से आज्ञा प्राप्त कर वह इस विश्वास से विनिमय साध्य–पत्रों पर हस्ताक्षर करता है कि उसका नियोक्ता ही उसके हस्ताक्षरों के लिए दायी होगा तो वह व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होगा।

7. **जब एजेंट अस्तित्वहीन नियोक्ता के लिए कार्य करता है** (When the Agent acts for a Principal not in existence) – जब कोई एजेंट किसी ऐसे नियोक्ता के लिए कार्य करता है जो कार्य करते समय विद्यमान नही था, जो एजेंट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा। ऐसी स्थिति में यह माना जाता है कि एजेंट ने स्वयं अपने लिए अनुबंध किया है। कम्पनी के समामेलन (Incorporation) से पूर्व प्रवर्तकों (Promoters) द्वारा किये गये अनुबंधों के लिए कम्पनी उत्तरदायी नहीं होती।

8. **जब एजेंट अपने अधिकारों से बाहर कार्य करता है** (When the Agent exceeds his authority) – जब एजेंट अपने अधिकार–क्षेत्र से बाहर कार्य करता है तथा नियोक्ता इन कार्यों की पुष्टि नहीं करता, तो एजेंट तीसरे पक्षकारों के प्रति व्यक्तिगत रूप से दायी होता है।

9. **जब एजेंट के अधिकार एवं हित जुड़े हुए हैं** (When the Authority of the Agent is coupled with interest) – जब किसी अन्य पक्ष से किये गये अनुबंध की विषय–वस्तु में एजेंट का भी हित रहता है, ता उसके अधिकार एवं हित जुड़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में, विषय–वस्तु में उसे हित की सीमा तक वह दावा कर सकता है या उस पर दावा किया जा सकता है।

10. **जब व्यापारिक रीति-नीति या प्रथा एजेंट के व्यक्तिगत दायित्व का निर्माण करती है** (When the trade usage or customs makes the Agent personally liable) – यदि एजेंट के व्यक्तिगत दायित्व का निर्माण व्यापारिक रीति–नीति या प्रथा के आधार पर होता है, तो कोई विपरीत अनुबंध न होने पर एजेंट का दायित्व व्यक्तिगत होगा।

11. **जब एजेंट गलती या कपट से कुछ राशि प्राप्त करता है या देता है** (When the Agent receives or pays money by mistak or fruad) – जब एजेंट गलती या कपट से कुछ राशि प्राप्त करता है या भुगतान करता है, तो इस राशि के लिये वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

12. **बनावटी एजेंट** (Pretended Agent) – धारा 235 के अनुसार, जब कोई व्यक्ति स्वयें को किसी अन्य व्यक्ति का अधिकृत एजेंट बताता है तथा तीसरे पक्ष को उसके साथ अनुबंध करने के लिए प्रेरित करता है एवं नियोक्ता उसके कार्य का पुष्टिकरण नहीं करता, तो ऐसा एजेंट 'बनावटी एजेंट' कहलाता है तथा वह तीसरे पक्षों के प्रति व्यक्तिगत

रूप से उत्तरदायी होता है। इस संबंध में मनीभाई बनाम रूपालिबा (Manibhai Vs. Rupaliba) का निर्णय महत्वपूर्ण है जिसके अन्तर्गत माता ने अपने आप को अपने अवयस्क लड़के का अधिकृत एजेंट बताकर कार्य किया था।

13. **मिथ्यावर्णन अथवा कपटपूर्ण काये के लिए** (For Misrepresentation and Fraud) – एजेंट द्वारा अपने अधिकार के बाहर कार्य करने की प्रगति में किये गये कपट एवं मिथ्यावर्णन के लिये वह व्यक्तिगत रूप से ही दायी होगा, उसका नियोक्ता नहीं।

अप्रकट नियोक्ता
(Undisclosed Principal)

यदि एक एजेंट किसी ऐसे व्यक्ति के साथ अनुबंध करता है जो यह नहीं समझता कि वह एजेंट है और न ऐसा समझने के लिये कोई उचित आधार रखता है, तो ऐसे एजेंट का नियोक्ता कहलाता है। (Undisclosed Principal is the Principal whose identity is not known to the contracting party). ऐसी दशा में तीसरा पक्षकार एजेंट का एजेंट न समझकर बल्कि नियोक्ता समझकर अनुबंध करता है। साधारणतः निम्नांकि तीन दशाओं में तीसरे पक्ष को यह ज्ञात नहीं होता कि नियोक्ता कौन है :–

1. जब एजेंट के आचरण से ऐसा मालूम होता है वही सब कुछ है तथा दूसरे के तरफ से अनुबंध नहीं कर रहा है।
2. जब एजेंट अपने नियोक्ता का नाम नहीं बताता है; तथा
3. जब एजेंट अनुबंध अपने नाम से करता है।

अप्रकट नियोक्ता की वैधानिक स्थिति (Legal Position of Undisclosed Principal) – धारा 231 के अनुसार, यदि एजेंट किसी तीसरे पक्ष से अनुबंध करता है तथा तीसरे पक्ष को उसके एजेंट होने का न तो ज्ञान है और न ही संदेह करने का कोई कारण है तो अप्रकट नियोक्ता अपने आपको प्रकट कर सकता है और तीसरे पक्ष के अनुबंध के निष्पादन की मांग कर सकता है, परन्तु तीसरे पक्ष को भ नियोक्ता के विरुद्ध वह जब अधिकार प्राप्त होंगे जोकि उसे सह समय प्राप्त होते जबकि एजेंट नियोक्ता ही होता। उदारहण के लिये, 'ब' 'स' से कुछ रुई खरीदने का अनुबंध करता है। वास्तव में 'ब' अपने नियोक्ता 'अ' की ओर से अनुबंध कर रहा है, परन्तु 'स' यह नही जानता और न ऐसा समझने का कोई उचित आधार रखता है कि 'ब' 'स' का एजेंट है। ऐसी दशा में 'ब' 'स' पर दावा कर सकता है, यदि वह रुई बेचने से इंकार करता है, और इसी प्रकार 'स' 'ब' पर दावा कर सकता है, यदि वह रुई खरीदने से इंकार कर देता है। इसके अतिरिक्त 'अ' भी 'स' पर दावा कर सकता है, और 'अ' पर भी 'स' द्वारा दावा किया जा सकता है।

यदि अप्रकट नियोक्ता अनुबंध के पूरा होने से पहले अपने आपको प्रकट कर देता है, तो तीसरा पक्षकार अनुबंध को पूरा करने से इंकार कर सकता है, यदि वह यह प्रमाणित कर दे कि यदि वह पहले ही नियोक्ता के बारे में जानता होता या यह जानता होता कि एजेंट स्वयं नियोक्ता नहीं है तो वह उसके साथ अनुबंध नहीं करता। तीसरे पक्षकार को यह अधिकार तभी प्राप्त होगा जबकि नियोक्ता ने स्वयं अपने आपको प्रकट कर दिया हो; यदि तीसरे पक्ष को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अथवा किसी अन्य साधन द्वारा नियोक्ता के बारे में सूचना प्राप्त हुई है तो वह अनुबंध का निष्पादन करने से इंकार नहीं कर सकता।

धारा 232 के अनुसार, प्रकट हो जाने के बाद यदि अप्रकट नियोक्ता तीसरे पक्ष से अनुबंध के निष्पादन की मांग करता है तो ऐसा वह एजेंट एवं तीसरे पक्ष के बीच विद्यमान अधिकार एवं दायित्वों को पूरा करने की शर्त पर ही कर सकता है।

उदाहरण के लिए 'अ', 'ब' का 1,000 रू. से ऋणी है, वह 'ब' को 1,500 रू. का गेहूं बेचने का वचन देता है। वास्तव में 'अ', 'स' के एजेंट के रूप में कार्य कर रहा है, परन्तु वह इस बात को नहीं जानता और न ही उसके पास ऐसा कोई उचित आधार है जिससे वह समझे कि 'अ', 'स' का एजेंट है। 'स' अनुबंध के निष्पादन की मांग 'ब' से करता है। ऐसा वह तब तक नहीं कर सकता जब तक कि वह 'अ' को उसके द्वारा 1,000 रू. काटने की अनुमति न दे दे।

जब एजेंट यह नहीं बताता कि वह किसी का प्रतिनिधित्व कर रहा है, किन्तु बाद में तीसरे पक्ष को यह रहस्य पता लगता है कि नियोक्ता विद्यमान था, तो उसके यह अधिकार है कि वह नियोक्त या एजेंट या दोनों के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सके, बशर्ते कि उसने अभी तक एजेंट के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की है।

निर्वाचन का अधिकार

(Right of Election)

धारा 233 के अनुसार, उन सभी परिस्थितियों में जिनमें एजेंट व्यक्तिगत रूप से दायी होता है, उसके साथ व्यवहार करने वाला पक्षकार उसे या नियोक्ता को या दोनों को दायी ठहरा सकता है। तीसरे पक्षकार का यह अधिकार निर्वाचन का अधिकार कहलाता है। उदाहरणार्थ, 'अ', 'ब' के साथ 200 रुई की गांठे बेचने का अनुबंध करता है। बाद में उसे यह पता लगता है कि 'ब' 'स' के एजेंट के रूप में कार्य कर रहा था। 'अ' रुई का मूल्य प्राप्त करने के लिये 'ब' पर अथवा 'स' पर अथवा दोनों पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

धारा 234 के अनुसार यदि तीसरे पक्षकार एजेंट को इस बात पर प्रेरित करके कार्य करते हैं कि केवल नियोक्ता को दायी ठहराया जायेगा और नियोक्ता को इस बात पर प्रेरित करने कार्य कराते हैं कि केवल एजेंट को दायी ठहराया जायेगा तो ऐसी दशा में वह दोनों में से किसी को भी दायी नहीं ठहरा सकता।

बनावटी एजेंट

(Pretended Agent)

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 235 के अनुसार, जब एक व्यक्ति जो वास्तव में एजेंट नहीं है अपने को किसी व्यक्ति का एजेंट बताता है और इस प्रकार तीसरे व्यक्ति को अनुबंध करने के लिए प्ररित करता है तो इस प्रकार के व्यक्ति को बनावटी एजेंट (Pretented Agent) कहते हैं।

ऐसी दशा में ऐसा बनावटी एजेंट तीसरे पक्ष के प्रति अपने कार्य के लिये जो उसने एक बनावटी एजेंट के रूप में किया है, उत्तरदायी होगा। किन्तु यदि वह व्यक्ति जिसको उसके अपने नियोक्ता बताया तथा उसके कार्य की पुष्टि कर देता है तो ऐसी दशा में तीसरे पक्ष के प्रति ऐसे एजेंट के कार्य के लिये नियोक्ता स्वयं उत्तरदायी होगा।

धारा 236 के अनुसार, बनावटी एजेंट यदि एजेंट के रूप में किया है, उत्तरदायी होगा। किन्तु यदि वह व्यक्ति जिसको उसने अपने नियोक्ता बताया तथा उसके कार्य की पुष्टि कर देता है तो ऐसी दशा में तीसरे पक्ष के प्रति ऐसे एजेंट के लिए नियोक्ता स्वयं उत्तरदायी होगा।

धारा 236 के अनुसार, बनावटी एजेंट यदि एजेंट के रूप में कार्य न करके अपने स्वयं के लिए व्यवहार कर रहा है तो वह तीसरे पक्षकार से अनुबंध के निष्पादन की मांग नहीं कर सकता।

खण्ड 2

अध्याय-11

वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930
(Sale of Goods Act, 1930)

वर्तमान युग व्यापार और वाणिज्य का युग है। इस युग में प्रतिदिन अनेकों व्यापारिक अनुबंध किए जाते हैं। वस्तु विक्रय अनुबंध किये जाते है। वस्तु विक्रय अनुबंध को कानून में एक विशेष प्रकार का अनुबंध माना जाता है। 1930 से पूर्व वस्तु–विक्रय से संबंधित नियम भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 की धारा 76 से 123 में शामिल थे। ये व्यवस्थाएं व्यापारिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पर्याप्त नहीं थे। अतः भारतीय संसद ने वस्तु–विक्रय अनुबंध की पेचीदगी और महत्व को देखते हुए सन् 1930 में वस्तु–विक्रय से संबंधित प्रावधानों को भारतीय अनुबंध अधिनियम से समाप्त करके एक पथक वस्तु–विक्रय अधिनियम बनाया। यह अधिनियम भारतीय वस्तु–विक्रय अधिनियम 1930 था। 1963 में एक संशोधन के द्वारा एक भारतीय शब्द को हटा दिया गया। अतः अब इसका नाम वस्तु–विक्रय अधिनियम है। इसके संबंध में निम्न व्यवस्थाएं हैंः–

अधिनियम का शीर्षक :- यह वस्तु–विक्रय अधिनियम 1930 कहलाता है। {धारा 1 (1)}

अधिनियम का क्षेत्र :- यह अधिनियम जम्मू और कश्मीर को छोड़कर संपूर्ण भारत में लागू होता है। {धारा 1 (2)}

प्रारम्भ होने का समय :- यह अधिनियम 1 जुलाई, 1930 से प्रारम्भ हुआ। {धारा 1 (3)}

आधारभूत परिभाषाएं

1. **क्रेता (Buyer) :-** ''क्रेता से आशय उस व्यक्ति से है, जो माल खरीदता है तथा माल का ठहराव करता है।'' {धारा 2 (1)}

2. **विक्रेता (Seller) :-** विक्रेता से आशय उस व्यक्ति से है जो वस्तु बेचता। {धारा 2 (B)}

3. **सुपुर्दगी (Delivery) :-** एक व्यक्ति द्वारा अपनी इच्छा से किसी दूसरे व्यक्ति को माल का अधिकार सौंपना सुपुर्दगी कहलाता है। {धारा 2 (2)}

4. **सुपुर्दगी योग्य दशा (Delivery State) :-** माल उस स्थिति में होता है, जब वह ऐसी दशा में हो कि क्रेता अनुबंध के अधीन उसकी सुपुर्दगी लेने के लिए बाध्य हो। {धारा 2 (3)}

5. **माल के अधिकार संबंधी प्रलेख (Documents of Title of Goods) :-** माल के अधिकार संबंधी प्रलेख से आशय ऐसे प्रलेखों से है जो व्यापार की साधारण प्रगति में प्रयोग होते है। अथवा जिनको रखने वाला व्यक्ति उनमें लिखे हुए माल हो हस्तांतरण करने अथवा प्राप्त करने का अधिकार रखता है। {धारा 2 (4)}

6. **दोष (Fault) :-** दोष का आशय गलत काम या त्रुटि से है। {धारा 2 (5)}

7. **माल (Good) :-** माल या वस्तु से आशय अभियोग योग्य दावे और मुद्रा को छोड़कर प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति से है तथा इसमें स्टॉक, अंश, खड़ी फसलें, घास एवं वस्तुएँ, जो जमीन से जुड़ी या जमीन का ही भाग हो और जिन्हें बिक्री से पहले या बिक्री के अनुबंध से पहले अलग करने का समझौता हो चुका हो, शामिल होती है।

   {धारा 2 (7)}

विक्रय अनुबंध का निर्माण
(Formation of the Contract of Sale)

वस्तु विक्रय अनुबंध के निर्माण के संबंध में निम्नलिखित तथ्य शामिल है :–

1. विक्रय अनुबंध क्या है ?
2. यह वैध रूप से किस प्रकार उत्पन्न होता है ?
3. विक्रय अनुबंध की विषय–सामग्री
4. मूल्य

विक्रय अनुबंध क्या है ?

{धारा 4 (2)} – वस्तु विक्रय अनुबंध शर्त रहित या शर्त सहित हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु को एकदम खरीद लेता है तो इसे शर्त रहित कहा जाता है किन्तु यदि वह वस्तु को पसंद करने के लिए अपने साथ ले जाता है तो वह शर्त सहित विक्रय होगा।

विक्रय का अनुबंध एक व्यापक शब्द है और इसमें विक्रय और विक्रय का समझौता दोनों शामिल है :–

विक्रय :- विक्रेता द्वारा मूल्य के बदले माल के स्वामित्व को क्रेता के विक्रेता अनुबंध के साथ हस्तांतरित किए जाने को विक्रय कहते हैं।

विक्रय का समझौता :- यदि विक्रय अनुबंध के अंतर्गत विक्रय हेतु माल के स्वामित्व का हस्तांतरण भविष्य में अथवा किसी विशिष्ट शर्त के पूरा होने पर किया जाना निश्चित किया गया है तो वह विक्रय समझौता है।

परिभाषाएं :- वस्तु विक्रय अधिनियम की {धारा 4 (1)} क अनुसार, ''विक्रय अनुबंध से तात्पर्य ऐसे अनुबंध से है जिसमें विक्रेता निश्चित मूल्य के बदले क्रेता को माल का स्वामित्व हस्तांतरित करता है या करने को सहमत होता है।

ब्लैक स्टोन के अनुसार :- ''किसी मूल्य के प्रतिफल के बदले एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को माल के स्वामित्व का हस्तांतरण विक्रय कहलाता है।''

वस्तु विक्रय अनुबंध के आवश्यक लक्षण/विशेषताएँ :- धारा 4 (1) में दी गई परिभाषा के आधार पर एक वस्तु–विक्रय अनुबंध में निम्न मुख्य लक्षण होने चाहिए :–

1. **वैध अनुबंध के आवश्यक लक्षण :-** वस्तु विक्रय अनुबंध में एक अनुबंध के सभी लक्षण विद्यमान होने चाहिए जैसे – पक्षकारों के अनुबंध करने की क्षमता, प्रतिफल, स्वतंत्र सहमति आदि।
2. **क्रेता तथा विक्रेता :-** वस्तु विक्रय अनुबंध की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें क्रेता और विक्रेता दोनों एक ही व्यक्ति नहीं हो सकते हैं। दोनों पक्षकारों में अनुबंध करने की क्षमता होनी आवश्यक है। लेकिन कुछ परिस्थितियों में वस्तु के स्वामित्व का हस्तांतरण रोकने के लिए उसको स्वयं ही खरीद लेता है।

   उदाहरण – मोहन और सोहन के पास कुछ चावल का आधा–आधा भाग है मोहन अपने भाग को सोहन को बेचने के लिए सोहन के साथ अनुबंध कर सकता है।
3. **वस्तु या माल :-** विक्रय अनुबंध की विषय–वस्तु माल होती है माल से आश्य प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति से है। माल निश्चित अथवा अनिश्चित प्रकृति का हो सकता है।
4. **मूल्य :-** माल के स्वामित्व का हस्तांतरण निश्चित मूल्य के बदले होता है मूल्य से अभिप्राय प्रतिफल से है तथा मूल्य सदैव मुद्रा के रूप में होना चाहिए।
5. **स्वामित्व का हस्तांतरण :-** विक्रय अनुबंध में माल का स्वामित्व का हस्तांतरण होना आवश्यक है। यदि माल का स्वामित्व तुरन्त हस्तांतरित हो जाता है तो इसे 'विक्रय' कहते है। यदि माल के स्वामित्व का हस्तांतरण भविष्य में होना है तो इसे 'विक्रय ठहराव' कहते है।

विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अंतर

	अन्तर का आधार (Basis of Difference)	विक्रय (Sale)	विक्रय का ठहराव (Agreement to Sell)
	(1)	(2)	(3)
1.	प्रकृति (Nature)	विक्रय की दशा में निष्पादन पूर्ण हो जाता है अतः यह निष्पादित (Executed) अनुबंध होता है।	इसमें निष्पादन होना शेष रहता है अतः यह निष्पादनीय (Executory) अनुबंध है।
2.	स्वामित्व का हस्तांतरण होता। (Transfer of Ownership)	इसमें माल का स्वामित्व अनुबंध के समय ही क्रेता को हस्तान्तरित हो जाता है, अर्थात् विक्रय होते ही क्रेता माल का स्वामी बना जाता है।	इसमें माल का स्वामित्व अनुबंध के समय ही क्रेता को हस्तान्तरित नहीं किसी भावी समय पर अथवा भविष्य में किसी शर्त के पूरा होने पर हस्तान्तरित होता है।
3.	प्रयोक का अधिकार (Right to Use)	विक्रय क्रेता को माल का पूर्ण प्रयोग का अधिकार देता है तथा क्रेता समस्त विश्व के विरूद्ध माल का अकेल स्वामी होता है तथा जिस रूप में चाहे उसका प्रयोग कर सकता है।	विक्रय का ठहराव मात्र एक अनुबंध है जो क्रेता को माल के स्वतंत्र प्रयोग का अवसर तब तक नहीं देता, जब तक स्वामित्व का हस्तांतरण न हो जाए।
	(1)	(2)	(3)
4.	खण्डन के परिणाम है, (Consequences of Brech)	इसमें यदि क्रेता माल का मूल्य चुकाने में त्रुटि करता है, तो विक्रेता उस पर मूल्य के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है।	इसमें जब क्रेता माल प्राप्त करने तथा उसका मूल्य चुकाने में असफल रहता तो विक्रेता केवल हर्जाने के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है, मूल्य के लिए नहीं।
5.	हानि का जोखिम (Risk of Loss)	इसमें माल की होने वाल किसी प्रकार की हानि (जब तक कि उसे विपरीत ठहराव न हो) क्रेता की ही होगी, भले ही माल अभी तब विक्रेता के ही पास हो।	इसमें माल की किसी प्रकार की होने वाली हानि (जब तक कि इसके विपरीत ठहराव न हो) विक्रेता की हो होती है।
6.	विक्रेता का दिवालिया होना (Insolvency of Seller)	इसमें माल की सुपुर्दगी देने से पहले यदि विक्रेता दिवालिया हो जाता है तो क्रेता उसके ऑफीसिअल रिसीवर से भी माल की सुपुर्दगी ले सकता है क्योंकि यह (क्रेता) माल का स्वामी है।	इसमें विक्रेता के दिवालिया होने पर, क्रेता माल पाने का अधिकार नहीं रखता, वह केवल अपने अंश के लिए दावा कर सकता है।
7.	क्रेता का दिवालिया होना (Insolvency of the Buyer)	इसमें क्रेता के दिवालिया होने की दशा विक्रेता को क्रेता द्वारा खरीदा हुआ माल ऑफिसियल रिसीवर को सुपुर्द करना होगा।	इसके अंतर्गत यदि क्रेता वस्तु का मूल्य चुकाने से पहले ही दिवालिया हो जाता है तो विक्रेता क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने से इन्कार कर सकता है।

Contd..

8.	विक्रेता द्वारा त्रुटि (Default by Seller)	विक्रय में जब विक्रेता माल देने में त्रुटि करता है, तो क्रेता केवल क्षति के लिए ही नहीं, बल्कि किसी तीसरे व्यक्ति पर भी माल के स्वामी के रूप में वाद कर सकता है।	विक्रय के ठहराव में क्रेता केवल अपनी क्षति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है क्योंकि माल का स्वामी विक्रेता ही होता है।

विक्रय अनुबंध और अन्य अनुबंधों में अन्तर

1. **विक्रय तथा निक्षेप के अनुबंध में अंतर :-** निक्षेप के अनुबंधों में माल का स्वामित्व निक्षेप–गहीता को हस्तांतरित नहीं किया जाता है। माल को केवल किसी विशेष उद्देश्य के लिए इस शर्त के साथ हस्तांतरित किया जाता है कि उद्देश्य की पूर्ति के बाद वही माल निक्षेपगहीता द्वारा निक्षेपी को वापिस कर दिया जाएगा , अथवा निक्षेपी के आदेशानुसार उसका विक्रय कर दिया जाएगा। जबकि विक्रय अनुबंध के अंतर्गत विक्रेता द्वारा क्रेता को माल का स्वामित्व भी हस्तांतरित किया जाता है। क्रेता को क्रय वस्तुओं का इच्छानुसार उपयोग करने का अधिकार होता है।
2. **विक्रय तथा दान या उपहार के अनुबंधों में अंतर :-** वस्तु विक्रय अनुबंध में विक्रेता माल को किसी अन्य व्यक्ति को मुद्रा मूल्य के लिए हस्तांतरित करता है अर्थात् विक्रय में प्रतिफल होना आवश्यक है। जबकि दान के अनुबंधों में वस्तुओं का स्वामित्व एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को किसी भी प्रकार के प्रतिफल के बिना ही हस्तांतरित किया जाता है।
3. **विक्रय तथा वस्तु विनिमय अनुबंध में अंतर :-** जब एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु दी जाती है तो 'वस्तु विनियम' कहते है। लेकिन जब वस्तु के बदले मुद्रा दी जाती है तो वह विक्रय होगा। अतः वस्तु विनियम विक्रय नहीं हो सकता। किन्तु जब सम्पत्ति या माल के हस्तांतरण पर प्रतिफल का कुछ भाग माल में और कुछ भाग मुद्रा में दिया जाता है तो वह विक्रय कहलाएगा।
4. **विक्रय एवं गिरवी के अनुबंधों में अंतर :-** वस्तु विक्रय अनुबंध में विक्रेता द्वारा क्रेता को माल का सामान्य स्वामित्व हस्तांतरित कर दिया जाता है, परन्तु गिरवी या बंधक अनुबंधों में बंधनकर्त्ता द्वारा बंधकदार को सम्पत्ति का केवल विशिष्ट स्वामित्व ही हस्तांतरित किया जाता है सम्पत्ति पर बंधनकर्त्ता का आत्यंतिक स्वामित्व बना रहता है। अर्थात् लिए गए ऋण की वापसी पर ऋणी का उसकी अचल सम्पत्ति वापिस लौटा दी जाती है।
5. **विक्रय अनुबंध तथा सेवा अनुबंध में अंतर :-** विक्रय अनुबंध में जहां अन्नतः माल क्रेता को सुपुर्द कर देना है, चाहे विक्रेता को उस माल के संदर्भ में कुछ श्रम लगाना शेष हो, वास्तव में विक्रय का अनुबंध है। परन्तु जहां श्रम तथा सेवा अधिक महत्वपूर्ण हो वहां सेवा का अनुबंध माना जाएगा, विक्रय का नहीं।
6. **विक्रय तथा किराया क्रय ठहराव में अंतर :-** किराया क्रय ठहराव एक प्रकार का निक्षेप अनुबंध ही होता है। इसमें माल के क्रेता को माल क्रय करने का विकल्प मिला होता है। किराया क्रय ठहराव में माल का स्वामित्व क्रेता को मूल्य के लिए निर्धारित किश्तों की अंतिम किश्त का भुगतान का दिए जाने पर ही हस्तांतरित किया जाता है। इसमें क्रेता को यह अवसर होता है कि वह चाहे जब मूल्य की किश्तों का भुगतान बंद करके अनुबंध का खंडन कर दे। क्रेता प्राप्त वस्तु को जब चाहे लौटा सकता है। किराया क्रय ठहराव में यद्यपि विक्रेता माल की सुपुर्दगी इच्छुक क्रेता को दे देता है। तथापि वह अंतिम किश्त को प्राप्त होने तक माल का स्वामित्व अपने पास ही रखता है। विक्रेता को क्रेता द्वारा एक ही किश्त की अदायती में त्रुटि किए जाने पर सम्पूर्ण माल को वापिस लेने का अधिकार होता है। अतः किराया क्रय ठहराव विक्रय का एक ऐसा अखंडनीय प्रस्ताव है जोकि वस्तुओं के इच्छुक क्रेता द्वारा शर्त की पूर्ति अर्थात् मूल्य के भुगतान के लिए दी जाने वाली सभी किश्तों के चुका देने के पश्चात विक्रय अनुबंध को रूप ले लेता है।

किराया क्रय पर माल लेने वाले व्यक्ति को समस्त किश्तों के भुगतान कर देने से पहले माल पर अपना किसी प्रकार का स्वामित्व प्रयुक्त करने का माल को बेचने या गिरवी रखने का कोई अधिकार नहीं होता। उसे केवल माल के अपने स्वाधीन होते हुसे उसके उपयोग करने का अधिकार प्राप्त होता है।

विक्रय अनुबंध वैध रूप से किस प्रकार उत्पन्न होता है।

धारा 3 के अनुसार या स्पष्ट है कि अनुबंध अधिनियम की वे व्यवस्थाएं जो वस्तु–विक्रय में भी लागू होती है। इस अधिनियम की धार 4 और 5 के अनुसार वैध विक्रय अनुबंध के लिए निम्नलिखित बातें होना आवश्यक है :–

1. एक पक्षकार की ओर से माल खरीदने या बेचने का प्रस्ताव होना चाहिए व दूसरे पक्षकार की ओर से इस प्रस्ताव की स्वीकृति होना चाहिए।
2. दोनों पक्षकारों में अनुबंध करने की क्षमता होनी चाहिए।
3. दोनो पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति होनी चाहिए।
4. माल होना चाहिए, जिससे स्वामित्व का हस्तांतरण मूल्य के बदले में होना है।
5. विक्रय अनुबंध की शर्तों के अनुसार माल की तत्काल सुपुर्दकी की जा सकती है या माल का तत्काल भुगतान भी किया जा सकता है। या दोनों ही तत्काल किए जा सकते हैं।

विक्रय अनुबंध की विषय सामग्री

माल प्रत्येक वस्तु विक्रय अनुबंध की विषय वस्तु है। माल के बिना विक्रय नहीं हो सकता।

माल का वर्गीकरण

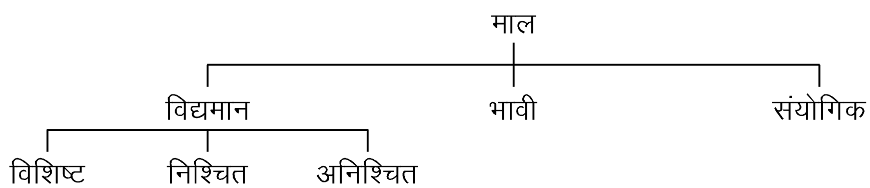

(1) **विद्यमान माल** :– विक्रय केवल विद्यमान माल का ही किया जा सकता है जोकि विक्रय अनुबंध के समय विक्रेता के अधिकार एवं स्वामित्व में है।

विद्यमान माल तीन प्रकार का होता है :–

(क) विशिष्ट माल :– वह माल है जोकि विक्रय अनुबंध करते समय पहचान लिया गया है।

(ख) निश्चित माल :– यह वह माल है जिसे विक्रय अनुबंध के बाद पहचाना व निश्चित किया गया है।

(ग) अनिश्चित माल :– ऐसी वस्तुएं जिनको विक्रय अनुबंध करते समय पहचाना या निश्चित न किया गया हो।

(2) **भावी माल** :– वह माल है जोकि विक्रय अनुबंध करते समय विक्रेता के अधिकार व स्वामित्व में नहीं है। ऐसी वस्तुओं का विक्रय संभव नहीं है इनका केवल विक्रय केवल विक्रय समझौता ही किया जा सकता है।

(3) **संयोगिम माल** :– जब किसी भावी माल के विक्रय का समझौता किया जाता है और विक्रेता द्वारा उस माल की प्राप्ति भविष्य में घटने वाली संभावित घटना पर निर्भर करती है। ऐसा माल संयोगिक माल है।

(4) **मूल्य का निर्धारण (Ascertainment of Price)** :– वस्तु विक्रय के संबंध में यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि बिना मूल्य के कोई विक्रय नहीं हो सकता। धारा 9 तथा 10 के अनुसार, विक्रय अनुबंध में मूल्य निर्धारण के लिए निम्नलिखित पांच विधियों में से कोई विधि अपनाई जा सकती है :–

1. अनुबंध द्वारा (By Contract) – विक्रय अनुबन्ध में पक्षकार आपसी ठहराव पर कोई भी मूल्य निश्चित कर सकते हैं तथा इस प्रकार निश्चित किया गया मूल्य ही देय होगा। न्यायालय मूल्य की पर्याप्तता अथवा अपर्याप्तता की जांच नहीं करता है।
2. पारस्परित व्यवहार द्वारा (By the Course of Mutual Dealings) – मूल्य पक्षकारों के पारस्परित व्यवहार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। यदि अनुबंध में कोई स्पष्ट मूल्य नहीं दिया गया है और न उसमें मूल्य निश्चित करने की कोई स्पष्ट रीति ही दी गई है, तो ऐसी दशा में पक्षकारों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा मूल्य का निर्धारण किया जा सकता है।
3. निश्चित रीति द्वारा बाद में (Left to be Fixed in Manner Agreed) – मूल्य किसी निश्चित रीति के अनुसार निर्धारित करने के लिए छोड़ा जा सकता है, जैसे जो मूल्य क्रेता देंगे वही दिया जायेगा।

4. उचित मूल्य (Reasonable Price) – यदि मूल्य का निर्धारण उपर्युक्त किसी भी प्रकार से नहीं किया गया है तो क्रेता विक्रेता को उचित मूल्य का भुगतान करेगा। उचित मूल्य क्या है, यह एक तथ्य संबंधी प्रश्न है जो प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

5. तीसरे पक्षकार द्वारा (By Third Party) – मूल्य का निर्धारण तीसरे पक्षकार के द्वारा निश्चित करने के लिये भी छोड़ा जा सकता है। परन्तु यदि ऐसा तीसरा पक्षकार बाद में मूल्य का निर्धारण करने में असमर्थ है अथवा निर्धारण नहीं करता, तो अनुबंध व्यर्थ माना जाएगा। परन्तु यदि माल अथवा उसका कोई भाग क्रेता को सुपुर्द कर दिया गया है और वह क्रेता द्वारा स्वीकार किया जा चुका है तो उसे उसका उचित मूल्य चुकाना पड़ेगा।

शर्ते तथा आश्वासन

(Conditions and Warranties) 18 (iii)

साधारणतया वस्तु–विक्रय के संबंध में 'क्रेता की सावधानी' का नियम लागू होता है। किन्तु बिक्री का प्रत्येक अनुबंध कुछ शर्तों एवं बंधनों के अधीन किया जाता है।

इस नियम का आशय यह है कि जब विक्रेता और क्रेता में किसी माल को बेचने या खरीदने का ठहराव होता है तो उस समय क्रेता को यह कर्त्तव्य होता है कि वह जिस माल को खरीदता है उसे खरीदने से पहले अच्छी तरह से देख ले। वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 12 (1) के अनुसार बंधन के दो रूप है :–

1. शर्त (Condition)
2. आशवासन (Warranty)

बंधन (Stipulation)

शर्त (Condition) आश्वासन (Warranty)

1. **शर्त** – {धारा 12 (2)} के अनुसार, "शर्त एक ऐसा बंधन है जो अनुबंध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है तथा जिसके भंग होने पर पक्षकारों को अनुबंध को समाप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है।" अतः यदि पक्षकारों के विचार बंधन आवश्यक है तो शर्त कहलाएगी।

2. **आश्वासन** – {धारा 12 (3)} के अनुसार, "आश्वासन उस बंधक या कथन को कहते हैं जो अनुबंध के मुख्य उद्देश्य के लिए समपार्श्विक (Colletral) है तथा जिसके पूरा न होने पर दूसरा पक्ष केवल हर्जाने की मांग कर सकता है। उसे अनुबंध समाप्त करने का अधिकार नहीं होता।

शर्त व आश्वासन की कसौटी - {धारा 12 (4)} :– विक्रय अनुबंध में कोई बंधन शर्त है या आश्वासन या बात प्रत्येक दशा में अनुबंध की बनावट पर निर्भर करती है कभी–कभी ऐसा भी होता है कि अनुबंध में जिसे आश्वासन समझा गया है वह वास्तव में शर्त होती है।

उदाहरण :– राम अपनी कार श्याम को यह कहकर बेचता है कि यह एक लिटर पेट्रोल में 15 कि.मी. जाती है बाद में श्याम को पता चलता है कि कार एक लिटर पैट्रोल में केवल 10 कि.मी. ही चलती है इस दशा में राम का कथन आश्वासन समझा जाएगा, शर्त नहीं, क्योंकि कार का 15 कि.मी. चलना अनुबंध की मुख्य बात नहीं थी, अतः आश्वासन भंग की दशा में श्याम, राम से हर्जाना प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत, यदि श्याम कार खरीदते समय राम से कहता है कि वह कार तभी खरीदेगा जब वह 1 लीटर में 15 कि.मी. चलेगी और खरीदने पर वह केवल 1 लीटर में 10 कि.मी. ही चलती है। इस दशा में कार का एक लिटर पेट्रोल में 15 कि.मी. चलेगी चलना अनुबंध की शर्त हो तथा इसका पूर्ण होना आवश्यक है। शर्त भंग होने की दशा में श्याम कार वापिस कर चुकाया गया मूल्य तथा हर्जाना राम से प्राप्त कर सकता है।

शर्त तथा आश्वासन में अंतर

(Distinction between Condition and Warranty)

1.	मुख्य उद्देश्य के प्रकृति	अनुबंध के मुख्य उद्देश्य के लिए शर्त आवश्यक होती है।	आश्वासन अनुबंध के मुख्य उद्देश्य के सम्पार्श्विक होता है।
2.	अनुबन्ध त्याग का अधिकार	शर्त–भंग होने पर निर्दोष पक्षकार को अनुबंध का त्याग करने का अधिकार होता है।	आश्वासन–भंग होने पर निर्दोष पक्षकार अनुबन्ध का त्याग नहीं कर सकता बल्कि केवल क्षति की पूर्ति करा सकता है।
3.	अनुबंध के निष्पादन से मुक्ति	शर्त–भंग होने पर निर्दोष पक्षकार अनुबन्ध को भंग हुआ समझकर अनुबंध के निष्पादन से मुक्ति पा जाता है तथा दोषी पक्षकार पर मुकदमा चलाकर क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी होता है।	आश्वासन–भंग होने पर निर्दोष पक्षकार पक्षकार अनुबंध के निष्पादन से मुक्त नहीं हो सकता है, लेकिन उसे क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार होता है।
4.	शर्त–भंग और आश्वासन–भंग	शर्त–भंग को आश्वासन–भंग माना जा सकता है। आश्वासन–भंग को शर्त भंग नहीं माना जा सकता। महत्वपूर्ण है।	इस प्रकार स्पष्ट है कि शर्त तथा आश्वासन का अन्तर अनुबन्ध–भंग होने पर पक्षकारों के अधिकारों का निश्चय करने के लिए

शर्त को आश्वासन मानना

निम्नलिखित दशाओं में शर्त को आश्वासन माना जाता है :–

1. **जब शर्त की पूर्ति विक्रेता को करनी हो** :– {धारा 13 (1)} के अनुसार जहां विक्रय के अनुबंध में ऐसी शर्त है जिसका पालन विक्रेता को करना है तथा विक्रेता उसका पालन नहीं करता, तो ऐसी दशा में क्रेता इस शर्त पर त्याग कर सकता है। या उस शर्त को भंग न मानकर आश्वासन भंग मान सकता है। परन्तु एक बार शर्त का त्याग करने के बाद उसकी पूर्ति के लिए विक्रेता को बाध्य नहीं किया जा सकता।
2. **जब विक्रय अनुबंध अलग-अलग होने योग्य न हो** :– {धारा 13 (2)} जब विक्रय अनुबंध अविभाज्य हो, तो क्रेता ने माल को या मालक के किसी अंश को स्वीकार कर लिया है तथा जिसका स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो चुका है, तो विपरीत आशय का कोई स्पष्ट या गर्भित अनुबंध न होने पर, विक्रेता द्वारा किसी शर्त भंग को आश्वासन भंग ही माना जा सकता है।

गर्भित शर्ते तथा आश्वासन

किसी स्पष्ट अनुबंध के अभाव में कुछ शर्ते व आश्वासन वस्तु विक्रय अनुबंध के साथ ही निहित होते है, अर्थात् उनका होना कानून द्वारा मान लिया जाता है तथा वे प्रत्येक विक्रय अनुबंध पर लागू होती है।

गर्भित शर्ते (Implied Conditions) :

1. {धारा 14 (1)} के अनुसार प्रत्येक विक्रय अनुबंध में, जब तक कि अनुबंध की परिस्थितियों में कोई विपरीत आशय न होता है, यह एक गर्भित शर्त है कि (*i*) विक्रय की दशा में विक्रेता को माल बेचने का अधिकार है तथा (*ii*) विक्रय के ठहराव में विक्रेता को प्राप्त स्वामित्व हस्तांतरण के समय माल बेचने का अधिकार होगा। परन्तु यह जरूरी नहीं कि विक्रेता माल का स्वामी हो विक्रेता का स्वामित्व दूषित निकल आए तो क्रेता माल अस्वीकार कर सकता है।
2. वर्णन द्वारा विक्रय :– धारा 15 के अनुसार जहां वर्णन द्वारा वस्तु विक्रय अनुबंध हुआ है वहां पर यह गर्भित शर्त है कि माल वर्णन के अनुसार ही होना चाहिए। यदि माल वर्णन के अनुसार नहीं है तो क्रेता माल स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है।

3. **गुण अथवा उपयुक्तता संबंधी शर्त** :– धारा 16 (1) के अनुसार वस्तु विक्रय अनुबंध में माल की किस्म या उसकी उपयुक्तता के विषय में कोई गर्भित शर्त नहीं होती है क्योंकि ऐसी दशा में 'क्रेता की सावधानी' का नियम लागू होता है। यदि वस्तु खरीदने के बाद क्रेता को पता चलता है कि वस्तु अच्छी किस्म की नहीं है तो विक्रेता उत्तरदायी नहीं होगा।

   निम्न परिस्थितियों में गर्भित आश्वासन होगा :–

   (*i*) क्रेता द्वारा उस विशेष उद्देश्य को विक्रेता को बता देना चाहिए जिस उद्देश्य से माल खरीदा जा रहा हो।

   (*ii*) क्रेता विक्रेता की बुद्धि, कुशलता तथा विवेक पर निर्भर करता हो।

   (*iii*) माल का ऐसा होना आवश्यक है जो विक्रेता द्वारा साधारणतया उसी प्रकार का माल बेचा जाता है।

4. **वस्तु की व्यापारिक योग्यता संबंधी शर्त** :– धारा 16 (2) जहां माल वर्णन के आधार पर ऐसे विक्रेता से खरीदा जाए जो साधारणतः उसी प्रकार का माल बेचता है, तो ऐसी दशा में यह गर्भित शर्त है कि माल व्यापार–योग्य होगा। माल के व्यापार योग्य होने से तात्पर्य यह है कि माल को सामान्य परिस्थितियों में तुरन्त बेचा जा सकता है।

5. **नमूने द्वारा विक्रय** :– धारा 17 के अनुसार, नमूने के द्वारा विक्रय के संबंध में निम्न गर्भित शर्ते होती है :–

   (*a*) सम्पूर्ण माल का गुण व किस्म नमूने के समान होना।

   (*b*) क्रेता को सम्पूर्ण माल को नमूने से मिलान करने का उचित अवसर प्राप्त होना।

6. **दोषरहित होने संबंधी शर्त** :– खाने–पीने की वस्तुओं के संबंध में यह गर्भित शर्त होती है कि वस्तु दोषरहित हो, अर्थात यदि खाने–पीने की वस्तु से क्रेता को हानि होती है तो यह शर्त भंग मानी जाती है।

गर्भित आश्वासन
(Implied Warranty)

वस्तु विक्रय अनुबंधों में निम्न गर्भित आश्वासन होते हैं :–

1. **माल पर शान्तिपूर्वक अधिकार एवं उपयोग का आश्वासन** :– धारा 14 (ब) के अनुसार प्रत्येक वस्तु विक्रय अनुबंध में यह गर्भित आश्वासन होता है कि क्रेता उस वस्तु का शांति पूर्ण ढंग से उपयोग कर सकता है। यदि उसके शांतिपूर्ण उपयोग में कोई रुकावट आती है तो विक्रेता से क्षतिपूर्ति करा सकता है। यदि विक्रेता के दोषपूर्ण अधिकार के कारण क्रेता को कुछ हानि होती है तो वह उसे विक्रेता से पूरा करा सकता है।

2. **वस्तुओं के भार मुक्त होने का आश्वासन** :– प्रत्येक वस्तु विक्रय अनुबंध का यह गर्भित आश्वासन होता है कि वस्तु भार मुक्त है। यदि वस्तु भार–युक्त है और उसकी सूचना क्रेता को नहीं दी गई है तो इस कारण से क्रेता को होने वाली किसी भी हानि के लिए विक्रेता उत्तरदायी होगा। धारा 14 (स)।

3. **विशेष सावधानी का आश्वासन** :– यदि किसी वस्तु को प्रयोग करने में किसी विशेष सावधानी को रखने की आवश्यकता होती है तो विक्रेता का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसी विशेष सावधनियों से क्रेता को अवगत करा दे। यदि उसने ऐसी जानकारी क्रेता को नहीं दी है व क्रेता को कोई हानि होती है तो उसके लिए विक्रेता उत्तरदायी होगा।

क्रेता की सावधानी का सिद्धान्त

(Buyer Beware)

''क्रेता सावधान रहें नियम के अनुसार क्रेता का यह कर्त्तव्य है कि माल खरीदते समय वह माल को अच्छी प्रकार से देखभाल ले कि वह उपयुक्त किस्म का है या नहीं तथा वह उसके उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा अथवा नहीं। यदि माल को खरीदने के पश्चात माल में किसी प्रकार का दोष निकल आता है या उसके उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त रहता है तो उसके लिए विक्रेता उत्तरदायी होगा। क्रेता का यह कर्त्तव्य है कि वह माल खरीदते समय अपनी चतुराई व विवेक से काम ले।

यदि इस सिद्धान्त का कठोरता से पालन किया जाए तो अनेक क्रेताओं को कठिनाई का सामना करना होगा। अतः ऐसा क्रेताओं की रक्षा हेतु इस सिद्धान्त के कुछ अपवाद धारा 16 में दिए गए है।

1. **क्रेता द्वारा आवश्यकता बता देना** :– यदि क्रेता ने विक्रेता को अपनी आवश्यकता या माल खरीदने का उद्देश्य बता दिया है तथा वह विक्रेता की योग्यता व चातुर्य पर निर्भर करता है तो विक्रेता का यह कर्त्तव्य है कि जो वस्तु बेची जाए वह क्रेता के उद्देश्य को पूरा करने के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त रहे। यदि वह इस उद्देश्य के लिए अनुरूप माल क्रेता को नहीं देता है तो उसके लिए विक्रेता वस्तु वापिस लेने व उसका मूल्य वापिस करने के लिए बाध्य होगा।

2. **विशिष्ट विक्रेता से माल खरीदना** :– यदि माल किसी ऐसे विक्रेता से खरीदा जाता है कि वे केवल उसी प्रकार की वस्तुओं का विक्रय करता है तो ऐसी दशा में यह गर्भित शर्त होती है कि वस्तु की किस्म व्यापार योग्य होगी। यदि वस्तु व्यापार योग्य नहीं है तो क्रेता की सावधानी का नियम लागू नहीं होगा। विक्रेता, वस्तु के व्यापार योग्य न होने के कारण उत्तरदायी होगा।

3. **प्रर्दशन द्वारा विक्रय** :– यदि माल के विक्रय के लिए विक्रेता द्वारा वस्तु का प्रदर्शन किया जाता है तो ऐसे अनुबंधों में यह गर्भित शर्त होती है कि क्रय किया जाने वाला माल प्रदर्शित माल जैसा होगा। यदि माल प्रदर्शित माल से मेल नहीं खाता है तो उसके लिए विक्रेता ही उत्तरदायी होगा व क्रेता की सावधानी का नियम लागू नहीं होगा।

4. **कपट द्वारा विक्रय** :– यदि वस्तु में कोई दोष इस प्रकार का है कि साधारण जांच से पता नहीं चलता है व विक्रेता उसके दोष क्रेता को नहीं बताता है तो यह कपट द्वारा विक्रय माना जाएगा और उसके लिए विक्रेता उत्तरदायी होगा।

5. **व्यापारिक नीति** :– व्यापारिक प्रथा के अनुसार भी माल के गुण या उपयुक्तता के विषय में कोई गर्भित शर्त हो सकती है। अतः ऐसी रीति के विरूद्ध कार्य करने पर विक्रेता की उत्तरदायी होगा, जब तक कि उसके विरूद्ध स्पष्ट अनुबंध न हो।

क्रेता तथा विक्रेता के बीच स्वामित्व तथा अधिकार का हस्तांतरण {धारा 18-30}

वास्तव में वस्तु–विक्रय एक निश्चित मूल्य के बदले क्रेता को माल का स्वामित्व हस्तांतरित करता है अतः माल के स्वामित्व के हस्तांतरण के बिना कोई भी वस्तु विक्रय का अनुबंध नहीं हो सकता। विक्रय के अनुबंध का इस प्रकार सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि इसमें माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को पहुंच जाता है। यह प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि माल के स्वामित्व का हस्तांतरण कब होता है क्योंकि इस प्रश्न के साथ पक्षकारों के अनेक अधिकार तथा दायित्व जुड़े होते हैं।

स्वामित्व के हस्तांतरण का अर्थ :– स्वामित्व के हस्तांतरण से आशय वस्तु में निहित स्वामित्व का क्रेता को परितर्वन हो जाना है जिसके द्वारा वस्तु का क्रेता वस्तु का प्रयोग अपनी इच्छानुसार कर सकता है तथा उसके इस अधिकार पर किसी भी प्रकार की रोक नहीं लगाई जा सकती।

विक्रेता द्वारा क्रेता को स्वामित्व का हस्तांतरण निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण है :–

1. **जोखिम स्वामित्व के साथ-साथ रहती है** :– कानून का यह आधारभूत नियम है कि जोखिम व स्वामित्व संग–संग रहते है, भले ही माल की सुपुर्दगी दी गई हो या नहीं। माल पर स्वामित्व जिस व्यक्ति का होगा उसे ही जोखिम सहन करना होगा चाहे वस्तु पर कब्जा क्रेता का हो या विक्रेता या अथवा चाहे उसका मूल्य चुका दिया गया है अथवा नहीं। इसके विपरीत यदि क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने से पहले ही विक्रेता दिवालिया हो जाए तो उसका राजकीय प्रापक भी उस माल पर कोई दावा नहीं कर सकता, क्योंकि माल का स्वामित्व पहले की क्रेता के पास पहुंच चुका है।

2. **तीसरे पक्षकार के विरूद्ध कार्यवाही** :– जब माल को किसी ततीय पक्षकार द्वारा कोई हानि पहुंचती है तो ततीय पक्षकार पर कार्यवाही करने का अधिकार केवल माल के स्वामी के पास होता है। अतः यह जानना आवश्यक होता है कि माल का स्वामी उस समय कौन है।

3. **क्रेता या विक्रेता के दिवालिया होने पर** :– क्रेता या विक्रेता के दिवालिया होने की दशा में सरकारी रिसीवर माल को अपने अधिकार में ले सकता है या नहीं ? यह इस बात पर निर्भर करेगा कि माल का स्वामित्व विक्रेता का है या क्रेता का।

4. **मूल्य के लिए दावा** :– विक्रेता क्रेता पर मूल्य के लिए दावा तभी कर सकता है जबकि माल के स्वामित्व का हस्तांतरण हो चुका है। अतः जब तक माल के स्वामित्व का हस्तांतरण न हुआ हो, मूल्य के लिए दावा नहीं किया जा सकता।

स्वामित्व हस्तांतरण संबंधी नियम

(Rules Regarding Transfer of Ownership)

प्रश्न यह उठता है कि माल के स्वामित्व का हस्तांतरण किस समय माना जाएगा क्योंकि स्वामित्व के साथ–साथ जोखिम भी चलती है। यदि अनुबन्ध में स्वामित्व के हस्तांतरण के संबंध में स्पष्ट रूप से कुछ कहा गया है तो स्वामित्व का हस्तांतरण अनुबंध के अनुसार होगा अन्यथा हस्तांतरण का समय वस्तु विक्रय अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार तय किया जाएगा। इस आशय से माल को 3 श्रेणियों में विभाजित कया गया है तथा प्रत्येक के स्वामित्व के हस्तांतरण संबंधी नियम बताए गऐ हैं –

(a) निश्चित माल (Ascertained Goods) के स्वामित्व का हस्तांतरण।

(b) अनिश्चित माल (Unascertained Goods) के स्वामित्व का हस्तांतरण।

(c) अनुमोदन के लिए अथवा वापिस की शर्त पर भेजे हुए माल (Unascertained Goods) के स्वामित्व का हस्तांतरण।

(a) **निश्चित माल के स्वामित्व के हस्तांतरण (Passing of Ownership in Ascertained Goods)** – निश्चित माल का आशय ऐसे माल से है जो कि निश्चित तथा विशिष्ट है और जिसकी पहचान अनुबंध के पक्षकारों के द्वारा विक्रय अनुबंध के समय ही स्पष्ट रूप से समझ ली गई है। निश्चित वस्तु की दशा में वस्तु के स्वामित्व का हस्तांतरण, पक्षों की इच्छा पर निर्भर रहता है। यदि पक्षकारों की इच्छा का ज्ञान नहीं हो पाता है तो निम्नलिखित नियम लागू होते हैं।

(1) **निश्चित माल सुपुर्दगी की दशा में (*Ascertained Goods in Deliverable State*)** – यदि विक्रय अनुबंध किसी ऐसे निश्चित माल के लिए है जो सुपुर्दगी योग्य स्थिति में है, तो उसका स्वामित्व क्रेता को उसी समय हस्तांतरित हो जाता है जिस समय अनुबंध किया गया है, यदि वह अनुबंध शर्त रहित है। यह बात कि मूल्य चुकाने का समय अथवा माल की सुपुर्दगी का समय अथवा दोनों स्थगित कर दिए गए है, कोई प्रभाव नहीं रखती।

उदाहरण : रमेश, सतीश को एक रेडियो सैट बेचने का अनुबंध करता है तो रेडियों का स्वामित्व उसी समय हस्तांतरित माना जाएगा। यदि सतीश उसे कन्हैया की दुकान पर फल ले जाने के लिए छोड़ देता है और वह किसी अप्राकृतिक घटना के कारण नष्ट हो जाता है तो हानि क्रेता की ही होगी तथा सतीश को उसका मूल्य चुकाना होगा।

(2) **निश्चित माल सुपुर्दकी देने योग्य नहीं होता (*Ascertained Goods in Undeliverable State*)** – यदि विक्रय अनुबंध किसी ऐसे निश्चित माल के लिए है जो सुपुर्दगी योग्य स्थिति में नहीं है और सुपुर्दगी योग्य स्थिति में लाने के लिए विक्रेता को कुछ करना शेष है, तो स्वामित्व, का हस्तांतरण उस समय तक न होगा जब तक कि ऐसा काम न कर दिया जाए और उसकी सूचना क्रेता को न हो जाए। {धारा 21}

उदाहरण – 'अ' ने एक कुर्सी खरीदने का अनुबंध किया जिसका बुनना अभी बाकी है तो उसके स्वामित्व का हस्तांतरण उस समय होगा जबकि वह बुनकर तैयार हो जाएगी और इसकी सूचना 'अ' को दे दी जाएगी।

(3) **निश्चित माल सुपुर्दगी योग्य दशा में हो और विक्रेता को मूल्य निश्चित करना हो (*Ascertained Goods in a Deliverable State but the Seller has to do anything thereto in order to ascertain price*)** – जब किसी ऐसे निश्चित माल के विक्रय का अनुबंध किया गया हो, तो सुपुर्दगी योग्य दशा में तो है, परन्तु विक्रेता को, मूल्य निर्धारित करने के लिए, कोई कार्य करना हो जैसे तोलना, नापना आदि तो स्वामित्व का हस्तांतरण उस समय होगा जबकि वह कार्य हो जाए और उसकी सूचना क्रेता को दे दी जाए।

उदाहरण – राम, श्याम से कुछ गेहूँ खरीदने का अनुबंध करता है परन्तु उसकी कीमत निर्धारित करने के लिए उन्हें अभी तोलना बाकी है। इस दशा में स्वामित्व का हस्तांतरण उस समय होगा जबकि वह कार्य हो जाए और उसकी सूचना क्रेता राम को दे दी जाए। {धारा 21}

(b) **अनिश्चित माल की दशा में स्वामित्व का हस्तांतरण (Passing of Property in Unascertained Goods)** – अनिश्चित माल से आशय ऐसे माल से है जो विक्रय अनुबन्ध के समय निश्चित न किया गया हो। ऐसे माल के स्वामित्व के हस्तांतरण के संबंध में निम्नलिखित नियम लागू होते है –

(1) **माल का निश्चित किया जाना (*Goods must be ascertained*)** – अनिश्चित माल की दशा में क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तांतरण उस समय तक नहीं होगा जब तक कि माल निश्चित न हो जाए अर्थात् उसको पहचान न लिया जाए। {धारा 18}

(2) **अनिश्चित माल का विक्रेता तथा नियोजन होने की दशा में (*Sale of Unascertained goods and Appropriation*)** – यदि अनुबन्ध वर्णन द्वारा किसी अनिश्चित अथवा भावी माल के विक्रय के लिए किया गया है और जब इस वर्णन का माल जो कि सुपुर्दगी योग्य स्थिति में है, या तो विक्रेता द्वारा क्रेता की सहमति से या क्रेता द्वारा विक्रेता की सहमति से, अनुबंध के अनुसार बिना किसी शर्त के कुल माल से अलग कर लिया जाता है, तथा इसकी सूचना क्रेता को मिल जाती है तो ऐसा कर देने से ही माल ही 'नियोजन' कहते है। {धारा 23 (1)}

उदाहरण – विक्रेता गोदा में रखी 500 गेहूँ की बोरियों में 20 बोरी 'ब' को बेचने का अनुबंध करता है। ऐसी दशा में स्वामित्व का हस्तांतरण उस समय माना जाएगा जबकि 20 बोरी गेहूं गोदा में रखी 500 बोरियों से अलग कर दी गई हैं और उसकी सूचना क्रेता को मिल जाती है।

(3) **वाहक को सुपुर्दगी (*Delivery to Carrier*)** – अनुबंध के अनुसार विक्रेता क्रेता को अथवा किसी वाहक को अथवा किसी अन्य निक्षेपगहीता को इस उद्देश्य के माल सौंपता है कि वह उसे क्रेता तक पहुँचा दे और वह अपना अधिकार सुरक्षित नहीं रखता, तो यह माना जाता है कि उसने अनुबंध के अनुसार 'बिना शर्त माल का नियोजन' कर दिया और ऐसा करने से माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो जाता है। किन्तु जब विक्रेता वाहक को माल सौंपने के बाद भी उस पर अपना अधिकार सुरक्षित रखता है तो वाहक को माल देते समय स्वामित्व का हस्तांतरण नहीं होता है।

जब विक्रेता रेलवे रसीद या बिल अपने अथवा अपने एजेंट के नाम बनवाता है तो यह माना जाता है कि उसने माल पर अपना अधिकार सुरक्षित रखा है। ऐसी दशा में स्वामित्व का हस्तांतरण उस समय होगा जबकि विक्रेता माल पर अपना अधिकार छोड़ देता है। {धारा 23 (2)}

अनुमोदन के लिए अथवा वापिसी की शर्त पर भेजा हुआ माल (Goods sent on Approval or on Sale or Return) – जब पसन्द करने के लिए या 'बिक्री या वापिसी' के अन्तर्गत या अन्य समान शर्तों पर क्रेता को माल की सुपुर्दगी दे दी जाती है, तो माल के स्वामित्व का क्रेता को हस्तांतरण निम्नलिखित प्रकार से होता है –

(1) जब क्रेता अपनी पसन्द या स्वीकृति विक्रेता को स्पष्ट सूचित कर देता है या कोई ऐसा कार्य करता है जिससे प्रकट होता हो कि उसने माल स्वीकार कर लिया है तो स्वामित्व उसी समय हस्तांतरित हो जाता है। {धारा 24 (1)}

उदाहरण – 'अ' ने कुछ आभूषण 'ब' से पसन्द करने के लिए या 'विक्रय या वापसी' के अन्तर्गत प्राप्त किए। बाद में 'अ' ने उन आभूषणों को 'स' के पास गिरवी रख दिया। इस दशा में 'अ' ने अपने व्यवहार से स्पष्ट कर दिया है कि उसने आभूषण स्वीकार कर दिए हैं, अतः आभूषण गिरवी रखते ही उनका स्वामित्व 'अ' को हस्तांतरित हो गया।

क्रेता द्वारा माल का गिरवी रखना अथवा उसको बेचना अथवा विक्रय या वापसी की शर्त पर किसी अन्य को हस्तांतरित करना अथवा किराया क्रय पद्धति पर बेचना आदि इस प्रकार के कार्य है जिसमें क्रेता की स्वीकृति मान ली जाती है।

(2) जब क्रेता अपनी पसन्द या स्वीकृति विक्रेता को सूचित या प्रकट नहीं करता, किन्तु अस्वीकृति की सूचना दिए बिना ही माल को अपने पास रखे रहता है, तो यदि माल को वापस करने के लिए कोई समय निश्चित किया गया है तब उस समय की समाप्ति पर, तथा यदि कोई समय निश्चित नहीं किया है तब उचित समय (Reasonable Time) की समाप्ति पर, माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो जाता है। उचित अवधि क्या होती है, यह एक तथ्य का प्रश्न है जो कि विशेष परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

उदाहरण – सीता एक रेडियो विक्रेता से 'विक्रय या वापसी' के अन्तर्गत इस शर्त पर लाती है कि पसन्द न आने पर रेडियो 7 दिन तक वापस कर दिया जाएगा। सीता इस अवधि के भीतर रेडियों स्वीकार करने की सूचना

नहीं देती तथा 7 दिन के बाद रेडियो अपने पास रखती है। इस दशा में 7 दिन की अवधि समाप्त होने पर रेडियों का स्वामित्व सीता को हस्तांतरित हो जाएगा।

यदि एक निश्चित अवधि के समाप्त होने से पूर्व तथा क्रेता द्वारा स्वीकृति देने से पहले की माल नष्ट हो जाता है, तो इस हानि के लिए विक्रेता उत्तरदायी होता है, क्योंकि तब तक विक्रेता ही माल का स्वामी होता है। उपरोक्त उदाहरण में यदि 7 दिन से पहले ही रेडियों क्षतिग्रस्त हो जाता है तो सीता मूल्य चुकाने के लिए बाध्य नहीं होगी।

अस्वामियों द्वारा स्वामित्व का हस्तांतरण (Transfer of Title by Non-owners)

वस्तु विक्रय अनुबंध में एक गर्भित शर्त यह भी होती है कि विक्रेता को उस माल की स्वामित्व अधिकार प्राप्त हो, अर्थात वस्तु विक्रय अनुबंधों में यह मान लिया जाता है कि माल का विक्रेता माल का स्वामी है यह स्वामी की ओर से उसे माल बेचने का अधिकार प्राप्त है। परन्तु कभी–कभी ऐसा भी होता है कि माल का विक्रेता न तो माल का स्वामी होता है और न ही उसे स्वामी की ओर से माल बेचने का अधिकार प्राप्त होता है जैसे विक्रेता द्वारा चोरी का माल बेचना। ऐसी दशा में यह कठिनाई उत्पन्न होती है कौन सा पक्ष हानि बर्दास्त करे – दोषी विक्रेता अथवा निर्दोष क्रेता (यदि उसने पूर्ण मूल्य के बदले तथा सद्भावना से माल खरीदा है) यह वस्तु का मूल स्वामी। ऐसी परिस्थिति में यदि दोषी विक्रेता हानि बर्दाश्त करने की स्थिति में है तब तो कोई विशेष कठिनाई है लेकिन यदि वह इंकार कर दे तो क्या स्थिति होगी, यह स्थिति राजनियम में कुछ नियमों द्वारा स्पष्ट की गई है।

वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 27 के अनुसार यदि इस अधिनियम के प्रावधान व अन्य समकालीन विधानों के अनुसार जब माल न तो स्वामी द्वारा ही बेचा गया हो और न ही विक्रेता को स्वामी की सहमति अथवा माल बेचने का अधिकार प्राप्त हो, तो माल पर क्रेता को विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकर प्राप्त नहीं होता है, चाहे क्रेता ने वस्तुओं का क्रय पूर्ण सद्भाव से व पूर्ण मूल्य के बदले ही क्यों न किया हो। यदि विक्रेता का अधिकार दूषित है अथवा सीमित है तो क्रेता का अधिकार भी उस वस्तु पर दूषित अथवा सीमित ही माना जायेगा। इसके विपरीत यदि वस्तु का विक्रेता का अधिकार अच्छा है, तो क्रेता को भी अच्छा अधिकार प्राप्त होगा।

उपरोक्त नियम इस सिद्धान्त पर आधारित है कि सामान्यतः कोई भी व्यक्ति व वस्तु नहीं दे सकता जो कि उसने अधिकार में नहीं है। इस संबंध में एक लेटिन मुहावरा है – Memo dat quod non habet इसका अर्थ भी यही है कि 'कोई भी वह नहीं दे सकता जो उसके अधिकार में नहीं है।' अतः ऐसी वस्तु जिसे बेचने का अधिकार विक्रेता को नहीं है विक्रेता द्वारा नहीं बेची जा सकती। विक्रेता के स्वत्वाधिकार से ही क्रेता के स्वत्व–अधिकार का निर्णय होता है। अतः क्रेता को ठीक वैसा ही स्वत्व अधिकार प्राप्त होगा जैसे कि विक्रेता का वस्तु की बिक्री करते समय था। क्रेता किसी भी दशा में अच्छा अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। यदि विक्रेता चोरी की वस्तु बेचता है तो क्रेता भी चोर ही माना जाएगा चाहे उसने सद्भावना से ही कार्य क्यों न किया हो।

यह नियम माल के वास्तविक स्वामी की रक्षा करता है तथा निर्दोष क्रेता को हानि पहुँचाता है लेकिन सामाजिक न्याय की दष्टि से यह नियम आवश्यक है।

नियम के अपवाद {धारा 26-30}

सामान्य नियम यह है कि विक्रेता क्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता लेकिन इस नियम के कुछ अपवाद है जो इस प्रकार हैं :–

1. **अवरोध द्वारा स्वामित्व (Title by Estoppel)** – यदि माल का वास्तविक स्वामी अपने आचरण द्वारा क्रेता को यह विश्वास दिलाता है कि विक्रेता को उसकी ओर से माल बेचने का अधिकार है तथा क्रेता को ऐसा विश्वास दिलाकर वस्तु खरीदने के लिए प्रेरित करता है तो बाद में वस्तु का स्वामी यह नही कह सकता कि विक्रेता को माल बेचने का अधिकार नहीं था। क्रेता का उस वस्तु पर विक्रेता से अच्छा अधिकार होगा। उदाहरणार्थ यदि 'क' की उपस्थिति में 'ख' एक घोड़े का विक्रय 'ग' को करने का अनुबंध करता है और घोड़ों का वास्तविक स्वामी 'क' मौन रहता है तो 'क' का यह आचरण 'ग' को यह विश्वास करने को प्रेरित करता है कि 'ख' ही घोड़े का वास्तविक स्वामी है। अतः 'क' यह नहीं कह सकता कि 'ख' को वस्तु बचने का अधिकार नहीं था। ऐसी स्थिति में ग का घोड़े का स्वामित्व अधिकार 'ख' से श्रेष्ठ होगा।

2. **व्यापारिक प्रतिनिधि द्वारा विक्रय (Sale by Mercantile Agent)** :– धारा 27 के अनुसार यदि किसी एजेण्ट द्वारा उसके पास रखा हुआ प्रधान का माल बेच दिया जाता है तो सद्विश्वास में खरीदने वाले क्रेता को अच्छा स्वत्व प्राप्त हो जाता है, चाहे एजेण्ट को उसके विक्रय का पूर्ण अधिकार प्राप्त न था। यदि एजेण्ट ने ऐसा माल व्यापार की साधारण प्रगति में बेचा है। उदाहरण के लिए प्रधान ने एक निर्धारित अवधि के बाद मालिक विक्रय का अधिकार एजेण्ट को दिया है और एजेंट उससे पूर्व माल बेच दे तो अनाधिकृत रूप से माल बेचने पर भी क्रेता को एजेंट से अच्छा अधिकार प्राप्त होगा।
3. **संयुक्त स्वामियों में से किसी एक द्वारा माल का विक्रय (Sale by one of the joint owners)** :– धारा 28 के अनुसार यदि किसी माल के संयुक्त स्वामियों में से किसी एक से कोई क्रेता कोई वस्तु सद्विश्वास से तथा यह न जानते हुए कि विक्रेता को माल बेचने का अधिकार प्राप्त नहीं है, खरीद लेता है कि उसे वस्तु पर वैध स्वामित्व प्राप्त हो जाता है।
4. **ऐसे व्यक्ति द्वारा विक्रय जिनके कब्जे में किसी स्थानीय अनुबंध के अधीन माल है (Sale by a person in possession under a Voidable contract)** :– धारा 29 के अनुसार व्यर्थनीय अनुबंध वे हैं जो पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर निरस्त किए जा सकते हैं जो पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर निरस्त किए जा सकते हैं। किन्तु यदि पीड़ित पक्षकार द्वारा निरस्त किए जाने से पूर्व ही दूसरे पक्षकार ऐसे अनुबंध के अधीन प्राप्त माल किसी क्रेता को बेच देता है तो क्रेता को अच्छा अधिकार मिल जाता है। उदाहरण – 'क' एक मोटर साइकिल 'ख' पर अनुचित प्रभाव डालकर खरीद लेता है। पीड़ित पक्षकार 'ख' के अनुबंध निरस्त करने से पूर्व 'क' उस मोटर साइकिल के तीसरे पक्षकार 'ग' को बेच देता है। यहां 'ग' को अच्छा अधिकार प्राप्त होगा।
5. **विक्रय के बाद उसी माल का विक्रेता द्वारा विक्रय (Sale by a seller in possession of goods after sale)** :– धारा 30 (1) के अनुसार यदि विक्रेता ने कुछ समय रखने के लिए ऐसा माल छोड़ दिया है जिसकी बिक्री हो चुकी हो और ऐसा माल विक्रेता किसी तीसरे पक्षकार को पुनः बेच देता है तो यह तीसरा पक्षकार अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेता है यदि वह माल को सद्विश्वास सहित यथा पूर्व विक्रय के प्रति अनभिज्ञता से खरीदता है।
6. **माल पर कब्जा रखने वाले क्रेता द्वारा विक्रय (Sale by a buyer in possession of goods)** :– धारा 30 (2) के अनुसार यदि विक्रय के पूर्व की माल उसके स्वामी की सहमति से किसी क्रेता के पास खड़ा है तो ऐसा क्रेता उस माल को तीसरे पक्षकार को बेच देता है तो वह तीसरा पक्षकार माल के संबंध में अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेता है। आवश्यकता इस बात की है कि उसने माल सद्विश्वास से ग्रहण किया होना चाहिए और उसे विक्रेता के स्वामित्व दोष का पता नहीं होना चाहिए।
7. **अदत्त विक्रेता द्वारा विक्रय (Sale by an unpaid seller)** :– धारा 54 के अनुसार एक अदत्त विक्रेता द्वारा पूर्वाधिकार अथवा मार्ग में माल को रोकने के अधिकार को प्रयोग करने के बाद वस्तुओं को यदि पुनः विक्रय कर दिया जाता है तो उसका क्रेता विक्रेता से अच्छा अधिकार प्राप्त होगा।

   विक्रय अनुबंध का निष्पादन (धारा 31-44) धारा (31)–विक्रय अनुबंध के निष्पादन में यह नितांत आवश्यक है कि क्रेता तथा विक्रेता दोनों अपने–अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करें। दोनों में से कोई कभी ऐसा कार्य न करें जो कि उसके अधिकार की सीमा से बाहर हो। दोनों पक्षकारों द्वारा दायित्वों को निभा देना ही विक्रय अनुबंध का निभा देना ही विक्रय अनुबंध का निष्पादन है।

भुगतान तथा सुपुर्दगी एक साथ ही पूरी की जाने वाली शर्ते (Payment and delivery concurrent conditions) :– धारा 32 के अनुसार जब तक कि कोई अन्य बातें तय न हो गई हो माल की सुपुर्दगी तथा मूल्य के भुगतान की दोनों शर्तों को एक साथ पूरा किया जाना चाहिए विक्रेता को मूल्य के बदले क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने के लिए तैयार व इच्छुक होना चाहिए और क्रेता को माल का अधिकार प्राप्त करने के बदले में मूल्य का भुगतान करने के लिए तैयार व इच्छुक होना चाहिए। इस प्रकार माल की सुपुर्दगी देने का उत्तरदायित्व विक्रेता का होता है तथा माल के मूल्य का भुगतान करने का उत्तरदायित्व क्रेता का होता है।

माल की सुपुर्दगी

(Delivery of Goods)

अधिनियम की धारा 2(2) के अनुसार, ''सुपुर्दगी का अर्थ एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक अधिकार का हस्तांतरण करना होता है।''

सुपुर्दगी के फलस्वरूप माल क्रेता के अधिकार में आ जाता है। सुपुर्दगी के लिए यह आवश्यक है कि माल ऐसी स्थिति में हो जिससे कि स्वयं क्रेता या उसका कोई प्रतिनिधि उस माल को अपने नियंत्रण में रख सकें।

यहाँ माल से तात्पर्य उस माल से है जिसके लिए अनुबंध किया गया है। अर्थात यदि बिक्री का अनुबंध किसी वर्तमान माल के लिए किया गया है तो विक्रेता उसके स्थान पर उसी आकार–प्रकार का अन्य माल सुपुर्दगी के लिए भेजकर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता।

सुपुर्दगी के भेद (Kinds/Types/Modes of Delivery) :– सुपुर्दगी साधारणता निम्न प्रकार की होती है :–

1. वास्तविक सुपुर्दगी (Kinds/Type/Modes of Delivery)
2. सांकेतिक सुपुर्दगी (Symbolic Delivery)
3. रचनात्मक सुपुर्दगी (Constructive Delivery)

1. **वास्तविक सुपुर्दगी** :– जब समान विक्रेता द्वारा क्रेता को या उसे अधिकृत एजेंट को वास्तव में सुपुर्द कर दिए जाते हैं, तो इस प्रकार की सुपुर्दगी को वास्तविक सुपुर्दगी कहते है।
2. **सांकेतिक सुपुर्दगी** :– यदि माल अधिक मात्रा में है या भारी है कि विक्रेता उसको उठाकर क्रेता को नहीं दे सकता तो ऐसी दशा में विक्रेता वस्तु के अधिकार संबंधी प्रलेखों को ही केवल क्रेता को दे सकता है और इसका परिणाम यह होगा कि माल की सुपुर्दगी मान ली जाएगी। यह सुपुर्दगी गोदाम की चाबी देने पर ही हो सकती है। इसी प्रकार वाहन में लादे हुए माल के अधिकार पत्र जैसे जहाज बिल्टी, रेलवे रसीद आदि सौंपकर सुपुर्दगी की जा सकती है।
3. **रचनात्मक सुपुर्दगी** :– रचनात्मक सुपुर्दगी एक बनावटी सुपुर्दगी की ही भांति होती है। इसके अंतर्गत माल तो विक्रेता था उसके एजेंण्ट अथवा किसी तीसरे पक्षकर के पास रहता है परन्तु वह क्रेता के पास हस्तांतरित हुआ मान लिया जाता है। रचनात्मक सुपुर्दगी निम्नलिखित दशाओं में मानी जाती है :
   (*i*) यदि माल विक्रेता के पास हो और वह उस माल को क्रेता के लिए अपने अधिकार में रखने को सहमत हो जाए।
   (*ii*) यदि माल क्रेता के अधिकार में हो और विक्रेता क्रेता को इसे मालिक के रूप में रखने की सहमति दे।
   (*iii*) यदि माल किसी अन्य व्यक्ति के अधिकार में हो और वह व्यक्ति क्रेता से कहे कि उसे पास रखा माल क्रेता का है।

सुपुर्दगी संबंधी नियम

(Rules Relating to the Delivery of Goods)

वस्तुओं की सुपुर्दगी ऐसे ढंग से होनी चाहिए जिसके फलस्वरूप वस्तु का अधिकार क्रेता को मिल जाए तो ऐसे व्यक्ति को मिल जाए जिसे क्रेता ने अधिकृत किया है। {धारा (33}

साधारणतया सुपुर्दगी के संबंध में भारतीय वस्तु–विक्रय अधिनियम द्वारा कुछ नियम बताए गए हैं जो इस प्रकार हैं :–

1. **क्रेता द्वारा सुपुर्दगी के लिए आवेदन-पत्र भेजना आवश्यक** :– धारा 35 के अनुसार जब तक कि इसके विपरीत कोई अनुबंध न हो, विक्रेता क्रेता को माल की सुपुर्दगी उस समय तक देने के लिए बाध्य नहीं है जब तक कि क्रेता सुपुर्दगी के लिए आवेदन पत्र न भेजे।
2. **सुपुर्दगी का स्थान (Place of Delivery)** :– धारा 36(1) के अनुसार क्या क्रेता माल की सुपुर्दगी लेने खुद आएगा या विक्रेता क्रेता के पास भेजेगा–यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर दोनों पक्षों के बीच किए जाने वाले प्रंसविदे पर निर्भर है। यदि उस संबंध में कोई अनुबंध नहीं है तो साधारण नियम यह है कि सामान की सुपुर्दगी उस जगह पर दी जायेगी जिस जगह पर सामान बिक्री के समय था।
3. **सुपुर्दगी का समय (Time of Delivery)** :– धारा 36 (2) के अनुसार जब किसी अनुबंध के अनुसार यह तय हो जाए कि विक्रेता क्रेता के पास स्वयं सामान भेजेगा, परन्तु माल के भेजने का समय न निश्चित किया जाए तो ऐसी दशा में साधारण नियम यह है कि माल उचित समय के अन्दर भेज दिया जाना चाहिए।

4. **बिक्री के समय माल तीसरे पक्षकार के अधिकार में होने पर (Goods in Possession of a Third Person)** :– धारा 36(3) के अनुसार जब बिक्री के समय माल तीसरे पक्ष के अधिकार में हो तो विक्रेता द्वारा क्रेता को ऐसे माल की सुपुर्दगी उस समय तक नहीं मानी जाएगी जब तक कि तीसरा पक्ष क्रेता को यह न कह दे कि वह अब माल को क्रेता की तरफ से रखता है। किन्तु यह नियम माल के अधिकार संबंधी प्रलेखों को जारी करने या हस्तांतरित करने को प्रभावित नहीं करेगा।

5. **सुपुर्दगी संबंधी व्यय (Expenses of Delivery)** :– धारा 36 (5) के अनुसारा, जब तक कि इसके विपरीत कोई अनुबंध न हो तो नियम यह है कि माल को सुपुर्दगी योग्य स्थिति में लाने का खर्च विक्रेता को सहन करना होगा।

6. **गलत मात्रा में माल की सुपुर्दगी (Delivery of Wrong Quantity)** :– वास्तविक मात्रा से अधिक या कम मात्रा में वस्तु की सुपुर्दगी देना गलत मात्रा में सुपुर्दगी देना कहलाता है। परन्तु थोड़ी कम या थोड़ी ज्यादा वस्तु को गलत मात्रा नहीं कहा जा सकता जब तक कि वस्तु बहुत कीमती न हो जैसे स्वर्ण, हीरा। इस दशा में क्रेता को सुपुर्दगी लेने से इन्कार करने का अधिकार नहीं दिया जाता। यदि गलत मात्रा में सुपुर्दगी दी जाती है तो निम्नलिखित नियम लागू होते हैं :–

   (a) **कम मात्रा में माल की सुपुर्दगी** :– धारा 37 (1) के अनुसार यदि विक्रेता अनुबंध में वर्णित अनुबंध में वर्णित मात्रा से कम माल की सुपुर्दगी क्रेता को देता है, तो क्रेता माल अस्वीकार कर सकता है। परन्तु यदि क्रेता कम स्वीकार कर लेता है तो उसे अनुबंध की दर के अनुसार मूल्य का भुगतान करना होगा।

   (b) **अधिक मात्रा में माल की सुपुर्दगी** :– धारा 37 (2) अनुसार यदि विक्रेता अनुबंध में वर्णित मात्रा से अधिक माल की सुपुर्दगी क्रेता के देता है तो क्रेता –

      (*i*) अनुबंध में वर्णित मात्रा को स्वीकार करके आधिक्य को वापस कर सकता है, या

      (*ii*) समस्त माल को अस्वीकार कर सकता है, या

      (*iii*) समस्त माल को स्वीकार कर सकता है

   यदि क्रेता सम्पूर्ण माल को स्वीकार करता है तो अनुबंध की दर के अनुसार वह सम्पूर्ण माल का मूल्य चुकाने के लिए उत्तरदायी होता है।

7. **किस्तों में सुपुर्दगी होने पर (Delivery in Instalments)** :– धारा 38(1) के अनुसार जब तक कि कोई विपरीत अनुबंध न हो तो माल की सुपुर्दगी क्रेता किश्तों में स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। जब बिक्री के अनुबंध के अनुसार धारा 38 (2) किसी माल की सुपुर्दगी किश्तों में की जाएगी और किश्तों का अलग–अलग भुगतान किया जाएगा तो ऐसी दशा में यदि विक्रेता एक या एक से अधिक किश्त की सुपुर्दगी नहीं करता या गलत सुपुर्दगी कर देता है अथवा क्रेता किसी किश्त की सुपुर्दगी लेने से इन्कार कर देता हो या किसी किश्त का भुगतान करने से इन्कार कर देता है, तो इन तमाम दशाओं में तय करना कि अनुबंध को भंग हुआ समझा जाए या केवल हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है, विक्रय अनुबंध की शर्तों पर या वाद की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

8. **वाहक को वस्तुओं की सुपुर्दगी (Delivery to a Carrier)** :– धारा 39 (1) के अनुसार यदि माल की सुपुर्दगी विक्रेता द्वारा किसी वाहक को इसलिए दी जाती है कि वह उस माल को क्रेता तक पहुँचा दे तो ऐसी दशा में साधारण नियम यह हे कि माल की सुपुर्दगी क्रेता को हुई मानी जाएगी यदि विक्रेता ने माल को बेचे का अधिकार अपने पर सुरक्षित नहीं रखा है।

9. **माल की अन्य सुपुर्दगी पर जोखिम (Risk where goods are deliverd by Distinct places)** :– धारा 40 (1) के अनुसार जब विक्रेता माल की सुपुर्दगी इस स्थान के अतिरिक्त जहां माल बेचा गया है, किसी अन्य स्थान पर अपनी जोखिम पर देने के लिए सहमत हो जाता है, तो भी माल भेजने से पहले उसकी कुछ हानि क्रेता ही वहन करेगा। यहाँ पर माल की हानि का आशय उसकी कुछ क्षति से है, सम्पूर्ण हानि से नहीं, यदि माल सम्पूर्ण रूप से खो जाता है तो जोखिम विक्रेता की होगी।

10. **क्रेता को माल को जांचने का अधिकार (Buyer's Right of examining the goods) :-**

   (*i*) धारा 41(1) के अनुसार जहां विक्रय अनुबंध उस वस्तु के संबंध में है जिसे क्रेता ने पहले न तो देखा है न परीक्षण किया है तो क्रेता को उस माल को क्रय करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है, जब तक कि उसे वस्तु

का परीक्षण करने का उचित अवसर न दिया जाए ताकि वह यह जान सके कि माल की उसी मात्रा तथा गुण का है जिसके लिए अनुबंध हुआ था।

(*ii*) धार 41(2) में वर्णित है कि ''यदि इसके विपरीत कोई समझौता नहीं हुआ है, तब सुपुर्दगी देने पर यदि क्रेता विक्रेता से माल के निरीक्षण का अवसर मांगता है ताकि वह जान सके कि माल अनुबंध की शर्तों के अनुसार है अथवा नहीं, विक्रेता ऐसा अवसर देने के लिए बाध्य है। वह माल के निरीक्षण के बिना क्रेता को माल स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

क्रेता के अधिकार एवं कर्त्तव्य
(Rights and Duties of Buyer)

क्रेता के अधिकार
(Rights to Buyer)

क्रेता के कुछ अधिकार निम्न प्रकार से हैं :–

(*i*) **सुपुर्दगी लेने का अधिकार (Right to have Delivery)** :– क्रेता का यह अधिकार है कि वह अनुबंध के अनुसार माल की सुपुर्दगी ले परन्तु वह माल की सुपुर्दगी के लिए उस समय बाध्य नहीं किया जा सकता कि जब कि माल की सुपुर्दगी अनुबंध के अनुसार नहीं है।

(*ii*) **अनुबंध को व्यर्थ करने का अधिकार (Right to Repudity)** :– धारा 38(2) के अनुसार, यदि बिक्री का अनुबंध ऐसा है जिसके द्वारा माल की सुपुर्दगी किस्तों द्वारा लेनी है तो ऐसी दशा में क्रेता को यह अधिकार है कि वह किसी भी किश्त की सुपुर्दगी पर या किसी किश्त की त्रुटि पर पूरे अनुबंध को व्यर्थ कर सकता है और यदि वह किश्त को स्वीकार कर लेता है तो वह हुई हानि के लिए हर्जाना मांग सकता है।

(*iii*) **माल को निरीक्षण करने का अधिकार (Right to Examine the goods)** :– धारा 41 (1) (2) के अनुसार, यदि क्रेता को पहले माल का निरीक्षण करने का कोई अवसर न प्राप्त हुआ हो तो क्रेता को यह अधिकार है कि सुपुर्दगी से पहले माल का उचित निरीक्षण कर सके।

(*iv*) **अनुबंध भंग के लिए विक्रेता के विरूद्ध अधिकार (Right against Seller for Breach of Contract)** :–

(*i*) **हर्जाने के लिए दावा (*Suit for Damages*)** – यदि विक्रेता क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने में लापरवाही करता है तो इससे इंकार करता है तो सुपुर्दगी न देने के कारण क्रेता विक्रेता पर हर्जाने के लिए दावा कर सकता है।

(*ii*) **कीमत के लिए दावा (*Suit for Price*)** – यदि क्रेता ने माल की कीमत चुका दी है और माल की सुपुर्दगी नहीं दी जाती, तो वह चुकाई गई कीमत वापस ले सकता है।

(*iii*) **विशिष्ट निष्पादन के लिए दावा (*Suit for Specific Performance*)** – क्रेता विक्रेता पर विक्रय–अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के लिए दावा कर सकता है। विशिष्ट अथवा निश्चित माल के विक्रय सम्बन्धी अनुबंध के भंग होने पर किए गए दावे में, न्यायाला वादी (Plaintiff) की प्रार्थना पर अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन का आदेश दे सकता है। ऐसी स्थिति में, बचाव पक्ष अर्थात् (विक्रेता) केवल हर्जाना देकर माल बेचने के अपने दायित्व से मुक्त नहीं होता।

(*iv*) **आश्वासन भंग का दावा (*Suit for Breach of Warranty*)** – यदि विक्रेता द्वारा कोई आश्वासन भंग किया जाता है अथवा क्रेता विक्रेता द्वारा किसी शर्त भंग को आश्वासन–भंग मानना स्वीकार करता है, अथवा उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया जाता है, तो केवल उसे आश्वसन–भंग के कारण की क्रेता को माल अस्वीकार करने के अधिकार नहीं मिलता किन्तु वह –

(a) आश्वासन–भंग के आधार पर कीमत कर सकता है; अथवा

(b) आश्वासन–भंग के लिए विक्रेता पर हर्जाने का दावा कर सकता है।

(*v*) **नियम तारीख से पहले अनुबंध का खंडन (*Reputation of Contract before due Date*)** – यदि सुपुर्दगी देने की तारीख से पहले ही विक्रेता अनबंध का खंडन कर देता है, तो क्रेता अनुबंध का अखंडित समझकर सुपुर्दगी की तारीख तक इन्तजार कर सकता है, अथवा अनुबंध को समापत समझकर विक्रेता पर अनुबंध–भंग के लिए हर्जाने का दावा कर सकता है। इसे 'समय पूर्व अनुबंध–भंग का नियम' कहा जाता है।

(*vi*) **ब्याज के लिए दावा (*Suit for Interest*)** – यदि विक्रेता द्वारा अनुबंध–भंग किए जाने पर क्रेता को कीमत लौटाई जाती है, तो क्रेता को कीमत की राशि पर ब्याज मांगने का अधिकार है।

क्रेता के कर्त्तव्य
(Duties of Buyer)

1. **माल की सुपुर्दगी लेना तथा उसकी कीमत चुकाना (To Take Delivery and Pay for the Goods)** – विक्रय अनुबंध की शर्तों के अनुसार माल की सुपुर्दगी लेना, तथा उसकी कीमत चुकाना क्रेता का कर्तव्य है।

2. **सुपुर्दगी के लिए प्रार्थना करना (To apply for Delivery)** – कोई विशेष अनुबंध न होने पर, जब तक क्रेता तत्संबंधी प्रार्थना न करे, विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य नहीं है।

3. **खराबी की जोखिम लेना (To Take Risk of Deterioration)** – कुछ स्थितियों में, विक्रेता अपनी जोखिम पर माल की सुपुर्दगी किसी ऐसी जगह देना स्वीकार कर सकता है, जो अनुबंध करते समय मल जिस स्थान पर था, उससे भिन्न है। किन्तु कोई विपरीत अनुबंध न होने पर लाने–ले–जाने की संभावित खराबी के लिए जोखिम क्रेता का ही होगा।

   उदाहरण – 'अ' ने 'ब' को कुछ लोहा बेचा। क्रेता की प्रार्थना पर माल जलमार्ग से भेजा गया। गन्तव्य स्थान (Destination) पर पहुंचने से पहले ही लोहे में जंग लग गया। किन्तु यह खराबी लाने–ले–जाने में होने वाली सामान्य खराबी से अधिक नहीं थी। न्यायालय की राय में, क्रेता माल स्वीकार करने के लिए बाध्य था।

4. **माल की सुपुर्दगी लेने में लापरवाही करने अथवा इससे इन्कार करने पर क्रेता का दायित्व (Liability of Buyer for Neglecting or Refusing Delivery of Goods)** – यदि विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने से लिए इच्छुक एवं तैयार है तथा क्रेता से सुपुर्दगी लेने की प्रार्थना करता है, किन्तु इस प्रार्थना के बाद भी क्रेता उचित समय के भीतर माल की सुपुर्दगी नहीं लेता, तो इस लापरवाही अथवा इन्कार से विक्रेता को हुई किसी भी हानि के लिए वह उत्तरदायी होगा। साथ ही, माल की देख–रेख एवं सुरक्षा में हुए खर्च के लिए भी क्रेता का दायित्व होगा।

अदत्त विक्रेता
(Unpaid Seller)

धारा 45 के अनुसार एक विक्रेता को अदत्त विक्रेता समझा जाएगा, यदि –

(a) उसे बेचे गए माल के पूरे मूल्य का भुगतान प्राप्त नहीं हुआ है; अथवा

(b) भुगतान के रूप में उसे कोई विनिमय पत्र अथवा विनियम साध्य विलेख प्राप्त हुआ है तथा जो बाद में अनादत हो गया है।

अतः अदत्त विक्रेता एक ऐसा व्यक्ति है जिसे बेचे गए माल का प्रतिफल नहीं मिला है।

अदत्त विक्रेता के अधिकार
(Rights of Unpaid Seller)

वस्तु विक्रय अधिनियम के अंतर्गत एक अदत्त विक्रेता को निम्न दो अधिकार प्राप्त है :–

(a) माल के विरूद्ध अधिकार (Rights against the goods)

(b) क्रेता के विरूद्ध अधिकार (Rights against the buyer)

(a) **माल के विरूद्ध अधिकार (Right against the goods)** – माल के विरूद्ध अदत्त विक्रेता के अधिकारों को दो भागों में बाँटा जा सकता है – (1) जब माल के स्वामित्व का हस्तांतरण नहीं हुआ है, तथा (2) जब माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो चुका है।

(1) जब माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित नहीं हुआ है तो ऐसी दशा में विक्रेता को माल की सुपुर्दगी रोकने का अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार उसके पूर्वाधिकार एवं माल को मार्ग में रोकने के अधिकार से मिलता जुलता है तथा उसी के साथ सह–विस्तत (Co-existensive) है। {धारा 46 (2)}

(2) जब माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो चुका है तो ऐसी स्थिति में विक्रेता को माल के विरूद्ध निम्न तीन अधिकार प्राप्त है :–

(a) पूर्वाधिकार (Right of lien)

(b) माल को रास्ते में रोकने का अधिकार (Right of stoppage of goods in transit), तथा

(c) माल के पुनः विक्रय का अधिकार (Right or Resale) {धारा 46 (1)}

पूर्वाधिकार (*Right of Lien*) – यदि माल अभी अदत्त विक्रेता के ही कब्जे में है तो वह उस माल को उस समय तक अपने पास रोक सकता है जब तक कि मूल्य का पूर्ण भुगतान प्राप्त नहीं हुआ है अथवा उसके लिए वैध प्रस्ताव नहीं किया गया है। अदत्त विक्रेता इस अधिकार का प्रयोग दशाओं में ही कर सकता है –

(*i*) जब माल उधार नहीं बेचा गया है;

(*ii*) जब माल उधार बेचा गया है और उधार की अवधि समाप्त हो गई है; अथवा

(*iii*) वह क्रेता दिवालिया हो जाता है।

विक्रेता को यह ग्रहणाधिकार उस दशा में भी प्राप्त है जबकि वह क्रेता के एजेंट के रूप में अथवा निक्षेपगहीता के रूप में होता है क्योंकि ग्रहणधिकार का संबंध माल के कब्जे से है, उसके स्वामित्व से नहीं। यदि माल विक्रेता के कब्जे में है चाहे स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो चुका है अथवा नहीं तो उसे पूर्वाधिकार प्राप्त होता है। {धारा 47}

यदि विक्रेता ने माल को आंशिक सुपुर्दगी दे दी है तो पूर्वाधिकार शेष माल पर प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन यदि उसने आंशिक सुपुर्दगी ऐसी परिस्थितियों में दी है जिससे विक्रेता ने अपने पूर्वाधिकार के त्याग करने का आभास मिलता है तो वह शेष माल पर पूर्वाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता।

अदत्त विक्रेता को केवल विशेष पूर्वाधिकार की प्राप्त होता है अतः वह केवल उसी माल के मूल्य की वसूली के लिए ही प्रयोग किया जा सकता है जिस माल के संबंध में मूल्य बकाया है, किसी अन्य वसूली के लिए नहीं। उदाहरण के तौर पर खर्चो की वसूली के लिए पूर्वाधिकार का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

पूर्वाधिकार समाप्ति

(Termination of Lien)

निम्न दशाओं में अदत्त विक्रेता माल पर पूर्वाधिकार खो देता है –

(*i*) जब विक्रेता ने, क्रेता तक माल पहुँचाने के उद्देश्य से, माल पर अपना अधिकार सुरक्षित किए बिना, वाहक को अथवा निक्षेपगहीता को सौंप दिया है।

(*ii*) जब क्रेता अथवा उसका एजेंट वैध रीति से माल पर कब्जा प्राप्त कर लेता है। यदि विक्रेता माल को किसी विशेष कार्य जैसे मरम्मत आदि के लिए दोबारा कब्जा प्राप्त कर लेता है तो उसे पूर्वाधिकार नहीं होगा।

(*iii*) जब विक्रेता अपने पूर्वाधिकार का स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से परित्याग कर देता है। {धारा 49}

यदि अदत्त विक्रेता ने मूल्य के लिए डिक्री प्राप्त कर ली है तो जब तक डिक्री की वसूली न हो जाए, पूर्वाधिकार समाप्त नहीं होता। पूर्वाधिकार एक बार समाप्त होने पर उसे दोबारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

माल को रास्त में रोकने का अधिकार (Right to Stoppage of goods in Transit) – यदि क्रेता दिवालिया हो जाता है और माल अभी रास्ते में है तो विक्रेता को पुनः अपने कब्जे में ले सकता है। इसका अर्थ यह है कि जब तक माल

रास्ते में है अदत्त विक्रेता माल को पुनः अपने कब्जे में कर सकता है तथा कीमत का भुगतान अथवा उसका प्रतिवेदन करने तक माल को अपने कब्जे में कर सकता है। {धारा 50}

दिवालिया वह व्यक्ति माना जाता है जिसने व्यापार की साधारण प्रगति में अपने ऋणों का भुगतान करना बंद कर दिया है, या तो ऋणों के देय होने पर उनका भुगतान नहीं कर सकता है, भले ही उसने दिवालिया होने संबंधी कोई कार्य किया है या नहीं तथा भले ही न्यायालय ने उसे दिवालिया घोषित किया है अथवा नहीं। माल को रास्ते में रोकने का अदत्त विक्रेता का अधिकार उसके पूर्वाधिकार का ही विस्तार मात्र है परन्तु यह क्रेता के दिवालिया होने पर ही उत्पन्न होता है तथा उस समय तक ही इसका प्रयोग किया जा सकता है जब तक कि माल रास्ते में है।

माल को कब तक मार्ग में माना जाता है (Duration of Goods in Transit) – जब विक्रेता, माल को क्रेता तक पहुँचाने के उद्देश्य से उसे किसी वाहक अथवा निक्षेपगहीता को दे देता है तो जब तक माल क्रेता अथवा उसका एजेंट प्राप्त नहीं कर लेता, माल मार्ग में ही माना जाता है तथा अदत्त उसे मार्ग में ही रोकने का आदेश दे सकता है।

वाहक को माल निम्नलिखित हैसियत से दिया जा सकता है –

(*i*) विक्रेता के एजेंट के रूप में – इस स्थिति में माल पर विक्रेता का पूर्वाधिकार होता है तथा रास्ते में माल को रोकने का अधिकार उत्पन्न हीं नहीं होता।

(*ii*) क्रेता के एजेंट के रूप में – ऐसी स्थिति में वाहक को सुपुर्दगी क्रेता को सुपुर्दगी मानी जाती है, अतः विक्रेता माल को रास्ते में रोकने के अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है।

(*iii*) अपने स्वयं के नाम से – केवल ऐसी स्थिति में ही विक्रेता माल को मार्ग में रोकने का अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

निम्नलिखित परिस्थिति में माल को रास्ते में होना समाप्त माना जाता है –

(a) यदि वस्तुएँ गन्तव्य स्थान पर पहुँचने से पहले ही क्रेता अथवा उसका एजेंट की सुपुर्दगी प्राप्त कर लेता है।

(b) माल के गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के बाद, यदि वाहक क्रेता अथवा उसके एजेंट के लिए वाहक, माल के अपने पास एक निक्षेपगहीता के रूप में रखने के लिए सहमत हो जाता है। यदि बाद में क्रेता , माल लेने से इंकार कर देता है तो माल को पुनः मार्ग में ही माना जाएगा।

(c) जब ग्राहक अथवा निक्षेपगहीता गलती से क्रेता अथवा उसके एजेंट को सुपुर्दगी देने से इन्कार कर देता है।

(d) यदि क्रेता अथवा उसका एजेंट को माल की आंशिक सुपुर्दगी दी जा चुकी है तो शेष माल रास्ते में ही माना जाएगा तथा अदत्त विक्रेता उसे रोक सकता है। लेकिन यदि आंशिक सुपुर्दगी जिन परिस्थितियों में दी गई है उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि पूरो माल की सुपुर्दगी दी जानी थी, तो माल को मार्ग में अधिकार समाप्त माना जाएगा।

वस्तुओं को रास्तें में कैसे रोका जाता है ? (How Stoppage in transit is affected ?) (धारा 52) – माल को रास्ते में रोकने के दो तरीके है – (a) माल पर वास्तविक रूप से अपना कब्जा करके, तथा (b) माल के वाहक अथवा निक्षेपगहीता को सूचित करके। सूचना उस व्यक्ति को दी जा सकती है जिसके कब्जे में माल है अथवा सूचना उसके प्रधान को दी जा सकती है लेकिन प्रधान को सूचना देने पर इतना समय अथवा ऐसी परिस्थितियाँ होनी चाहिए कि प्रधान अपने एजेंट तक साधारण परिश्रम द्वारा, क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने से पूर्व सूचित कर सके।

जब विक्रेता के आदेशानुसार माल मार्ग में रोका जाता है तो वस्तुओं की पुनः सुपुर्दगी के संबंध में समस्त व्ययों के लिए विक्रेता ही उत्तरदायी होगा।

वाहक द्वारा गलती करने पर – यदि वाहक (जिसके कब्जे में माल है) वस्तुओं को मार्ग में रोकने की सूचना प्राप्त होने के बाद भी क्रेता को माल की सुपुर्दगी दे देता है अथवा विक्रेता को सुपुर्दगी देने से मना कर देता है तो वह विक्रेता के प्रति परिवर्तन (Conersion) के लिए दायी होगा अर्थात् हर्जाने के लिए उत्तरदायी होगा। इसी प्रकार यदि माल की रास्ते में रहने की स्थिति समाप्त होने के बाद भी माल को गलती से विक्रेता को लौटा देता है तो क्रेता के प्रति हर्जाने के लिए दायी होगा।

क्रेता द्वारा उप विक्रय (Sub-sale) अथवा गिरवी (Pledge) का प्रभाव (धारा 53) – यदि विक्रेता द्वारा पूर्वाधिकार या मार्ग में रोकने का अधिकार का प्रयोग करने से पूर्व ही क्रेता को बेच देता है अथवा अन्य किसी प्रकार से उसका निपटारा कर

देता है तो अदत्त विक्रेता के पूर्वाधिकार व मार्ग में रोकने के अधिकार पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन निम्न दशाओं में अदत्त विक्रेता इन अधिकारों को प्रयोग नहीं कर सकता है –

(a) यदि विक्रेता ने क्रेता को माल को बेचने अथवा अन्य प्रकार से निपटारा करने की सहमति दे दी हो, अथवा

(b) यदि विक्रेता ने माल के स्वामित्व प्रलेख क्रेता के सौंप दिए है तथा क्रेता ने अधिकार–पत्रों द्वारा माल के बेचा अथवा गिरवी रखा है।

यदि क्रेता ने अधिकार–पत्रों के हस्तांतरण द्वारा माल को गिरवी रखा है तो अदत्त विक्रेता को गिरवीग्राही का भुगतान करने पर ही पूर्वाधिकार व मार्ग में रोकने का अधिकार प्राप्त होगा।

(c) माल के पुनः विक्रय का अधिकार (Right of Resale) (धारा 54) अदत्त विक्रेता जब अपने पूर्वाधिकार अथवा माल को मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग कर लेता है तो विक्रय अनुबंध समाप्त नहीं होता। ये अधिकार तो विक्रेता को माल का मूल्य प्राप्त करने के लिए क्रेता को केवल बाध्य करना होता है। क्रेता किसी भी समय मूल्य प्राप्त करने के लिए क्रेता के केवल बाध्य करना होता है। क्रेता किसी भी समय मूल्य का भुगतान करके माल की सुपुर्दगी प्राप्त कर सकता है। किन्तु विक्रेता मूल्य के भुगतान के लिए अनिश्चित समय तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता है। अतः वस्तु विक्रय अनुबंध की धारा 54 के अन्तर्गत अदत्त विक्रेता को कुछ परिस्थितियों में माल को पुनः बेचने का अधिकार दिया गया है –

(*i*) जब माल नाशवान प्रकृति का है।

(*ii*) यदि अदत्त विक्रेता ने अपने पूर्वाधिकार अथवा माल को मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग करते हुए माल को अपने कब्जे में लिया है तथा क्रेता को वस्तुओं को पुनः विक्रय करने के अपने इरादे की सूचना दे दी है किन्तु क्रेता ने निर्धारित समय में मूल्य का भुगतान नहीं किया है।

(*iii*) यदि विक्रेता ने क्रेता द्वारा चूक किए जाने की स्थिति में माल का पुनः विक्रय का अपना अधिकार सुरिक्षत रखा है।

केवल नाशवान प्रकृति के माल की दशा को छोड़कर विक्रेता माल को केवल तभी पुनर्विक्रय कर सकता है जबकि क्रेता को इस आशय की सूचना दी गई हो कि एक निश्चित समय तक मूल्य का भुगतान न करने पर माल का पुनर्विक्रय का दिया जाएगा। यदि सूचना के निर्धारित समय तक भी क्रेता मूल्य का भुगतान नहीं करता है तभी विक्रेता को माल के पुनर्विक्रय का अधिकार मिलता है।

यदि विक्रेता ने माल के पुनर्विक्रय की सूचना क्रेता को दी है तो ऐसे पुनर्विक्रय से होने वाली हानि को वह क्रेता से वसूल कर सकता है तथा यदि लाभ होता है तो वह उसे क्रेता को देने के लिए बाध्य नहीं।

यदि विक्रेता ने माल के पुनर्विक्रय की सूचना क्रेता को नहीं दी है तो विक्रेता हानि की पूर्ति क्रेता से नहीं करा सकता है तथा लाभ होने पर उसे ऐसा लाभ भी क्रेता को लौटाना होगा।

अदत्त विक्रेता के स्वयं क्रेता के विरूद्ध अधिकार

(Rights of Unpaid Seller Against the Buyer Personally)

एक अदत्त विक्रेता के क्रेता के विरूद्ध निम्न उपचार उपलब्ध है –

(a) **मूल्य के लिए दावा (Suit for Price)** – यदि माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो चुका है तो क्रेता के द्वारा अनुबंध की शर्तो के अनुसार मूल्य का भुगतान न करने पर, क्रेता के विरूद्ध, अदत्त विक्रेता मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

यदि वस्तुओं का मूल्य अनुबन्ध की शर्तो के अनुसार वस्तुओं की सुपुर्दगी से पूर्व किसी निश्चित तिथि को भुगतान होना निश्चित हुआ है परन्तु क्रेता द्वारा मूल्य का भुगतान उस निश्चित तिथि को नहीं किया जाता तो भी अदत्त विक्रेता मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है, चाहे माल के स्वामित्व का हस्तांतरण हुआ है अथवा नहीं तथा चाहे वस्तुओं का नियोजन अभी हुआ है अथवा नहीं।

(b) **हर्जाने के लिए दावा (Suit for Damages)** – क्रेता द्वारा अनुचित रूप से माल को अस्वीकार करने तथा उसका मूल्य चुकाने में लापरवही करने अथवा इंकार करने पर अदत्त विक्रेता उस पर हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। {धारा 56}

(c) **नियत तारीख से पूर्व अनुबंध खण्डन (Repudiation of Contract before due data)** – यदि क्रेता सुपुर्दगी की तारीख से पहले अनुबंध भंग करता है तो विक्रेता इस तिथि को अनुबंध को समाप्त समझ सकता है और हर्जाने के लिए दावा कर सकता है अथवा वह सुपुर्दगी की तारीख तक इन्तजार कर सकता है और उस तिथि को हर्जाने की माँग कर सकता है। {धारा 60}

इस प्रत्याशित अनुबंध भंग भी कहा जाता है। हर्जाना अनुबंध में निर्धारित मूल्य व बाजार के मूल्य के अन्तर के बराबर होगा।

(d) **ब्याज के लिए दावा (Suit for Interest)** – यदि निश्चित तिथि पर मूल्य का भुगतान न मिलने, ब्याज वसूल करने का स्पष्ट अनुबंध है तो अदत्त विक्रेता से ब्याज की राशि वसूल कर सकता है। किसी विपरीत अनुबंध न होने पर न्यायालय एक उचित दर से ब्याज दिला सकता है। यह ब्याज माल के लिए आवदेन करने अथवा मूल्य देय होने की तिथि से लगाया जाएगा।

नीलाम द्वारा विक्रय

(Sale by Auction)

नीलाम द्वारा बिक्री उस बिक्री को कहते है जब एक व्यक्ति माल को जनता के बीच नीलाम द्वारा बेचता है और जनता में से जो भी व्यक्ति सबसे ऊँची बोली लगाएगा उसी को माल बेचा समझा जाएगा। वास्तव में नीलामकर्त्ता जनता के सामने माल को खरीदने का एक सामान्य निमन्त्रण रखता है जिसके परिणामस्वरूप बहुत से व्यक्ति जो नीलाम के समय वहाँ इकट्ठा रहते है एक–एक करके उस निमन्त्रण को स्वीकार करने का प्रयत्न करते है, परन्तु केवल वही व्यक्ति निमन्त्रण को स्वीकार कर पाता है जो कि वस्तु के लिए सबसे अधिक मूल्य चुकाने को तैयार हो अर्थात् वही वस्तु को ले लेता है।

धारा 64 के अनुसार नीलाम द्वारा बिक्री के सम्बन्ध में कुछ नियम बताए जाते हैं जो इस प्रकार हैं :–

(1) **माल बहुत से भागों में बेचा जाने पर (Where goods are put up for sale in lots)** – जब माल को बहुत से भागों (Lots) में बेचा जाए तो हर एक भाग के सम्बन्ध में अलग–अलग बिक्री का अनुबंध किया जाएगा अर्थात् हर एक भाग की बिक्री एक पथक प्रसंविदे की विषय वस्तु समझी जाएगी। {धारा 64 (1)}

(2) **बिक्री पूरी न होने तक बोली वापस लेने का अधिकार (Right of Retracting the Bid)** – बिक्री उस समय पूरी हुई मानी जाती है जब नीलामकर्त्ता एक हथोड़े की चोट से या किसी दूसरी ऐसी रीति से जो उस स्थान पर चालू हो उसका पूरा होना घोषित कर दे और इसलिए जबतक ऐसी घोषणा न की जाए तब तक बोली लगाने वाले को यह अधिकार रहता है कि वह अपनी बोली वापस ले ले। {धारा 64 (2)}

(3) धारा 64 (3) के अनुसार, विक्रेता द्वारा अथवा उसकी ओर से बिक्री में बोली लगाने का अधिकार स्पष्टतः सुरक्षित रखा जा सकता है तथा यदि ऐसा अधिकार स्पष्टतः सुरक्षित किया गया है, परन्तु अन्य किसी प्रकार का नहीं, तो विक्रेता अथवा उसकी ओर से अन्य कोई व्यक्ति इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन नीलाम में बोली लगा सकता है। अतः साधारण नियम है कि नीलामकर्त्ता स्वयं या अपनी ओर से किसी अन्य व्यक्ति को बोली बोलने के लिए नियुक्त नहीं कर सकता। परन्तु यदि उसने बोली बोलने के अपने अधिकार को सुरक्षित रखा है तथा इसकी सार्वजनिक घोषणा कर दी है, तब वह स्वयं या अपने द्वारा नियुक्त व्यक्ति से बोलियां बुलवा सकता है।

(4) धारा 64 (3) के अनुसार, यदि कोई नीलामकर्त्ता बोली बोलने के अपने अधिकार को सुरक्षित किये बिना ही स्वयं या अपने द्वारा नियुक्त व्यक्तियों से नीलाम के समय बोली बुलवाता है, तब उसका यह कार्य कपटपूर्ण (Fradulent) माना जायेगा तथा ऐसी बिक्री का अनुबंध क्रेता के इच्छा पर व्यर्थनीय होगा।

(5) धारा 64 (4) के अनुसार, नीलाम करने से पहले यह घोषणा की जा सकती है कि वस्तु की बिक्री एक निम्नतम सुरिक्षत (Reserved) या निर्धारित (Upset) मूल्य के अन्तर्गत की जाएगी। अर्थात् नीलामकर्त्ता अपनी हानि को बचाने के लिए निम्नतम मूल्य पहले से ही निर्धारित कर सकता है। यदि निम्नतम निर्धारित सीमा तक कोई व्यक्ति बोली नहीं बोलता है तो नीलामकर्त्ता माल को बेचने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता और ऐसी दशा में नीलाम करनेवाला उस समय तक नीलाम की बोली घोषित नहीं करेगा जब तक की माल का मूल्य निर्धारित मूल्य तक नहीं पहुंच जाए।

खण्ड 3

अध्याय-12

विनिमय साध्य लेखपत्र (विपत्र) अधिनियम—1881

(Negotioable Instruments Act - 1881)

भारत वर्ष में विनियम साध्य लेखपत्रों को अधिनियम, 1881 में बना। इस अधिनियम के पास होने से पहले भारतवर्ष में अंग्रेजी विनिमय साध्य लेखपत्र अधिनियम में दिए गए नियम लागू होत थे। वर्तमान अधिनियम कुछ संशोधन के साथ इंग्लैंड के अधिनियम पर ही आधारित है। प्रस्तुत अधिनियम जम्मू व कश्मीर को छोड़कर समस्त भारत में लागू होता है। यह अधिनियम मार्च 1, 1882 से लागू किया गया है।

विनियम साध्य लेखपत्र का अर्थ

(Meaning of Negotiable Instrument)

''विनियम साध्य'' का अर्थ है, सुपुर्दगी द्वारा हस्तांतरणीयः तथा ''लेखपत्र'' (विलेख) वह लिखित दस्तावेज है जो किसी व्यक्ति के पक्ष में कोई अधिकार निर्मित करता है। अतः विनिमय साध्य लेखपत्र से आशय ऐसे लिखित लेखपत्रों से है जो किसी व्यक्ति के हित में अधिकार उत्पन्न करता है और जो सुपुर्दगी द्वारा हस्तांतरणीय होता है।

परिभाषा (Definition) – ''विनिमय साध्य लेखपत्र से तात्पर्य किसी प्रतिज्ञापत्र, विनियम–बिल या चैक से है जो किसी आदेशित व्यक्ति अथवा वाहक को देय हो'' (A negotiable instrument means a promissory note, bills of exchange or cheque payable either to order or to bearer. — Sec. 13)

न्यायाधीश विलिस के अनुसार, ''विनिमय साध्य लेखपत्र उसे कहते हैं जिसका स्वामित्व ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है जो कि लेखपत्र को सद्भावना के साथ तथा मूल्य के बदले में प्राप्त करता है, चाहे भले ही जिस व्यक्ति से वह प्राप्त करता है उसके स्वत्व (Title) में कोई दोष हो।'' (A negotiable instrument is one of the property in which title is acquired by any one who takes it bonafied and for value notwithstanding any defect of the title in the person from whom he took it. — Justice Wills).

विनियम साध्य लेखपत्र के आवश्यक लक्षण (Essential Characteristics of a Negotiable Instrument) – एक विनिमय साध्य लेखपत्र के आवश्यक लक्षण अग्रलिखित हैं :–

(*i*) यह लिखित होता है।

(*ii*) एक वाहक (Bearer) विनियम–साध्य लेखपत्र केवल सुपुर्दगी और आदेशित (Order) लेखपत्र बेचान तथा सुपुर्दगी द्वारा हस्तान्तरित किया जा सकता है।

(*iii*) इसका धारक अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(*iv*) इसमें प्रतिफल को उल्लेख नहीं होता है। केवल इसमें मूल्यवान प्रतिफल होना मान लिया जाता है।

(*v*) यह मुद्रा के रूप में कार्य करता है एवं उसके समान एक हाथ से दूसरे हाथ हस्तांतरित होता है।

(*vi*) हस्तांरिती को हस्तांतरण करते समय किसी को भी सूचना देने की आवश्यका नहीं पड़ती है।

(*vii*) यह ऋण के अभिहस्तांकन (Assignment) का सबसे आसान व सुविधाजनक साधन है।

(*viii*) यह सद्भाव हस्तांतरिक (Bonafide Transfere) का ऐसा अधिकार प्रदान करता है जिस पर हस्तांतरण करने वाले व्यक्ति के अधिकार के दोषों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

विनिमय साध्य लेखपत्र दो प्रकार के होते हैं :–

(*i*) कानून द्वारा विनियमसाध्य, और (*ii*) प्रचलित रीति–रिवाजों के अनुसार विनिमयसाध्य।

(*i*) **कानून द्वारा विनिमयसाध्य** (Negotiable by Statute) – धारा 13 के अनुसार विनियम–पत्र, प्रतिज्ञा–पत्र और चैक ही विनिमयसाध्य होते हैं। अतः इन्हें कानून द्वारा विनिमय–साध्य कहा जा सकता है।

(*ii*) **प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार विनिमयसाध्य** (Negotiable by customs or usage) – विनिमय–पत्र, प्रतिज्ञा–पत्र और चैक के अतिरिक्त कुछ दूसरे प्रपत्र जैसे – डिविडेण्ड वारण्ट (Divident Warrant), शेयर वारण्ट (Share Warrant), डिबेन्चर (Debenture), रेलवे रसीद (Railway Receipt), जहाजी बिल्टी (Bill of Lading) को भी अन्य अधिनियमों (जैसे कम्पनी अधिनियम) अथवा व्यापारिक रीति–रिवाजों के कारण विनिमयसाध्य लेख–पत्र माना जाता है।

प्रतिज्ञा-पत्र

(Promisory Note)

परिभाषा (Definition) – धारा 4 के अनुसार, ''एक प्रतिज्ञा–पत्र वह लिखित पत्र है जो न तो बैंक नोट है और न ही करेन्सी नोट। इसमें एक शर्तरहित प्रतिज्ञा एक निश्चित रकम की, किसी व्यक्ति को या उसके आदेशानुसार किसी दूसरे व्यक्ति को या पत्र के वाहक को देने की होती है।'' (A Promisory note is an instrument in writing (not being a bank note or a currency note) containing an unconditional undertaking signed by the maker to pay certain sum of money only to or to the order of a certain persons).

पक्षकार – (*i*) लेखक (*ii*) प्राप्तकर्ता (Payee) ।

प्रतिज्ञा-पत्र के आवश्यक तत्व अथवा परिभाषा का विश्लेषण (Analysis of the above definition) – यदि हम उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन करें तो यह पता चलता है कि एक प्रतिज्ञा–पत्र में निम्न तत्वों का होना आवश्यक है –

1. यह लिखित होना चाहिए मौखिक नहीं (In Writing)।
2. इसमें स्पष्ट रूप से भुगतान देने की प्रतिज्ञा होनी चाहिए (Promise to pay)।
3. प्रतिज्ञा शर्तरहित होनी चाहिए। परन्तु किसी व्यक्ति की मत्यु पर आधारित लिखित वचन प्रतिज्ञा–पत्र होगा , कारण मत्यु को होना अवश्यम्भावी है। अतः मत्यु पर आधारित प्रतिज्ञा–पत्र शर्तरहित ही होगा। (Unconditional)।
4. रकम निश्चित होनी चाहिए (Certain sum of money)।
5. प्रतिज्ञा–पत्र पर प्रतिज्ञा करने वाले के हस्ताक्षर होने चाहिए (Signed by the maker)।
6. पत्र को बनाने वाला एक निश्चित व्यक्ति होना चाहिए (Maker a certain person)।
7. भुगतान पाने वाला व्यक्ति निश्चित होना चाहिए (Certain party)।
8. भुगतान देश की वैधानिक मुद्रा में होना चाहिए (Legal tender of money)।
9. बैंक नोट या करेंसी नोट प्रतिज्ञा–पत्र नहीं है (Bank note or currency note not a promossiory note)।
10. स्थान, तिथि आदि प्रतिज्ञा–पत्र की वैधानिकता के लिए आवश्यक नहीं है। (Formalities like place, date etc. not necessary)।
11. भारतीय मुद्राकंन अधिनियम के अन्तर्गत प्रतिज्ञा–पत्र का मुद्रांकन होना आवश्यक है। (It should be properly stamped)।

विनिमय-पत्र या विपत्र

(Bill of Exchange)

परिभाषा (Definition) – धारा 5 के अनुसार, ''विपत्र एक ऐसा लेखपत्र है जिसमें एक शर्तरहित आदेश, इसके लिखने वाले के हस्ताक्षर के अन्तर्गत, किसी विशेष व्यक्ति को एक निश्चित रकम, किसी निश्चित व्यक्ति के आदेशानुसार अथवा विलेख के वाहक को, देने का होता है।'' (A Bill of Exchange is an instrument in writing containing an unconditional order signed by the maker directing a certain person to pay a certain sum of money only to or to there order of a certain person or to bearer of the instrument.)

विपत्र के आवश्यक तत्व अथवा परिभाषा का विश्लेषण – यदि हम उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेशणात्मक अध्ययन करें तो हमें यह पता चलता है कि एक विपत्र में निम्न तत्वों का होना आवश्यक है –

1. एक विनिमय–पत्र लिखित (In writing) होना चाहिए।
2. धनराशि को चुकाने का एक आदेश होना चाहिए, अनुरोध (निवेदन या याचना) नहीं (An order to pay)।
3. आदेश शर्तरहित होना चाहिए। देखते की या मांगने पर (At sight or on demand), देखने के कुछ दिन पश्चात (So many days after sight), लिखित तिथि के कुछ दिन पश्चात (So many days after date) अथवा निश्चित घटना जेसै मत्यु के कुछ दिन पश्चात का शर्त नहीं माना जाता (Unconditional)।
4. राशि भी निश्चित होनी चाहिए।
5. विपत्र के लिखने वाले के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं (Signed by the drawer)।
6. जिस व्यक्ति पर विपत्र लिखा जाए, वह व्यक्ति भी निश्चित होना चाहिए।
7. विपत्र एक निश्चित व्यक्ति के पक्ष में होना चाए जो स्वयं एक लेखक भी हो सकता है।

विनिमय-पत्र के तीन पक्षकार –

(*i*) विनिमय पत्र को लिखने वाला अर्थात् लेखक या आहर्ता (Drawer)।

(*ii*) जिसके ऊपर विनियम पत्र लिखा जाता है अर्थात् देनदार या आहर्णी या आहर्ती (Drawee)।

(*iii*) जो रुपया पाने वाला है अर्थात् लेनदान या आदाता (Payee)।

विनियम-विपत्र के प्रकार

(Kinds of Bill of Exchange)

विनिमय–विपत्र दो प्रकार का होता है –

1. **देशी विपत्र** (Inland Bill) – ऐसे विपत्र का प्रयोग देश की सीमा के अन्दर व्यापार में बिल व्यवस्था करने तथा ऋण चुकाने में किया जाता है। अतः देशी विपत्र के सभी पक्षकार देश के अन्दर ही होते हैं।
2. **विदेशी बिल** (Foreign Bill) – विदेशी विपत्र साधारणतया तीन प्रतिलिपियों में बनाया जाता है और इन तीनों को एक–दूसरे विपत्र की प्रतिलिपी कहते हैं। जैसे ही इन तीनों में से एक का भुगतान कर दिया जाता है तो बाकी की दो बेकार हो जाती हैं। इन विपत्रों को विभिन्न भागों में बनाया जाता है तथा हर एक भाग को अलग–अलग भेजा जाता है। वास्तव में इनको अलग–अलग इसलिए बनाया और भेज सकता है। ये तीनों भाग मिलकर एक विपत्र कहलाते हैं। लेखक को तीन भागों पर हस्ताक्षर करना होता है और तीनों को ही भेजना होता है। किन्तु मुद्रांक (Stamp) केवल एक ही भाग पर लगाना होता है और केवल एक ही भाग स्वीकार करना होता है। इस प्रकार जब एक भाग स्वीकार कर लिया जाता हैं तो बाकी के सब भाग व्यर्थ समझे जाते हैं। किन्तु यदि एक व्यक्ति विपत्र के सभी भागों को स्वीकार कर लेता है या दूसरे व्यक्तियों के पक्ष में उनका बेचान कर देता है तो वह स्वयं और दूसरे बेचान करने वाले, ठीक उसी भांति उत्तरदायी होंगे जैसे वे एक भिन्न विपत्र की दशा में होते हैं। किन्तु यदि उसी बिल के भिन्न–भिन्न भाग यथाविधि–धारियों (Holder in due course) पर पहुंच जाएं तो जिस व्यक्ति ने अपने भाग का अधिकार प्राप्त किया हो, वह दूसरे भागों तथा विपत्र में लिखी हुए रकम के लिए भी अधिकारी होगा।

विनियम-विपत्र के अन्य प्रकार

(Other Kinds of Bill)

एक विपत्र के देशी और विदेशी होने के अतिरिक्त और भी बहुत प्रकार हैं जो निम्न हैं :–

1. **अनुग्रह अथवा सहायतार्थ विपत्र** (Accommodation Bill) – सभी विपत्र वास्तव में व्यापारिक विपत्र नहीं होते। कभी–कभी विपत्र किसी मित्र की सहायता के लिए भी स्वीकार किए जाते हैं। जब कोई व्यक्ति बिना प्रतिफल के किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता करने के उद्देश्य से विपत्र को स्वीकार करता है तो ऐसे विपत्र को 'अनुग्रह विपत्र' कहते हैं। वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति की सहायता के लिए अनुग्रहकर्त्ता पक्ष (Accomodating Party) कहलाता है और वह पक्ष जो सहायता पाता है 'अनुग्रहीत पक्ष' (Accommodated Party) कहलाता है।

2. **अपूर्ण विपत्र** (Incomplete Bill) – जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को एक विपत्र हस्ताक्षर करके तथा उस पर उचित मुद्रांक लगाकर दे दे और उसे पूरा खाली छोड़ दे या आंशिक रूप से लिखे और उसको यह अधिकार दे दे कि वह खाली स्थान को स्वयं लिख ले तो ऐसे विपत्र को अपूर्ण विपत्र कहेंगे। जिस व्यक्ति ने ऐसे विपत्र पर हस्ताक्षर किए हैं वह विपत्र के लिए दायी होता है क्योंकि विपत्र का हस्तान्तरण इस बात का प्रमाण है कि विपत्र के देने वाले ने विपत्र पाने वाले को पूरा करने का अधिकार दिया है। [धारा 20]

3. **बिना तिथि का विपत्र** (Undated Bill) – कोई भी धारी निर्माण या स्वीकृति की तिथि को डाल सकता है। यदि कभी ऐसा हो जाए कि धारी से विपत्र पर तिथि सद्भावना में गलत पड़ जाए तो इसे भी सही मान लिया जाएगा यदि बाकी सब कानूनी शर्तें पूरी हों। [धारा 18]

4. **संदिग्ध विपत्र** (Ambiguous Bill) – यदि कोई विपत्र ऐसे ढंग से लिखा गया हो कि उसे या तो विपत्र या प्रतिज्ञा–पत्र दोनों ही समझा जा सके तो ऐसे विपत्र को संदिग्ध विपत्र कहते हैं। जब विपत्र लिखने वाला लेखक तथा देनदार दोनों की ही स्थिति में हो या देनदार कोई कल्पित व्यक्ति हो, या उसे प्रसंविदा करने का अधिकार न हो, तो ऐसी स्थिति में धारक ऐसे विपत्र को प्रतिज्ञा–पत्र य विपत्र कुछ भी मान सकता है। [धारा 17]

5. **कल्पित विपत्र** (Fictitious Bill) – जब किसी विपत्र में लिखने वाला या जिसके ऊपर लिखा जा रहा हो या भुगतान पाने वाला, कोई भी कल्पित व्यक्ति हो – चाहे ऐसा व्यक्ति जीवित भी न हो तो ऐसे विपत्र को अंग्रेजी नियम के अनुसार 'वाहक देय' (Payable to bearer) कहते हैं। भारत में यदि किसी विपत्र में कोई भी व्यक्ति कल्पित हो तो ऐसा विपत्र परिवर्तनीय नहीं होता किन्तु यथाविधिधारी के हितों की रक्षा कल्पित विपत्र में भी होती है।

विनिमय-पत्र तथा प्रतिज्ञा-पत्र में अन्तर

(Difference between a Bill of Exchange and Promissory Note)

क्रं.सं. (Sl. No.)	अन्तर का आधार (Basis of Difference)	विनियम–पत्र (Bill of Exchange)	प्रतिज्ञा–पत्र (Promissory Note)
	(1)	(2)	(3)
1.	लेखक (Drawer)	विनिमय–पत्र ऋणदाता (लेनदार) लिखता है।	प्रतिज्ञा–पत्र ऋणी (देनदार) लिखता है।
2.	स्वभाव (Nature)	विनिमय–पत्र भुगतान का आदेश है।	प्रतिज्ञा–पत्र भुगतान की प्रतिज्ञा है।
3.	स्वीकृति (Acceptance)	बिल पर स्वीकृति आवश्यक है।	प्रतिज्ञा–पत्र पर स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती।
4.	पक्षकार (Parties)	विनिमय–पत्र में तीन पक्ष होते हैं – 1. लेखक, 2. स्वीकार करने वाला, और 3. पाने वाला है।	इसके दो पक्ष होते हैं : 1. लेखक, 2. पाने वाला।
5.	लेखक एवं पाने वाला (Drawer and payee)	बिल का लिखने वाला पाने वाला, भी हो सकता है।	प्रतिज्ञा–पत्र लिखने वाला भुगतान पाने वाला कदापि नहीं हो सकता।
6.	प्रतियां (Copies)	विदेशी बिल की तीन प्रतियां (Via) लिखी जाती हैं।	विदेशी प्रतिज्ञा–पत्र की केवल की प्रति लिखी जाती हैं।
7.	संयुक्त दायित्व (Joint Liabilities)	बिल स्वीकार करने वालों का दायित्व सामूहिक (Joint) होता है।	प्रतिज्ञा–पत्र में दायित्व सामूहिक एवं पथक् दोनों हो सकता है।
8.	टिकट (Stamp)	दर्शनी बिल पर टिकट नहीं लगाया जाता है।	दर्शनी प्रतिज्ञा–पत्र पर टिकट लगाया जाता है।

	(1)	(2)	(3)
9.	प्रतिष्ठा के लिए भुगतान (Payment for Honour)	बिल के तिरस्कृत होने पर किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा इसका भुगतान किया जा	प्रतिज्ञा–पत्र में ऐसा नहीं हो सकता। सकता है।
10.	अनादरण पर दायित्व (Liability on Dishonour)	बिल का लेखक (Drawer) बिल का भुगतान न होने पर उत्तरदायी होता है।	प्रतिज्ञा–पत्र का लेखक भुगतान के लिए सदैव उत्तरदायी होता है।
11.	निकराई (Noting)	बिल के तिरस्कृत होने पर निकराई (Noting) कराना आवश्यक है।	प्रतिज्ञा–पत्र के तिरस्कृत होने पर निकराई कराना आवश्यक नहीं है।

चैक का प्रमाणन
(Marking of Cheque)

चैक भी एक प्रकार का विनिमय–पत्र है जो सदैव किसी बैंक विशेष पर लिखा जाता है तथा जो मांग पर देय होता है। सामान्यतः भुगतान हेतु चैक पर बैंक की स्वीकृति प्राप्त नहीं की जाती। इसका कारण यह है कि यह तुरन्त भुगतान के लिए लिखा जाता है। परन्तु कुछ देशों (जैसे अमेरिका) में चैक को भुगतान योग्य प्रमाणित करने के लिए प्रमाणचिन्ह लगाये जाते हैं। बैंक द्वारा प्रमाणचिन्ह लगाने की क्रिया को चैक को चिन्हित करना या प्रमाणित करना (Marking of Cheque) कहते हैं। यह प्रमाणचिन्ह लगाना बैंक द्वारा भुगतान की स्वीकृति प्रदान करना ही है और बैंक आदाता अथवा वाहक को रकम चुकान के लिए बाध्य होता है। परन्तु भारत में विधानतः चैकों को चिन्हित करने की प्रथा अभी प्रारम्भ नहीं की गई है। अतः चिन्हित चैक को भुगतान योग्य घोषित करने के बावजूद कोई भारतीय बैंक, चैक की धनराशि का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं होता।

निम्न परिस्थितियों में चैक की भुगतान योग्यता को बैंक द्वारा चिन्ह लगाकर प्रमाणित किया जाता है –

1. **चैक के लेखक की आज्ञा पर चिन्ह लगाना** (Marking of Drawer's Instance) – बाहरी व्यक्तियों या लेनदार (Payee) को अपनी साख में विश्वास दिलाने के लिए लेखक चैक का प्रमाणित करने की मांग करता है। खाते में पर्याप्त रुपया जमा होने पर बैंक चैक पर मुहर लगा देता है तथा कुछ शब्द जैसे शुद्ध (Good) भी लिखा देता है तथा इतनी धनराशी सामान्यतः अलग रख लेता है। परन्तु चैक के भुगतान हेतु प्रस्तुत करने से पहले ही यदि चैक के लेखक द्वारा कुछ रुपया निकाल लिया जाए और ऐसी दशा में इस प्रमाणित चैक को भुगतान करने हेतु पर्याप्त धनराशि की कमी पड़ रही हो तो बैंक को चैक अनादरित करने का अधिकार होता है।
2. **धारक की प्रार्थना पर चिन्ह लगाना** (Marking at Holder's Instance) – धारक की प्रार्थना पर बैंक द्वारा भुगतान योग्यता को प्रमाणित करने का तात्पर्य यह है कि प्रमाणित करते समय बैंक में चैक लेखक के खाते में पर्याप्त रुपया जमा है। परन्तु भुगतान की मांग किए जाने से पहले ही चैक लेखक द्वारा इतना रुपया निकाल लिया गया हो कि चैक का पूर्ण भुगतान किया जाना असम्भव हो जाए तो ऐसी अवस्था में बैंक चेक को अनादरित कर देगा।

चैक का भुगतान
(Payment of Cheque)

जहां तक ग्राहकों के चैकों के भुगतान का संबंध है, भुगतान करने वाला बैंक सदैव एक सुविधाजनक (Privileged) स्थिति में होता है। खुले चैक (Open Cheque) अर्थात् वाहक (Bearer) तथा आदेशित (Order) चैक का भुगतान यदि सावधानीपूर्वक, ग्राहक (लेखक) के हस्ताक्षर मिलाकर, उचित रूप से खिड़की (Counter) पर कर दिया जाए तो बैंक ऐसे चैकों के प्रति धारा 85 के अनुसार दायित्वमुक्त हो जाता है। रेखांकित चैक का भुगतान सदैव बैंक को ही होगा, बैंक की खिड़की (Counter) पर नहीं। विशेष रेखांकित चैक की दशा में उस बैंक विशेष को भुगतान होगा। अतः धारा 126 के अनुसार रेखांकित चैक का भुगतान किसी बैंक को या विशेष रेखांकित होने की दशा मे उस बैंक विशेष को या उसके एजेंट को करके बैंक दायित्व मुक्त हो जाता है। परन्तु धारा 126 में व्यवस्था की गई है कि यदि संग्रह के उद्देश्य से एजेंट के प्रति रेखांकित होने के अतिरिक्त चैक पर एक से अधिक विशेष रेखांकन किये गये हैं तो भुगतानकर्त्ता ऐसे चैक का भुगतान करने से इन्कार कर देगा।

चैक को रेखांकन

(Crossing of a Cheque)

रेखांकन का अर्थ (Meaning of Crossing) – जब चैक के मुख पर दो तिरछी समानान्तर रेखा खींच दी जाती है तब वह 'चैक का रेखांकन' कहलाता है। ये रेखाएं अधिकतर चैक के बायीं ओर ऊपर के कोने में खींची जाती हैं। इन दोनों रेखाओं के बीच में कभी तो कुछ शब्द लिख दिये जाते हैं और कभी कुछ भी नहीं।

''एक रेखांकित चैक वह है जिसके मुख पर बांई ओर दो तिरछी समानान्तर रेखाएं कुछ शब्दों सहित अथवा बिना शब्दों के खींच दी जाती हैं।'' (A Crossed Cheque is an, on which two parallel lines are draen across its face with or without some words between these lines).

रेखांकित चैक का नमूना

(Specimen of a Crossed Cheque)

& CO. 12.6.1997

Pay.......................... **MR. NIKHIL JAIN & CO.** ....

.... या धारक को OR BEARER

रुपये RUPEES ...... FIVE THOUSAND ONLY .... **Rs. 5,000/-**

....अदा करें

खा. सं. A/c. No.	11888	ब. प. L.F.		द. प. INTLS	

For FUTURE KIDS PUBLICATIONS

स्टेट बैंक ऑफ पटियाला
STATE BANK OF PATIALA
दरिया गंज, नई दिल्ली–110002
MVA/I DARYAGAN, New Delhi-11002

Proprietor

"84347" 1100070091: 11

रेखांकित चैक भुगतान की दष्टि से अधिक सुरक्षित माने जाते हैं। वाहक चैक की अपेक्षा आदेश पत्र अधिक सुरक्षित होता है, तथा आदेश पत्र की अपेक्षा रेखांकित चैक अधिक सुरक्षित होता है क्योंकि रेखांकित चैक का भुगतान वाहक चैक की तरह बैंक की खिड़की (Counter) पर नहीं मिलता है। भुगतान पाने वाले व्यक्ति इस चैक को, उस बैंक में जहां उसका खाता है, जमा करा देता है और रुपया निकालने के लिए उसे अलग से चैक काटना पड़ता है। अतः कोई व्यक्ति इसका भुगतान प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसी दशा में चैक के वास्तविक लेनदार का पता लग जाता है।

रेखांकन के प्रकार (Types of Crossing) – चैक को रेखांकित दो प्रकार के किया जाता है :–

1. **साधारण अथवा सामान्य रेखांकन** (General Crossing)
2. **विशेष रेखांकन** (Special Crossing)

1. **साधारण अथवा सामान्य रेखांकन** (General Crossing) – जब किसी चैक के मुख पर टेढ़ी समानान्तर रेखाओं के बीच 'एण्ड कम्पनी' (and Company or & Co.) अथवा दो सामानान्तर रेखाएं (शब्द 'अपरक्राम्य Not Negotiable के सहित अथवा उसके बिना) खिंची हो तो यह साधारण रेखांकन कहलाता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि साधारण रेखांकन में किसी बैंक का नाम नहीं लिखा जाता। साधारण रेखांकन के नमूने निम्न प्रकार हैं :– (धारा123)

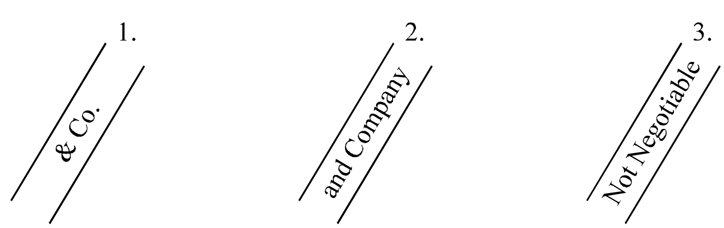

2. **विशेष रेखांकन** (Special Crossing) – जब चैक के मुख पष्ठ पर दो तिरछी सामानान्तर रेखाओं के बीच किसी विशेष बैंक का नाम लिख दिया जाता है तब उसे विशेष रेखांकन कहते हैं। विशेष रेखांकन में किसी बैंक का नाम लिखा जाना अनिवार्य है। विशेष रेखांकन में चैक का भुगतान केवल उसी बैंक से लिया जा सकता है जिस बैंक का नाम रेखांकन में लिखा हो। यदि उसका खाता उस बैंक में नहीं हो तो उस बैंक में खाता खोलना पड़ेगा। बैंक के नाम अतिरिक्त साधारण रेखांकन में लिखे जाने वाले शब्द भी रेखाओं के बीच लिखे जा सकते हैं। विशेष रेखांकन चैक को और अधिक सुरक्षित बनाने के लिए किया जाता है। विशेष रेखांकन के नमूने नीचे दिए गए हैं :–

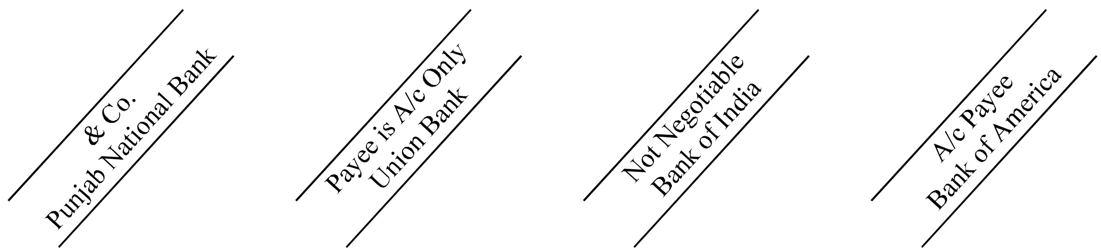

चैक का रेखांकन कौन कर सकता है

(Who may cross of Cheque)

(*i*) चैक के जारी होने से पहले उसका आहर्त्ता उस पर साधारण अथवा विशेष रेखांकन कर सकता है।

चैक के जारी होने के बादः

(*ii*) यदि चैक रेखांकित नहीं है, तो धारक उस पर साधारण अथवा विशेष रेखांकन कर सकता है।

(*iii*) यदि चैक पर साधारण रेखांकन है, तो धारक उस पर विशेष रेखांकन कर सकता है।

(*iv*) यदि चैक पर साधारण अथवा विशेष रेखांकन है, तो धारक उसमें 'अपरक्राम्य' शब्द और लिख सकता है।

(*v*) यदि चैक पर विशेष रेखांकन है, तो वह बैंक जिसके लिए वह रेखांकित है उस पर पुनः दूसरे बैंक का नाम, अपने एजेंट के रूप में, संग्रह कराने के लिए विशेष रेखांकन कर सकता है। (धारा 125)

रेखांकन में प्रयोग किए जाने वाले शब्दों का अर्थ

रेखांकन में प्रायः भिन्न शब्दों को प्रयोग होता है उनके अर्थ निम्नलिखित हैं :–

1. **एण्ड कम्पनी** (& Co.) – इन दोनों रेखाओं के बीच 'एण्ड कम्पनी' शब्द लिख दिया जाए अथवा इन दोनों रेखाओं को रिक्त छोड़ दिए जाए, दोनों का अर्थ एक समान है। इस शब्द के प्रयोग की एक प्रथा चली आ रही है, यद्यपि चैक के सम्बन्ध में इसका कोई विशेष अर्थ नहीं है।

2. **अविनिमय साध्य** (Not Negotiable) – चैक पर 'अविनिमय साध्य' शब्द लिख देने का अर्थ यह नहीं है कि उसका आगे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ है कि हस्तांतरण द्वारा चैक प्राप्त करने वाले व्यक्ति का जैसा ही अधिकार (Title) रहता है जैसा कि देने वाले का है। यदि हस्तांतरण करने वाले को अधिकार दूषित है तो पाने वाले का अधिकार भी दूषित होगा। चाहे उसने

   (*i*) पूर्ण सद्भावना से (Complete Good Faith),

   (*ii*) प्रतिफल के बदल (For Consideration),

   (*iii*) परिपूर्ण दशा में (In Complete Form), तथा

   (*iv*) परिपक्वता से पूर्व (Before Maturity) तथा प्राप्त किया हो। अतएव चैक पर लिखा 'अविनियम साध्य' शब्द उसके लेने वाले को सूचित करता है कि वह चैक को स्वीकार करने से पहले इस बात पर पता अवश्य लगा ले कि देने वाले का अधिकार कैसा है।

   यदि कोई व्यक्ति चैक को चुराक किसी अन्य व्यक्ति को दे देता है तो जिस व्यक्ति को चैक दिया जाता है वह उपरोक्त चारों शर्तों को पूरा करके चैक लेता है तो प्राप्तकर्ता को स्वामित्व ठीक माना जायेगा यद्यपि देने वाले को स्वामित्व दोषी

था। परन्तु चैक पर दो समानान्तर रेखाओं के बीच में 'Not Negotiable' लिख दिया हो तो पाने वाले व्यक्ति चाहे जितनी भी ईमानदारी (उपरोक्त चारों शर्तें पूरी करके) से चैक प्राप्त करे उसका भी चैक पर दूषित अधिकार ही होगा क्योंकि पाने वाले के हाथ में चोरी किया गया चैक था। अतः ऐसा चैक भी तभी लेना चाहिए जबकि देने वाला व्यक्ति ईमानदार व विश्वसनीय हो।

3. **केवल प्राप्तकर्ता के खाते में** (Account Payee Only) – इन शब्दों का स्पष्ट अर्थ है कि चैक का भुगतान पाने वाले व्यक्ति के खाते में जमा किया जाये अतः इसका भुगतान किसी अन्य व्यक्ति को नहीं किया जाना चाहिए। चैक के रेखांकन में "A/c Payee Only" शब्द लिखने से चैक का भुगतान अधिक सुरक्षित हो जाता है।

4. ".... **रुपयों से कम**" (Under Rupees....) – इन शब्दों के प्रयोग की एक पुरानी प्रथा चली आ रही है। इन शब्दों का अर्थ है कि चैक में लिखी रकम Under Rupees ...... से अधिक नहीं होगी। प्रायः ऐसा रेखांकन व्यापारी दान देते समय जब कोरा चैक देते हैं तब करते हैं।

चैक, विनिमय-विपत्र और प्रतिज्ञा-पत्र में तुलना

(Comparison among Cheque, Bill of Exchange and Promissory Note)

इन तीन पत्रों में कुछ बातें समान है तथा कुछ बातें एक–दूसरे से भिन्न है, जो इस प्रकार हैं :–

1. **समानता** (Similarity) – तीनों पत्रों में बहुत–सी बातें समान है जो इस प्रकार हैं :–
   - (*i*) तीनों पत्र लिखित होते हैं और उनके बनाने वालों द्वारा हस्ताक्षर किए होते हैं।
   - (*ii*) तीनों पत्र रुपयों में ही देय होते हैं – किसी अन्य रूप में नहीं।
   - (*iii*) तीनों ही पत्र शर्त रहित होते हैं।
   - (*iv*) तीनों की पत्रों में लिखित रकम एक निश्चित रकम होती है।
   - (*v*) तीनों ही पत्र केवल निश्चित व्यक्ति या निश्चित व्यक्ति के आदेशानुसार या वाहक को देय होते हैं – अन्य किसी को नहीं।

2. **भिन्नता** (Difference) – तीनों पत्रों में बहुत–सी बातें भिन्न हैं :–

अन्तर का आधार (Basis of Difference)	चैक (Cheque)	विनिमय विपत्र (Bill of Exchange)	प्रतिज्ञा–पत्र (Promissory Note)
(1)	(2)	(3)	(4)
1. पक्षकार (Parties)	इसमें तीन पक्ष होते हैं लिखने वाले, पाने वाला व देने वाला (बैंक)।	इसमें भी तीन पक्ष होते हैं–लिखने वाला, पाने वाला व देने वाला (कोई भी व्यक्ति)।	इसमें दो पक्ष होते हैं–लिखने वाला व पाने वाला।
2. भुगतान का आदेश (Order of Payment)	वह रुपया चुकाने का आदेश होता है किन्तु हमेशा बैंक पर ही।	यह भी रुपया चुकाने का आदेश होता है – किन्तु किसी पर भी।	यह रुपया अदा करने की प्रतिज्ञा होती है, आदेश नहीं।
3. स्वीकृति (Acceptance)	यह स्वीकृत नहीं होता केवल लिखने वाले के ही हस्ताक्षर होते हैं।	इसकी स्वीकृति देनदार से करायी जाती है।	इसको भी स्वीकार नहीं कराया जाता।
4. अवधि (Period)	यह मांग पर देय होता है।	यह दर्शनी व मुद्दती होता है।	यह भी दर्शन व मुद्दती होता है।
5. चलन (Circulation)	यह भीतरी चलन के काम आता है।	यह भीतरी चलन के अतिरिक्त विदेशी ऋण चुकाने में भी काम आता है।	यह भीतरी चलन के काम में आता है।
6. रेखांकन (Crossing	इसे रेखांकित किया जा सकता है।	इसे रेखांकित नहीं कर सकते।	इसे भी रेखांकित नहीं कर सकते।

(1)	(2)	(3)	(4)
7. गलती (Mistake)	इसमें यदि गलती हो जाए तो बैंक भुगतान नहीं देगा।	इसमें यदि गलती होने पर भी देनदार ने स्वीकार कर लिया है तो उसको भुगतान देने के लिए बाध्य किया जा सकता है।	इसमें गलती होने पर देनदार को बाध्य किया जा सकता है।
8. प्रस्तुत न किए जाने पर दायित्व (Liability if not presented in due Course)	यदि चैक के उपस्थित करने में देरी हो जाए तो इसके लेखक व बेचान करने वाले अपने दायित्व से मुक्त नहीं होते। यदि बैंक ही फेल हो जाए ते दूसरी बात है।	विपत्र यदि ठीक तिथि पर उपस्थित न किया जाए तो अन्य व्यक्ति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं।	इसमें भी देनदार अपने दायित्व से मुक्त नहीं होता है।

देशी व विदेशी विनिमय-साध्य लेखपत्र
(Inland and Foreign Instruments)

अधिनियम की धारा 11 के अनुसार एक विपत्र या बैंक भारत में ही लिखा जाए और किसी ऐसे व्यक्ति को देय हो या किसी ऐसे व्यक्ति के ऊपर लिखा जाए जो भारत में रहता है तो वह देशी लेखपत्र कहलाएगा। अतः इस प्रकार हम कह सकते है। कि देशी लेख–पत्र वह पत्र है जो (*i*) भारत में लिखा जाए तथा देय हो, या (*ii*) भारत में किसी व्यक्ति पर लिख जाए, यद्यपि किसी विदेश में देय हो। किन्तु एक प्रतिज्ञा–पत्र देशी लेखपत्र तभी कहा जा सकता है जब वह भारत में ही लिखा गया हो और भारत में ही देय हो क्योंकि प्रतिज्ञा–पत्र का आहार्यी (Drawee) नहीं होता। [धारा 11]

वे सभी लेख–पत्र जो देशी नहीं हैं, अधिनियम की धारा 12 के अनुसार विदेशी मान लिए गए हैं और एक लेख–पत्र हमेशा ही देशी लेख–पत्र माना जाता है तब तक इस पर पूर्णरूप से स्पष्टतया विपरीत न लिख दिया गया हो। [धारा 12]

देशी व विदेशी लेखपत्रों में एक अन्तर बहुत महत्वपूर्ण है और वह यह है कि यदि विदेशी लेख–पत्र अनादरित कर दिए जाएं तो उनके अनादर के लिए विरोध (Protest) किया जाना चाहिए। यदि उस जगह का अधिनियम ऐसे विरोध के लिए कहता है, जबकि देशी लेखपत्र के संबंध में ऐसे विरोध की आवश्यकता नहीं।

प्रचलित अवधि
(Usavances)

किसी एक देश में लिखे तथा दूसरे देश में देय विनिमय–पत्रों की अदायती हेतु निश्चित किए गए समय को प्रचलित अवधि कहा जाता है। यह अवधि संबंधित देशों की प्रथा के अनुसार निश्चित की जाती है, तथा अलग–अलग देशों में यह अवधि अलग–अलग होती है।

दर्शनी तथा मुद्दती विलेख
(Sight and Time Instrument)

धारा 21 के अनुसार प्रतिज्ञापत्र या विनियम पत्र में प्रयोग किए जाने वाले शब्दों, 'दर्शन पर' (At Sight) तथा 'प्रस्तुति पर' (On Presentment) का अर्थ 'मांग पर' (On Demand) होता है। मांग पर देय विलेखों को अदायगी के लिए किसी भी समय प्रस्तुत किया जा सकता है। मुद्दती विलेख से आशय भविष्य में किसी तारीख पर देय विलेख से है। यह विलेख मुद्दती तब कहा जायेगा जब वह :

(*i*) लिखे जाने की तारीख के पश्चात् किसी निश्चित समय पर देय हो, अथवा

(*ii*) दिखाने के एक निश्चित समय बाद देय हो; अथवा

(*iii*) किसी निश्चित रूप से घटने वाली घटना के घटित होने के निश्चित समय बाद देय हो।

नीचे लिखे विलेख मांग पर देय होते हैं :–

1. धारा 6 व 19 के अनुसार चैक हमेशा की मांग पर देय होता है तथा मांग के अतिरिक्त वह किसी अन्य प्रकार से देय नहीं हो सकता।
2. धारा 21 के अनुसार यदि एक प्रतिज्ञा–पत्र या विपत्र पर कुछ ऐसे शब्दों का उपयोग हो जैसे ''मांग करने पर'' (On Demand) या 'दर्शन' (At Sight) या 'उपस्थित होने पर' (On Presentation) तो ऐसा विलेख मांग पर देय होता है।
3. धारा 19 के अनुसार यदि प्रतिज्ञा–पत्र या विपत्र पर कोई भुगतान की तिथि न दी गई तो ऐसा विलेख भी मांग पर देया होगा।

'तिथी के बाद' (After Date) तथा 'दशर्न के बाद' (After Sight) के विनियम विपत्र में अन्तर माना गया है। यद्यपि दोनों दशाओं में अवधि दी हुई रहती है, जैसे 30 दिन दर्शन के बाद अथवा 30 दिन तिथि के बाद; फिर भी 'तिथि के बाद' की स्थिति में भुगतान की तिथि विलेख की तिथि से गिनी जाती है जबकि 'दर्शन के बाद' की स्थिति में विलेख के प्रस्तुत करने के दिन में भुगतान की तिथि गिनी जाती है।

संदिग्ध विलेख

(Ambiguous Instrument)

जब कोई विलेख इस प्रकार लिखा गया हो कि उसे प्रतिज्ञा–पत्र या विनिमय–पत्र दोनों की समझा जा सके, तो धारक अपनी इच्छा पर इसे दोनों में से कुछ भी मान सकता है, और उसके पश्चात विलेख उसी प्रकार व्यवहार में लाया जायेगा। ऐसे ही विलेख को 'संदिग्ध विलेख' कहते हैं। [धारा 17]

निम्नलिखित उदाहरण संदिग्ध विलेख के हैं :–

(*i*) जबकि किसी विनियम–पत्र का आहर्ता तथा आहार्यी एक ही व्यक्ति हो, जैसे किसी एजेंट द्वारा अपने ही नियोक्ता पर आहरित विनिमय–पत्र या तो विनिमय–पत्र या प्रतिज्ञा–पत्र के रूप में माना जा सकता है।

(*ii*) जबकि आहार्यी उपस्थित हो न हो अथवा एक कल्पित व्यक्ति हो। उदाहरण के लिए, 'अ' 'स' के लाभ के लिए 'ब' पर एक विनिमय–पत्र आहरित करता है। यदि 'ब' उपस्थित नहीं है, तो 'स' इस विलेख को या तो विनियम–पत्र या प्रतिज्ञा–पत्र मान सकता है। इसको विनिमय–पत्र मानना बेकार होगा, और इसलिए धारक को इसे 'अ' द्वारा लिखा हुआ एक पत्र प्रतिज्ञा–पत्र ही मानना चाहिये।

(*iii*) जबकि आहार्यी में अनुबंध करने की क्षमता न हो, जैसे किसी वयस्क पर आहरित किसी विनियम–पत्र को धारक प्रतिज्ञा–पत्र के रूप में समझ सकता है।

अपूर्ण स्टॉम्पयुक्त विलेख

(Inchoate Stamped Instrument)

जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को नियमानुसार स्टॉम्प लगाकर तथा हस्ताक्षर करके कोई पत्र प्रदान करता है, तथा या तो उसे पूर्ण रूप से खाली रखता है, या उस पर आंशिक विनिमय–साध्य विलेख के रूप में कुछ लिखकर प्रदान करता है तो ऐसा करने से वह उसके धारक को मूलतः यह अधिकार दे देता है कि स्टाम्प लगे हुए पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति द्वारा निर्धारित किसी रकम के लिए तथा जो स्टाम्प द्वारा सीमित रकम से 'अपरिपक्व स्टॉम्पयुक्त विलेख' कहते हैं। हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति ऐसे विलेख के लिए दायी होगा। किन्तु यदि उस व्यक्ति को जिसे विलेख सौंपा गया है स्टॉम्प द्वारा सीमित अधिकतम रकम लिखने से मना कर दिया गया है या उसमें एक निर्धारित कम रकम लिखने के लिए कहा गया है और यदि वह व्यक्ति उसमें स्टॉम्प द्वारा सीमित अधिकतम रकम लिख देता है, तो हस्ताक्षर करने वाले के विरूद्ध अधिकतम रकम के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता। इसका आशय यह है कि हस्ताक्षर करने वाला केवल उतनी ही रकम के लिए दायी है जितना विलेख के अन्तर्गत उसका देने का अभिप्राय था।

यदि वह व्यक्ति जिसे कोई अपूर्ण स्टॉम्प्युक्त विलेख दिया गया है, उसमें स्टॉम्प द्वारा सीमित अधिकतम रकम लिख देता है और इसको किसी यथाविधि धारी को हस्तान्तरित कर देता है, ऐसा धारण (यथाविधिधारी) अच्छा अधिकार पा लेगा और वह मूल हस्ताक्षर करने वाले अथवा विलेख पर दायी अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध उसकी पूरी रकम के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है, यद्यपि हस्ताक्षर करने वाले का अभिप्राय विलेख के अन्तर्गत उतनी रकम देने का नहीं था। उदाहरण के लिए, 'अ' अपने

हस्ताक्षर करके स्टॉम्पयुक्त एक पत्र 'ब' को देता है और उसे उस पर 500 रुपये से अधिक रकम न लिखने का आदेश है, और 'ब' उस पर 1,000 रुपये लिख देता है (जो कि स्टॉम्प के अधीन है), तो 'ब', 'अ' पर 1,000 रुपये के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता। परन्तु यदि 'ब' उस विलेख को 'स' के लिए, जो यथाविधिधारी है, हस्तान्तरित कर देता है, तो 'स' पूरी तरह रकम के लिए अच्छा स्वत्व प्राप्त कर लेता है, केवल 500 रुपये के लिए ही नहीं। [धारा 20]

इस विषय में निम्नलिखित तत्व महत्वूपर्ण हैं :

1. इस प्रकार हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति का दायित्व उस समय तक उत्पन्न नहीं होता जब तक कि विलेख पूर्ण नहीं कर लिया गया है।
2. हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति को दायी होने के लिए एक आवश्यक शर्त यह हे विलेख उसके द्वारा वास्तव में सुपुर्द किया गया है। यदि वह चोरी कर लिया गया है तो उसका दायित्व नहीं होता वह यथाविधिधारी के प्रति दायी हो सकता है।
3. जब हस्तान्तरिती को यह अधिकार दे दिया जाता है कि उसमें कोई निर्दिष्ट रकम लिखकर उसे पूर्ण कर ले और वह उसमें उस रकम से अधिक रकम लिख देता है, तो हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति दायी न होगा। यथाविधिधारी के प्रति वह दायी हो सकता है, यदि रकम स्टॉम्प के अधीन लिखी गई है।

संदिग्ध एवं अपूर्ण विलेख में अन्तर (Distinction between Ambiguous and Inchoate Instrument) – न्यायालय संदिग्ध विलेखों का उदारतापूर्वक समर्थन करता है, अपूर्ण विलेख के धारक को केवल अपूर्ण को पूर्ण करने का अधिकार प्रदान करता है, और जब तक विलेख पूर्ण नहीं हो जाता, कोई भी दायित्व उत्पन्न नहीं होता। संदिग्ध विलेख पूर्ण तथा नियमित होता है और उसका धारक उसे प्रतिज्ञा–पत्र अथवा विनिमय–पत्र समझ सकता है, किन्तु अपूर्ण विलेख अपूर्ण होता है और जब तक वह पूर्ण नहीं हो जाता वह वैधानिक विलेख के रूप में हस्तांतरित नहीं किया जा सकता।

परिपक्वता

(Maturity)

परिवक्वता एक ऐसी तिथि को कहते हैं जिन पर लेख–पत्र का भुगतान देय होता है। किसी प्रतिज्ञा–पत्र अथवा विनिमय–पत्र की परिपक्वता का आशय उस तिथि से है जिस पर वह देय होता है।'' भुगतान की तिथि के दष्टिकोण में विलेख दो प्रकार के होते हैं – (*i*) मांग पर देय (Payable on Demand) अथवा (*ii*) एक निर्दिष्ट समय के बाद देय (Payable after a specific period) हो सकते हैं। जहां तक मांग पर देय विलेखों का संबंध है उसकी परिपक्वता का प्रश्न ही नहीं उठता। वे उसी दिन दायी हो जाते हैं जिस दिन उन्हें भुगतान के लिए उत्तरदायी पक्षकार के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। परिपक्वता का प्रश्न केवल ऐसे ही विलेखों के संबंध में उठता है जो कि निर्धारित समय के पश्चात देय होते हैं। ऐसे विलेख 'तिथि के पश्चात्' (After Date) अथवा 'दर्शाने के पश्चात' (After Sight) अथवा 'किसी घटना के पश्चात' (After a certain event) निर्धारित समय पर देय हो सकते हैं, और ऐसे विलेखों की परिपक्वता के संबंध में निम्नलिखित नियम हैं :

1. प्रत्येक ऐसे प्रतिज्ञा–पत्र अथवा विनिमय–पत्र जो मांगने पर अथवा दर्शाने पर अथवा प्रस्तुत किये जाने पर देय नहीं होते, उनकी परिपक्वता की तिथि निर्धारित करते समय उसके भुगतान की तिथि में तीन दिन जोड़ दिये जाते हैं। ये तीन दिन 'अनुग्रह के दिन' (Days of Grace) कहे जाते हैं। प्रत्येक विलेख का लेखक अथवा स्वीकर्ता इनका अधिकारी होता है। यदि ऐसा विलेख किस्तों में देय होता है, तो प्रत्येक किस्त के साथ अनुग्रह के तीन दिन दिये जाते है। यदि किस्तें मांग पर देय होती है तो उसके लिए कोई भी अनुग्रह के दिन नहीं दिये जाते। यही कारण है कि चैक की दशा में अनुग्रह के दिन नहीं मिलते क्योंकि चैक हमेशा ही मांग पर देय होते हैं। [धारा 22]
2. किसी ऐसे विलेख की परिपक्वता की तिथि निर्धारित करते समय जो 'उसकी तिथि के पश्चात' अथवा उसकी स्वीकृति के पश्चात् (After Date or After Sight) कुछ महीनों के बीतने पर देय है, तो अवधि के महीने के उस दिन समाप्त हुई मानी जायेगी जोकि उस दिन से मिलता है जिस दिन की विलेख लिखा गया था अथवा प्रस्तुत किया गया था। यदि ऐसे किसी विनिमय–पत्र की प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृति की गई है, तो उसकी अवधि इस प्रकार की स्वीकृति के दिन से गिनी जाती है, न कि उस दिन से जिस दिन उसकी अस्वीकृति के लिए नोटिंग होता है। यदि उस महीने में जिसमें अवधि उस महीने के अन्तिम दिन समाप्त हुई मानी जायेगी। उदाहरण के लिए, 29 जनवरी, सन् 1997 को लिखा गया एक विलेख तिथि से 1 माह पश्चात् देय है यहां क्योंकि फरवरी में 29 तारीख नहीं होती, अतएव भुगतान उसके अन्तिम दिनांक अथवा 28 फरवरी + 3 दिन अर्थात् 3 मार्च सन् 1997 को देय होगा। [धारा 23]

यहां पर यह स्पष्ट हो जाना भी आवश्यक है कि परिपक्वता की तिथि की गणना करते समय सर्वदा ब्रिटिश कैलेण्डर पर अनुसरण करना चाहिए और इस संबंध में मास का तात्पर्य कैलेन्डर मास से होता है, चन्द्र मास से नहीं।

उपर्युक्त सभी दशाओं में लेखपत्र के लिखने की तिथि या स्वीकृति के लिए उपस्थिति का दिन या घटना घटित होने का दिन भुगतान की तिथि निकालने के लिए गिना जाता। [धारा 24]

उदाहरण – एक लेखपत्र 30 अगस्त, 1991 के लिखा गया है और तिथि के तीन माह बाद देय किया गया है तो ऐसी दशा में भुगतान की तिथि क्या होगी, अर्थात् लेखपत्र की परिपक्वता भुगतान के लिए कब होगा, यह जानने के लिए हमको तीन महीने बाद की यही तिथि ले लेनी चाहिए, अर्थात् 30 नवम्बर और उसमें अनुग्रह के 3 दिन जोड़ देने चाहिएं जिसके परिणामस्वरूप भुगतान की तिथि 3 दिसम्बर, 1991 हो जाएगी। यहां 30 नवम्बर इसलिए लिया गया है क्योंकि लेखपत्र 30 अगस्त को ही लिखा गया था और धारा 23 के अनुसार वही तिथि लेनी होती है, अतः हमने यहां 30 नवम्बर लिया है।

विनियमसाध्य लेख-पत्रों के पक्ष

(Parties to Negotiable Instruments)

तीनों प्रकार के लेख–पत्रों के पक्ष निम्न प्रकार हैं –

A **प्रतिज्ञा-पत्र के पक्ष** (Parties to a Promissory Note) –

1. **निर्माता** (The Maker) – यह वह व्यक्ति होता है जो प्रतिज्ञा–पत्र लिखता है, जिसमें वह किसी दूसरे व्यक्ति से एक निश्चित रकम का भुगतान करने की प्रतिज्ञा करता है।
2. **भुगतान करने वाला** (Payee) – वह व्यक्ति होता है जिसे प्रतिज्ञा–पत्र का भुगतान पाना होता है।
3. **धारक** (Holder) – प्रतिज्ञा–पत्र को धारण करने वाला व्यक्ति धारक कहलाता है।
4. **बेचानकर्ता** (Endorser) – जब प्रतिज्ञा–पत्र का धारक प्रतिज्ञा–पत्र का बेचना दूसरे व्यक्ति के नाम करता है तो वह बेचानकर्ता कहलाता है।
5. **जिसके नाम बेचान किया गया** (Endorsee) – वह व्यक्ति होता है जिसके नाम प्रतिज्ञा–पत्र का बेचान किया जाए।

B. **विनिमय विपत्र के पक्ष** (Parties to a Bill of Exchange) –

1. **लिखने वाला** (Drawer) – विपत्र का लिखने वाला Drawer कहलाता है।
2. **देनदार** (Drawee) – वह व्यक्ति जिस पर विपत्र लिखा जाता है।
3. **स्वीकर्त्ता** (Acceptor) – वह व्यक्ति जो विपत्र का देनदार होता है और जो लेखक द्वारा भेजे गए विपत्र को स्वीकार करता है।
4. **लेनदार** (Payee) – वह व्यक्ति जिसे विपत्र की रकम भुगतान की जाती है।
5. **धारक** (Holder) – वह व्यक्ति जो विपत्र का धारक होता है तथा जिसे भुगतान लेने का अधिकार होता है।
6. **पष्ठांकक** (Endorser) – विपत्र का वह धारक जो विपत्र को अन्य व्यक्ति के नाम पर पष्ठांकित कर देता है।
7. **पष्ठांकिती** (Endorsee) – वह व्यक्ति जिसके नाम में पष्ठांकन किया जाता है।
8. **आवश्यकता की दशा में देनदार** (Drawee in case of need) – उपर्युक्त पक्षों के अतिरिक्त आहर्ता यदि चाहे तो किसी ऐसे व्यक्ति का नाम भी दे सकता है जो आवश्यकता पड़ने पर देनदार बनाया जा सके। ऐसे व्यक्ति को ही "आवश्यकता के समय आहार्यी" (Drawee in case of need) कहते हैं। ऐसे व्यक्ति का नाम या तो आहर्ती द्वारा या किसी बेचना करने वाले के द्वारा इसलिए दिया जा सकता है कि यदि विपत्र अस्वीकृत (Non-acceptance) या भुगतान न करके (Non-payment) अनादरित कर दिया जाए तो ऐसी दशा में ऐसे व्यक्ति की सहायता ली जा सकती है।
9. **प्रतिष्ठा के लिए स्वीकारक** (Accetor for honour) – कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से विपत्र के स्वीकारक के रूप में एक पक्ष बन सकता है जब एक लिखित पत्रों को प्रमाणित करने वाले अफसर (Notary) द्वारा कोई अच्छी जमानत मांगी जाती है, जब विपत्र को मुख्य आहार्यी (Drawee) अस्वीकार कर देता है तो तीसरा व्यक्ति आहार्ती

या बेचान करने वाले की प्रतिष्ठा के लिए ऐसे विपत्र को स्वीकार कर लेता है। ऐसे व्यक्ति को प्रतिष्ठा के लिए स्वीकारक कहते हैं।

C. **चैक के पक्ष** (Parties to a Cheque) –

1. **लेखक** (Drawer) – वह व्यक्ति जो चैक लिखता है।
2. **देनदार** (Drawee) – वह सदैव बैंक होता है जिस पर चैक लिखा जाता है।
3. **लेनदार** (Payee) – वह व्यक्ति जिसको भुगतान मिलना है।
4. **धारक** (Holder) – वह व्यक्ति जो चैक पर कब्जा पाने का अधिकारी है।
5. **बेचानकर्ता** (Endorser) – वह व्यक्ति जो चैक का बेचान करता है।
6. **जिसके नाम बेचान किया गया** (Endorsee) – ये सब उसी प्रकार होते हैं जिस प्रकार कि प्रतिज्ञा पत्र अथवा विपत्र में।

विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारी
(Holder of a Negotiable Instrument)

विनियमसाध्य लेख–पत्र के संबंध में धारी तीन प्रकार का होता है – 1. धारी (Holder), 2. अहार्यधारी (Holder for Value) और 3. यथाविधिधारी (Holder in due Course)।

1. **धारी** (Holder) – धारा 8 के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो किसी भी विनिमय–साध्य लेखपत्र का अधिकार (Possession) पाने का अधिकारी हो और लेख–पत्र के पक्षों से राशि प्राप्त करने या वसूल करने का अधिकारी हो वह धारी या धारक कहलाता है। यदि कोई लेखपत्र अर्थात् प्रतिज्ञा–पत्र या विपत्र या धनादेश गुम हो जाए अथवा नष्ट हो जाए तो खो जाने या नष्ट हो जाने के समय जिस व्यक्ति का अधिकार था वही व्यक्ति उसका धारक या धारी समझा जाएगा। इसी को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि प्रतिज्ञा–पत्र या विपत्र या धनादेश के ''वैध स्वामी'' को ही धारक या धारी कहते हैं।

2. **अहार्यधारी** (Holder for value) – अहार्यधारी ऐसे व्यक्ति को कहते हैं जिसके पास लेख पत्र है और उस लेख पत्र के लिए मूल्य अदा किया जा चुका है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि मूल्य उसी व्यक्ति ने चुकाया हो। जैस यदि 'अ' एक 10,000 रू. का धनादेश पाता है तो उसे अपने एक ऋण के बदले में मिला है और 'अ' इस धनादेश को एक मन्दिर बनवाने के लिए दान के रूप में देता है तो ऐसी दशा में 'अ' ने तो धनादेश के लिए मूल्य चुकाया है किन्तु मंदिर के संचालन ने नहीं चुकाया। किन्तु यहां मंदिर का संचालक फिर भी धनादेश का अर्हायधारी कहलाएगा।

3. **यथाविधिधारी** (Holder in due course) – धारा 9 के अनुसार, 'यथाविविधारी उस व्यक्ति को कहते हैं जो प्रतिफल के बदले में विनिमयसाध्य लेखपत्रों को उनकी परिपक्वता (Maturity) से पहले बिना इस बात की जानकारी के कि हस्तान्तरक के अधिकार में कुछ दोष है, प्राप्त कर लेता है। यदि विनिमयसाध्य लेख–पत्र वाहक है। किन्तु यदि विनिमय–साध्य लेखपत्र आदेशानुसार देय हो तो यह व्यक्ति अदाता (Payee) का पष्ठांकिती (Endorsee) होना चाहिए। इससे पहले कि एक व्यक्ति अपने आपको यथाविधिधारी कहे उसको कुछ शर्तें पूरी करनी होंगी, जो निम्न हैं –

   (a) यदि लेखपत्र वाहक को देय हो तो उस पर स्वामित्व या अधिकार अवश्य ही प्राप्त होना चाहिए। यदि लेखपत्र आदेशानुसार देय हो तो उसका अदाता या पष्ठांकिती अवश्य होना चाहिए – दूसरे शब्दों में , यह कहा जा सकता है कि उस व्यक्ति को धारक या धारी अवश्य ही होना चाहिए।

   (b) विनिमयसाध्य लेखपत्र में लिखी हुई धनराशि के देय होने से पहले ही अर्थात् लेखपत्र की परिपक्वता से पहले ही उस व्यक्ति को उसका धारी या धारक अवश्य ही बन जाना चाहिए।

   (c) उसे प्रतिफल के लिए ही धारक होना चाहिए। अर्थात् उसने प्रतिफल दे दिया हो, क्योंकि बिना प्रतिफल के कोई भी व्यक्ति यथाविधिधारी नहीं हो सकता – वह केवल साधारण धारक ही रहेगा। जैसे यदि 'अ' सनातन धर्म

कॉलेज के हित के लिए एक 5,000 रू. का धनादेश दान के रूप में दे, तो यहां सनातन धर्म कॉलेज के संचालक ऐसे धनादेश के केवल धारक या धारी कहलाएंगे – यथाविधिधारी नहीं, क्योंकि उन्होंने धनादेश के बिना प्रतिफल के पाया है।

(d) उस व्यक्ति को यह विश्वास होना चाहिए कि जिस व्यक्ति से अपना हक या अधिकार प्राप्त किया है उस व्यक्ति का अधिकार या हक पूर्णरूप से दोषमुक्त था या दूषित होने के पर्याप्त कारण की कोई गुंजाइश नहीं थी।

यथाविधिधारी के विशेष अधिकार (Special privileges of a holder in due course) – एक यथाविधिधारी को अधिनिमय द्वारा कुछ विशेष अधिकार दिए गए हैं तो निम्न प्रकार हैं –

1. **श्रेष्ठ अधिकार की प्राप्ति** (To possess better title free from all defects) – यथाविधिधारी को उसके पहले पक्षों के अधिकार में किसी दोष के होने पर भी लेखपत्र पर निर्दोष और अच्छा अधिकार मिला जाता है और इस प्रकार वह लेखपत्र की धनराशी का वसूल करने के लिए उसके पहले पक्षों पर वाद प्रस्तुत करने का अर्थात् दावा करने का पूरा अधिकारी है।

2. **स्टॉम्पयुक्त तथा अपूर्ण लेख** (Right in case of Inchoate Instrument) – जब एक व्यक्ति किसी लेख–पत्र पर मुद्रांक लगाकर, हस्ताक्षर करके और उसमें बिना कुछ लिखे अर्थात् अपूर्ण (Inchoate) लेखपत्र के रूप में दे दे तो वह यथाविधिधारी के विरूद्ध यह नहीं कह सकता कि लेखपत्र उसके आदेशानुसार पूरा नहीं किया गया है। [धारा 20]

3. **पूर्व पक्षों का दायित्व** (Liability of Prior Parties) – एक लेख–पत्र का प्रत्येक पहला पक्ष जैसे बनाने वाला या आहर्ता (Drawer) या स्वीकर्ता एवं तमाम बीच के बेचान करने वाले, यथाविधिधारी के प्रति उस समय तक दायी रहते हैं जब तक लेख–पत्र का भुगतान उचित रूप में न हो जाए अर्थात् बनाने या स्वीकार करने वाले के द्वारा परिपक्वता पर या उसके बाद भुगतान कर दिया जाए। [धारा 36]

4. **कृत्रिम विपत्र** (Fictitious Bill) – जब एक विपत्र किसी बनावटी नाम में लिखा गया है और उसी व्यक्ति द्वारा वह बेचान किया गया हो तो ऐसे विपत्र का स्वीकारक यथाविधिधारक के विरूद्ध यह नहीं कह सकता कि यह नाम तो बनावटी था। [धारा 42]

5. **शर्तरहित सुपुर्दगी** (Conditional Delivery) – जब एक लेखपत्र एक यथाविधिधरी को हस्तांतरित कर दिया गा है तो लेख–पत्र के दायित्व से बचने के लिए दूसरे पक्ष यहीं कह सकते हैं कि लेख–पत्र का दायित्व तो शर्तरहित था या किसी ध्येय के लिए किया गया था। [धारा 46 धारा 47]

6. **सभी दोषों से मुक्त विलेख** (Free from all defects) – चाहे लेखपत्र का हस्तान्तरण लेख–पत्रों के आपस में पक्षों में कपट द्वारा ही किया गया हो किन्तु यदि वह लेखपत्र यथाविधिधारी के पास पहुंच जाए तो यह तमाम त्रुटियों से अलग हो जाता है। इसलिए अब यथाविधिधारी जिस व्यक्ति को भी लेखपत्र देगा वह व्यक्ति इस लेखपत्र को सभी त्रुटियों से मुक्त के रूप में लेगा जब तक कि वह लेनेवाला व्यक्ति स्वयं ही त्रुटि से संबंधित न हो। [धारा 53]

7. **गैर कानूनी तरीकों से अथवा गैर कानूनी प्रतिफल के बदले प्राप्त किये गये लेख** (Right in case of instrument obtained by unlawful means or for unlawful consideration) – कोई भी व्यक्ति हो लेख–पत्र के प्रति दायी है वह यथाविधिधारियों के विरूद्ध यह नहीं कह सकता कि वह लेखपत्र तो खो गया था या उसे कपटपूर्ण या अवैध प्रतिफलस्वरूप या अन्य किसी अपराध द्वारा प्राप्त किया गया था। [धारा 58]

8. **प्रत्येक धारी यथाविधिधारी होता है** (Every holder is also a holder in due course) – प्रत्येक धारी या धारक यथाविधिधारी होता है जब तक कि कुछ विरोध प्रमाणित न हो – ऐसा अनुबंध का अनुमान है। [धारा 118]

9. **प्रलेख की वैधानिकता को नकारने पर निषेध** (Estoppel against denying original validity of instrument) – प्रतिज्ञा–पत्र का बनाने वाला और विपत्र का आहार्ता या धनादेश का आहार्ता और बिल का प्रतिष्ठा के लिए स्वीकारक – ये सब यथाविधिधारी द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर लेख–पत्र की प्रमाणिकता या वैधानिकता (Validity) को अस्वीकार नहीं कर सकते। [धारा 120]

10. **आदाता की बेचान करने की क्षमता को अस्वीकार करने पर** (Estoppel against denying capacity of payee to endorsee) – यथाविधिधारी द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर प्रतिज्ञा–पत्र का लिखने वाला और आदेश पर देय बिल का स्वीकारक आदाता की क्षमता को अस्वीकार नहीं कर सकते। [धारा 21]

धारक और यथाविधिधारी में अन्तर
(Difference between Holder and Holder in due Course)

आधार	धारक	यथाविधिधारी
(1)	(2)	(3)
1. आवश्यकता	धारक के लिये यथाविधिधारी होना आवश्यक नहीं है।	यथाविधिधारी के लिए धारक होना आवश्यक है।
2. प्रतिफल	प्रतिफल आवश्यक नहीं है।	प्रतिफल के बदले ही लेख–पत्र प्राप्त करना चाहिए।
3. परिपक्वता	परिपक्वता के बाद भी कोई व्यक्ति धारक बन सकता है।	लेख–पत्र परिपक्वता से पहले ही प्राप्त होना आवश्यक है।
4. अधिकार	धारक का अधिकार हस्तान्तरक के अधिकार के समान होता है।	यथाविधिधारी का अधिकार हस्तान्तरक के अधिकार से बेहतर (श्रेष्ठ) होता है।

विनिमयसाध्य लेखपत्र के पक्षों का दायित्व
(Liabilities of Parties to Negotiable Instrument)

विनिमयसाध्य लेख–पत्र के पक्षों का दायित्व क्रमशः निम्न प्रकार है –

1. **प्रतिज्ञा-पत्र के लेखक का दायित्व** (Liability of maker of a Promissory Note) – प्रतिज्ञा–पत्र का लेखक धारक द्वारा मांगने पर प्रतिज्ञा–पत्र में दी गई रकम को परिपक्व होने पर देने के लिए उत्तरदायी है। यदि वह ऐसा करने में कोई त्रुटि करता है तो इसके कारण पक्षों को होने वाली हानि की पूर्ति के लिए भी वह दायी होगा। [धारा 32]

2. **विपत्र के लेखक का दायित्व** (Liability of Drawer of a Bill of Exchange) – धारा 30 के अनुसार विपत्र को लेखक प्रारम्भिक रूप से दायी नहीं होता, वह तो इस बात का उत्तरदायित्व लेता है विपत्र जब स्वीकृति के लिए उपस्थित किया जाएगा तो (Drawee) उसे स्वीकार करेगा और परिपक्वता पर भुगतान के लिए उपस्थित किया जाएगा तब वह (Drawee) उसका भुगतान कर देगा। ऐसी दशा में अगर Drawee विपत्र को स्वीकार नहीं करता अथवा स्वीकृति के बाद उसका भुगतान नहीं करता, तो विपत्र का लेखक किसी भी वास्तविक धारक को उसका भुगतान करने के लिए दायी नहीं है। परन्तु इसके लिए यह भी आवश्यक है कि अनादरण (Dishonour) की सूचना लेखक को दे दी जाए अथवा उसको मालूम हो गई हो। [धारा 30]

   Miller Vs. The National Bank of India के मामले में निर्णय दिया गया कि अनादर की सूचना लेखक को अवश्य मिलनी चाहिए तथा जब तक लेखक को इस प्रकार की सूचना नहीं दी जाती तब तक उसके विरूद्ध विपत्र का धारक कोई कार्यवाही नहीं कर सकता।

3. **चैक के लेखक का दायित्व** (Liability of Drawer of a cheque) – यदि किसी चैक को बैंक अनादरित कर देता है अथवा उसका भुगतान नहीं करता तो चैक का लेखक उसके धारक को उसका भुगतान करने के लिए बाध्य है। परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि अनादरण की सूचना लेखक को दे दी जाए अथवा उसको मालूम हो गया हो। इस विषय में उपर्युक्त Miller Vs. The National Bank of India का लीडिंग केस ध्यान देने योग्य है। [धारा 30]

4. **विपत्र के स्वीकर्ता का दायित्व** (Liability of acceptor of a bill) – किसी विनिमय–पत्र का आहार्ती विनियम–विपत्र को स्वीकार करन के लिए बाध्य नहीं है और स्वीकार कर देने पर उसका कोई भी दायित्व नहीं होता। परन्तु जब वह उसे स्वीकार कर लेता है तो वह अपनी स्वीकृति की अवधि के अनुसार भुगतान करने के लिए बाध्य हो जाता है। फिर ऐसे भुगतान में त्रुटि करने पर वह विनिमय विपत्र के किसी भी पक्षकार को पहुंची ऐसी हानि की पूर्ति के लिए बाध्य है तो ऐसी त्रुटि के कारण हुई हो। [धारा 32]

5. **चैक के देनदार का दायित्व** (Liability of Drawee of a Cheque) – एक बैंक को, जिसके ऊपर चैक लिखा गया हो, चैक का भुगतान उसी प्रकार कर देना चाहिए जब चैक भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाए बशर्ते चैक के लिखने वाले के खाते में बैंक के पास पर्याप्त धनराशि जमा है। यदि बैंक बिना किसी उचित कारण के चैक का भुगतान करने से इंकार कर देता है तो वह ग्राहक के प्रति हर्जाने के लिए उत्तरदायी होगा। [धारा 31]

6. **पष्ठांकन का दायित्व** (Liability of endorser) – बेचान करने वालों का दायित्व भी ठीक ऐसे ही है जैसे लेखपत्रों के लिखने वालों का। एक व्यक्ति जो एक विनिमयसाध्य लेखपाल को परिपक्वता से पहले बेचान करके हस्तान्तरित कर देता है और अपने दायित्व को सीमित नहीं करता, तो ऐसी दशा में वह प्रत्येक दूसरे (Subsequent) धारी के प्रति उत्तरदायी होगा, यदि लेखपत्र अनादरित कर दिया जाए, बशर्तें अनादरण की सूचना ऐसे बेचान करने वाले को दे दी गई है अथवा मिल गई है। [धारा 35]

7. **पूर्व पष्ठांकित विनिमय विपत्र का स्वीकर्ता बाध्य है , यद्यपि पष्ठांकन जाली था** – किसी पूर्व पष्ठांकित (अर्थात् जो स्वीकृति से पूर्व पष्ठांकित किया जा चुका है) विनियम–पत्र का स्वीकर्ता इस आधार पर कि उक्त पष्ठांकन जाली है , अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता, यदि विनिमय–विपत्र को स्वीकार करते समय उसे पष्ठांकन के जाली होने का ज्ञान था अथवा ऐसा विश्वास करने के लिए आधार था। [धारा 41]

8. **कल्पित नाम में आहर्त्ता की आशा पर देय विनिमय विपत्र** – जब कोई विनियम विपत्र किसी कल्पित नाम में आहर्त्ता की आज्ञा पर देय हो और उसी व्यक्ति द्वारा आहर्त्ता के हस्ताक्षर के रूप में पष्ठांकित किया गया हो तो स्वीकर्ता यथाविधिधारी के विरूद्ध यह नहीं कह सकता कि उक्त नाम कल्पित है। [धारा 42]

9. **पूर्व पक्षकारों का दायित्व** (Liability of prior-parties) – प्रत्येक पक्ष का दायित्व एक दूसरे यथाविधिधारी के प्रति उस समय तक चालू रहता है जब तक लेखपत्र का उचित रूप में भुगतान न हो जाए। इसलिए हर पहला पक्ष दूसरे पक्ष के प्रति उस समय तक उत्तरदायी रहता है जब तक दायित्व अन्तिम भुगतान द्वारा समाप्त न हो जाए।

परक्रामण (साध्यता)

(Negotiation)

परक्रामण शब्द का अर्थ है – जब किसी प्रतिज्ञा–पत्र, विपत्र या चैक का किसी व्यक्ति को उसका धारी या धारक बनाने के लिए हस्तांतरण कर दिया जाता है तो ऐसे हस्तान्तरण को लेखपत्र का पराक्रामण (Negotiation) कहते हैं। धारा 14 के अनुसार – ''साध्यता का अर्थ विनिमयसाध्य लेखपत्र के धारक के अधिकार, स्वामित्व एवं हित के हस्तांतरण से है ताकि हस्तान्तरिती को अच्छा अधिकार मिले और यथाविधिधारक बन चाहे हस्तान्तरणकर्ता का अधिकार दोषपूर्ण भी हो। लेकिन सिवाय ऐसी स्थिति में जब लेखपत्र आदेश पर देय हो और धारक के हस्ताक्षर जाली हों या लेखपत्र शुरू से ही व्यर्थ हो या अपूर्ण लेखपत्र चोरी होने के बाद हस्तान्तरित किया गया हो और जो लेखक द्वारा न दिया गया हो।''

अतः यदि हम इस परिभाषा को विश्लेषणात्मक दष्टि से देखें तो यह ज्ञात होगा कि पराक्रमण के अन्तर्गत दो बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं, जो इस प्रकार हैं –

(*i*) लेख–पत्र का किसी व्यक्ति को हस्तान्तरण किया जाना चाहिए ताकि हस्तान्तरिती को अच्छा अधिकार मिले और वह यथाविधिधारक बन चाहे हस्तान्तरणकर्ता का अधिकार दोषित भी हो।

(*ii*) जब लेखपत्र का हस्तांतरण परक्रामण के अन्तर्गत किया जाता है तो हस्तान्तरिती को लेखपत्र का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है और उसे अपने नाम में उस लेखपत्र की रकम को प्राप्त करने का अधिकार मिल जाता है। लेखपत्र पर जाली हस्ताक्षर न हों या वह व्यर्थ न हो या अपूर्ण लेखपत्र चोरी के बाद हस्तान्तरित नहीं हुआ हो।

समर्पण और परक्रामण में अंतर

(Distinction between Assignment & Negotiation)

एक विनिमय साध्य लेखपत्र का हस्तान्तरण केवल परक्रामण द्वारा ही हो, यह आवश्यक नहीं, बल्कि एक अभिहस्तांकन या समर्पण (Assignment) द्वारा भी किया जा सकता है, जैसे कि सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम (Transfer of Property Act) के अन्तर्गत एक साधारण वस्तु हस्तान्तरित की जाती है किन्तु परक्रामण और अभिहस्तान्तरण दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं अर्थात् दोनों में अन्तर है जो निम्न प्रकार है –

1. **हस्तान्तरण के लिए आवश्यकता** (Need of Transfer) – पराक्रमण में पष्ठांकन या बेचना तथा सुपुर्दगी (Endorsement) की आवश्यकता होती है जबकि अभिहस्तांकन में हस्तांतरण करने वाले के हस्ताक्षरों सहित एक लिखित प्रलेख की आवश्यकता होती है।

2. **सूचना की आवश्यकता** (Need of Notice) – अभिहस्तांकन को पूर्ण (Complete) एवं प्रभावशाली (Effective) बनाने के लिए हस्तान्तरिती का यह कर्त्तव्य है कि वह कर्जदार को सूचित करे जिससे हस्तान्तरिती का अधिकार लेखपत्र पर पूरा माना जा सके जबकि पराक्रमण में इस प्रकार की किसी सूचना की कोई आवश्यकता नहीं।

3. **श्रेष्ठ अधिकार की प्राप्ति** (Attainment of better title) – पराक्रमण की दशा में हस्तान्तरित को यथाविधिधारी के रूप में लेखपत्र पर निर्दोष और अच्छा (Free from defects) अधिकार प्राप्त हो जाता है चाहे हस्तान्तरण करने वाले का अधिकार (title) दोषपूर्ण हो जबकि अभिहस्तांतरण की दशा में ऐसा नहीं अर्थात् यदि हस्तान्तरण करने वाले का अधिकार दोषपूर्ण है तो हस्तान्तरिती का अधिकार भी दोषपूर्ण होगा।

4. **प्रतिफल का उल्लेख** (Presence of Consideration) – पराक्रमण की दशा में प्रतिफल की मान्यता पहले ही मान ली जाती है (Consideration is presumed) परन्तु अभिहस्तांकन में प्रतिफल की विद्यमानता को सिद्ध करना होता है।

परक्रामण कौन कर सकता है ?

(Who can Negotiate?)

धारा 151 के अनुसार, लेख–पत्र का बनाने वाला (Maker), लिखने वाला (Drawer), आदाता (Payee), जिनके नाम बेचान किया गया हो (Endorse) यदि परक्रामण पर कोई नियंत्रण न लगा दिया गया हो, पराक्रमण कर सकते हैं। यदि किसी लेखपत्र में उपर्युक्त प्रकार के एक से अधिक व्यक्ति हों तो ऐसी दशा में उन सबको एक साथ लेखपत्र का बनाना (Making), लिखना (Drawing) या बेचान (Endorsing) करना चाहिए। इसी के साथ–साथ यह भी आवश्यक है कि उन सब व्यक्तियों को, जो पराक्रमण कर सकते हैं, वैध रूप से विलेखधारी होना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति को लेखपत्र चोरी, छलकपट या अनुचित प्रभाव द्वारा प्राप्त हुआ हो तो ऐसी दशा में वह व्यक्ति लेख–पत्र का धारक नहीं कहा जा सकता और उसको लेखपत्र के परक्रामण का अधिकार भी नहीं मिल सकता।

परक्रामण के ढंग (Modes of Negotiation) – यह निम्न ढंग से किया जा सकता है –

1. **सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण** (Negotiation by Delivery) – एक लेखपत्र, वाहक को देय (Payable to bearer) होता है। उसका परक्रामण केवल सुपुर्दगी द्वारा ही किया जा सकता है। [धारा 47]

   टिप्पणी —

   1. यह सुपुर्दगी वास्तविक या रचनात्मक हो सकती है। [धारा 46]
   2. जब लेखपत्र की सुपुर्दगी किसी ऐसी शर्त के साथ क गई हो कि इस लेखपत्र का पराक्रमण केवल तभी प्रभावशाली होगा जब एक निश्चित घटना घटित हो जाए तो ऐसी दशा में परक्रामण उस समय तक नहीं किया जा सकता जब तक वह घटना घटित न हो जाए।

   उदाहरण – यदि 'अ' एक वाहक को, जो देय विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारी है, ऐसे लेखपत्र को 'ब' के एजेण्ट को 'ब' के हेतु रखने के लिए दे देता है तो ऐसी दशा में लेखपत्र परक्रामण द्वारा हस्तांरित हुआ माना जाएगा।

2. **बेचान एवं सुपुर्दगी द्वारा पराक्रमण** (Negotiation by Endorsement and Delivery) – जब विनिमय–साध्य लेखपत्र वाहक पर देय न होकर किसी निश्चित व्यक्ति को देय हो (Payable to a specified person) या निश्चित व्यक्ति के आदेशानुसार देय हो, तो ऐसे लेखपत्र आदेशानुसार देय कहलाते हैं और उनका परक्रामण केवल बेचान एवं सुपुर्दगी द्वारा ही किया जा सकता है। जब तक लेखपत्र का धारी ऐसे लेखपत्र पर अपने बेचान के हस्ताक्षर न कर दे उस समय तक हस्तान्तरिती ऐसा लेखपत्रधारी नहीं हो सकता। यदि आदाता एक से अधिक है तो ऐसी दशा में सभी आदाताओं को बेचान करना चाहिए। जब एक विनियम–साध्य लेखपत्र आदेश पर देय हो और बिना बेचान के सुपुर्द कर दिया जाए तो ऐसी दशा में यह सुपुर्दगी केवल एक अभिहस्तांकन मानी जाएगी पराक्रमण नहीं और ऐसे लेखपत्र का धारी यथाविधिधारी के अधिकारों को प्राप्त नहीं कर सकेगा, इसलिए वह ऐसे लेखपत्र को किसी तीसरे व्यक्ति को भी परक्रामण नहीं कर सकता।

परक्रामण का समय (Duration of Negotiation) – एक विनिमयसाध्य लेखपत्र उस समय तक परक्राम्य किया जा सकता है जब तक परिपक्वता के समय या उसके बाद लेखक (Drawer) या स्वीकर्ता द्वारा उसका भुगतान या संतुष्टि न हो जाए, परन्तु ऐसे भुगतान या सन्तुष्टि के बाद नहीं। [धारा 60]

बेचान अथवा पष्ठाांकन
(Endorsement)

जब किसी विनिमय साध्य विलेख (चैक, विनियम–पत्र अथवा प्रतिज्ञा–पत्र) का धारक, जिसे उस विनिमय साध्य विलेख का भुगतान प्राप्त करने का अधिकार है, अपने इस अधिकार का हस्तांतरण करने के उद्देश्य से उसकी पीठ पर या चिट पर हस्ताक्षर कर देता है तो उसे 'बेचान' कहते हैं। जो व्यक्ति बेचान करने के लिए अपने हस्ताक्षर करता है वह बेचारकर्ता (Endorser) कहलाता है और जिस व्यक्ति के पक्ष में बेचान किया जाता है वह बेचानपत्र (Endorsee) कहलाता है। [धारा 15]

बेचान साधारणतया विलेख की पीठ पर किया जाता है और यदि कभी ऐसा हो जाए कि विलेख पर हस्ताक्षर करने का स्थान न रहे तो लेखपत्र के साथ हस्ताक्षर के उद्देश्य के लिए कागज का टुकड़ा नत्थी कर दिया जाता है जिसकों 'संयुक्त पत्र' (Allonge) कहते हैं।

वाहक (Bearer) विलेख का हस्तान्तरण केवल सुपुर्दगी से हो सकता है परन्तु आदेशित (Order) विलेख के हस्तांतरण के लिए सुपुर्दगी के साथ–साथ बेचान करना भी आवश्यक होता है।

बेचान कौन कर सकता है ?
(Who can Endorse)

बेचान निम्न व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है –

1. लेखपत्र के धारी या धारक द्वारा।
2. लेखपत्र के बनाने वाले के हस्ताक्षर द्वारा, जो बनाने वाले की हैसियत से नहीं किए जाते।
3. लेखपत्र का हर एक बनाने वाला, आहर्ता (Drawer), आदाता (Payee) या वह व्यक्ति जिसके लिए बेचान किया जा चुका है। (Endorsee) या यदि बनाने वाला, लिखने वाला, आदाता और वह व्यक्ति जिसके लिए बेचान किया गया हो, एक से अधिक है तो सब के संयुक्त रूप से हस्ताक्षर द्वारा।

टिप्पणी – एक अजनबी लेखपत्र को बेचान नहीं कर सकता और यदि वह कर देता है तो उसके विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। किन्तु अजनबी भुगतान के लिए गारन्टी करता है वह अपने आपको एक प्रतिभू (Surety) के रूप में उत्तरदायी ठहरा सकता है। जब एक अजनबी एक लेखपत्र का बेचान कर देता है तो वह "Backer" कहलाता है।

वैध बेचान के आवश्यक तत्त्व
(Essentials of Valid Endorsement)
अथवा
बेचान करने की विधि अथवा नियम
(Procedure of Rules of Endorsement)

वैध बेचान के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं :–

1. बेचान विलेख या धारक या आदाता या पष्ठांकिती द्वारा होना चाहिए।
2. बेचान हमेशा अधिकार हस्तांतरण करने के उद्देश्य से विलेख की पीठ पर होना चाहिए, यदि विलेख की पीठ पर बेचान करने के लिए स्थान न रहे तो बेचान करने के लिए साथ में एक कागज चिपका दिया जाता है। इस कागज को संयुक्त पत्र (Allonge) कहते हैं।
3. बेचान हमेशा स्याही से किया जाना चाहिए। पैंसिल अथवा रबर की मोहर द्वारा बेचान स्वीकार नहीं किया जाता।
4. बेचान करते समय आदर सूचक शब्द जैसे – श्री बाबू, लाला, श्रीमान, सेठ मैसर्ज, पंडित आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

बेचान का प्रभाव
(Effects of Endorsement)

धारा 50 के अनुसार बेचान का निम्न प्रभाव होता है –

(*i*) लेख पत्र का स्वामित्व बेचान वाले से उस व्यक्ति को हस्तांतरित हो जाता है जिसके लिए बेचान किया जाता है।

(*ii*) उस व्यक्ति को, जिसके लिए बेचान किया जाता है (Endorsee) आगे पराक्रमण करने का अधिकार मिल जाता है।

(*iii*) ऐसे व्यक्ति को अपने नाम में लेख–पत्र के सभी पक्षों के विरूद्ध अभियोग चलाने का अधिकार मिल जाता है।

बेचान के प्रकार

(Kinds of Endorsement)

बेचान कई प्रकार से किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं –

(*i*) **साधारण बेचान** (Blank or General Endorsement) – जब बेचान करने वाला उस व्यक्ति का नाम न लिखे जिसके लिए वह बेचान कर रहा है और केवल अपने नाम से हस्ताक्षर कर दे तो ऐसे बेचान को साधारण, सामान्य या कोरा बेचान कहते हैं। इस प्रकार के बेचान से लेखपत्र 'वाहक' (Bearer) बन जाता है। अब यह केवल सुपुर्दगी द्वारा ही प्रकाशित हो जाता है। [धारा 13]

(*ii*) **विशेष या पूर्ण बेचान** (Special of Full Endorsement) – जब बेचान करने वाला उस व्यक्ति का नाम भी लिख देता है जिसके लिए बेचान कर रहा है और अपना नाम भी लिखता है तो इसे ''विशेष बेचान'' कहते हैं। [धारा 16]

(*iii*) **सीमित बेचान** (Restrictive Endorsement) – जब उस व्यक्ति को, जिसके लिए बेचान किया जा रहा है, स्पष्ट शब्दों द्वारा या तो लेखपत्र के और अधिक परक्रामरण के अधिकार से रोक दिया जाता है या लेखपत्र को बेचान करने के लिए उस व्यक्ति को जिसके लिए बेचान किया जा रहा है, केवल एजेंट के रूप में स्थापित कर दिया जाता है तो ऐसे बेचान की सीमित बेचान कहते हैं।

(*iv*) **आंशिक बेचान** (Partial Endorsement) – बेचान आंशिक उस समय कहलाता है जब ध्येय यह रहता है कि लेख–पत्र की देय रकम का केवल कुछ अंश ही उस व्यक्ति को, जिसके लिए बेचान किया जा रहा है, दिया जाए।

(*v*) **प्रतिबन्धित बेचान** (Qualified or Conditional Endorsement) – जब बेचान करने वाला बेचान करते समय स्पष्ट शब्दों द्वारा अपने दायित्व को सीमित कर देता है या अपने दायित्व का निषेध करने के स्थान पर बेचान के द्वारा किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर अपने दायित्व को निर्भर करके या लेखपत्र में लिखित धनराशि को प्राप्त करने के लिए उस व्यक्ति के अधिकार का, जिसके लिए बेचान किया गया है, किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर निर्भर करके अपने दायित्व को सीमित कर लेता है तो ऐसे बेचान को प्रतिबन्धित बेचान कहते हैं। यह बेचान सीमित बेचान से भिन्न है क्योंकि सीमित बेचान लेखपत्र की पराक्रमणता पर प्रतिबंध लगाते हैं, जबकि प्रतिबन्धित बेचान, बेचान करने वाले व्यक्ति के दायित्व को सीमित करता है।

बेचान करने वाला बेचान करते समय स्पष्ट शब्दों द्वारा अपने दायित्व को सीमित करने की कोई शर्त लगा सकता है जो भिन्न प्रकार से की जा सकती है –

अ. **दायित्व रहित बेचान** (By Sansrecourse Endorsement) – जब बेचान करने वाला व्यक्त्ति यह स्पष्ट कर देता है कि वह उस व्यक्ति के प्रति जिसके लिए बेचान किया जा रहा है या दूसरे धारकों के प्रति लेखपत्र के अनादरित होने पर उत्तरदायी नहीं होगा तो ऐसे बेचान को दायित्व रहित बेचान कहा जाता है और ऐसी दशा में बेचान करने वाले को 'Sansrecourse' या 'Without recourse' शब्दों का उपयोग करना होगा। जैसे "Pay 'A' or order sansrecourse" या "Pay 'A' without recourse to me" या "Pay A' or order at his own risk."

ब. **ऐच्छिक बेचान** (Facultative Endorsement) – जब बेचान करने वाला बेचान करते समय स्पष्ट शब्दों में यह भी लिख देता है कि लेखपत्र के अनादर होने पर धारक को अनादर की सूचना देने की आवश्यकता नहीं तो ऐसा बेचान ऐच्छिक बेचान कहलाता है। क्योंकि यहाँ बेचान करने वाले ने अपनी स्वयं की इच्छा से धारक के कर्त्तव्य का परित्याग कर दिया है।

स्वीकृति

(Acceptance)

एक विपत्र की स्वीकृति से आशय यह होता है कि वह व्यक्ति जिस पर विपत्र लिखा जाता है वह उस विपत्र की रकम को चुकाने के लिए तैयार है। वास्तव में होता यह है ऋणदाता अपने ऋण के लिए या माल देने वाला अपने माल के मूल्य के

लिए ऋणी पर या माल खरीदने वाले पर एक विपत्र लिखता है और यह विपत्र उसके सामने प्रस्तुत किया जाता है जिससे वह इसके लिए अनुमति दे दे अर्थात् वह विपत्र पर 'Accepted' शब्द लिख दे और अपने हस्ताक्षर कर दे। इस प्रकार की अनुमति को स्वीकृति (Acceptance) कहते हैं और स्वीकृति देने वाले का स्वीकारक (Acceptor) कहते हैं।

स्वीकृति की वैधानिकता (Validty of Acceptance) – वास्तव में स्वीकृति वैधानिक रूप से मान्य होनी चाहिए अथवा स्वीकृति को कोई लाभ नहीं होगा।

वैधानिक स्वीकृति के तत्व (Essentials of Valid Acceptance) – एक वैधानिक स्वीकृति के लिए निम्न तत्वों का होना आवश्यक है –

1. यह लिखित होनी चाहिए मौखिक नहीं।
2. वह आहार्यी (Drawee) द्वारा या उसके एजेन्ट द्वारा हस्ताक्षर की जानी चाहिए।
3. यह विपत्र पर होनी चाहिए।
4. यह धारक को सुपुर्दगी द्वारा या उसको या उसके लिए किसी व्यक्ति को स्वीकृति की सूचना द्वारा पूरी की जानी चाहिए।

स्वीकृति के प्रकार
(Kinds of Acceptance)

1. **साधारण स्वीकृति** (General Acceptance) – जब देनदार विपत्र को बिना किसी शर्त के स्वीकार कर लेता है तो ऐसी स्वीकृति को साधारण स्वीकृति कहते हैं। साधारण स्वीकृति कभी–कभी बिना 'Accepted' शब्द के लिखे हुए भी केवल हस्ताक्षर द्वारा ही दी जा सकती है।

2. **शर्तसहित स्वीकृति** (Qualified Acceptance) – जब देनदार विपत्र को किसी शर्त के साथ स्वीकार करना चाहता है और उस शर्त को लिखने के बाद ही अपनी स्वीकृति प्रदान करता है और हस्ताक्षर करता है तो ऐसी स्वीकृति को शर्तसहित स्वीकृति कहते हैं। ऐसी स्वीकृति कई प्रकार की हो सकती है, जो इस प्रकार है –

अ. **शर्त वाली** (Conditional) – जब देनदार स्वीकृति के समय यह स्पष्टतया लिख देता है कि वह विपत्र का भुगतान किसी घटना के घटित होने पर ही चुकाएगा तो ऐसी स्वीकृति शर्तवाली स्वीकृतिक कहलाएगी। जैसे वह यह लिख सकता है "Accepted payable when in funds" इस स्वीकृति का अर्थ यह है कि देनदार भुगतान उसी समय करेगा जब उसके पास रुपया होगा।

ब. **आंशिक स्वीकृति** (Partial Acceptance) – जब देनदार अपनी स्वीकृति विपत्र की पूरी रकम के लिए न देकर कुछ रकम के लिए ही देता है तो ऐसी स्वीकृति को आंशिक स्वीकृति कहते हैं जैसे – यदि 'अ', 'ब' के ऊपर 1000 रू. का विपत्र लिखे तो 'ब' अपनी स्वीकृति 500 रु. के लिए ही दे सकता है। ऐसी दशा में 'ब' विपत्र पर यह लिखेगा "Accepted for Rs. 500 only"।

स. **स्थान संबंधी शर्त** (Qualified as to place) – जब देनदार स्वीकृति देते समय यह लिख देता है कि वह विपत्र का भुगतान केवल एक निश्चित स्थान पर ही करेगा किसी अन्य स्थान पर नहीं या उस स्थान के अतिरिक्त जो विपत्र में लिखा गया है, किसी और स्थान पर करेगा तो ऐसी स्वीकृति स्थान संबंधी शर्त वाली स्वीकृति कहलाएगी और वह इस प्रकार हो सकती है – "Accepted payable at Punjab National Bank only" या "Accepted payable at Punjab National Bank and not elsewhere"। किन्तु यदि केवल यह लिख दिया जाए कि 'Accepted payable at Punjab National Bank' तो यह साधारण स्वीकृति मानी जाएगी क्योंकि यहाँ 'Only' शब्द का उपयोग नहीं किया गया है और न ही 'Not Elsewhere' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

द. **समय संबंधी शर्ते** (Qualified as to time) – जब देनदार स्वीकृति देते समय यह लिख देता है कि विपत्र का भुगतान विपत्र में लिखे गए समय के अनुसार न होकर किसी और समय होगा तो यह समय संबंधी शर्त वाली स्वीकृति कहलाएगी। जैसे एक विपत्र तिथि के तीन महीने बाद देय है और स्वीकार करने वाला अपनी स्वीकृति इस प्रकार दे कि "Accepted Payable six months after date" ऐसी दशा में यह समय संबंधी शर्त वाली स्वीकृति कहलाएगी।

य. **किश्तों में भुगतान संबंधी शर्त** (Acceptance of Payment in Instalment) – कभी–कभी ऐसा भी होता है कि देनदार विपत्र को इस शर्त पर स्वीकार करता है कि वह विपत्र का भुगतान किश्तों द्वारा करेगा तो ऐसी स्वीकृति को किश्तों में भुगतान संबंधी स्वीकृति कहते हैं। जैसे – यदि एक विपत्र 1000 रु. के लिए लिखा जाए तो देनदार उसे इस प्रकार स्वीकार कर सकता है – "Accepted payable in monthly instalments of Rs. 100/- each."

स्वीकृति कौन दे सकता है ? (Who may accept?) – विपत्र को केवल निम्न व्यक्ति ही स्वीकार कर सकते हैं –

1. विपत्र का आहार्यी (Drawee)
2. यदि आहार्यी एक से अधिक हैं तो उन सबको स्वीकार करना होगा।
3. आवश्यकता पड़ने पर आहार्यी (Drawee in case of need)।
4. उपर्युक्त तीनों व्यक्तियों का अभिकर्त्ता (Agent)।
5. प्रतिष्ठा के लिए स्वीकारक (Acceptor for honour)।
6. प्रतिष्ठा के लिए स्वीकारक का अभिकर्त्ता (Agent)।

प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृति (Acceptance for honour) – जब एक विपत्र अस्वीकार कर दिया जाता है या उसका विरोध कर दिया जाता है (Noted or protested) या विपत्र पर कोई अच्छी जमानत की माँग की जाती है तो ऐसी दशा में धारक की मर्जी से कोई भी व्यक्ति जो पहले से विपत्र के लिए दायी नहीं है, विपत्र को विपत्र की प्रतिष्ठा के लिए स्वीकार कर सकता है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि कोई भी अजनबी व्यक्ति (Stranger) किसी विपत्र को उसके पक्ष की प्रतिष्ठा के लिए स्वीकार कर सकता है और ऐसी स्वीकृति ही प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृति (Acceptance for Honour) कहलाती है।

[धारा 108]

प्रतिष्ठा के लिए स्वीकारक के अधिकार एवं दायित्व (Rights and Liabilities of Acceptor for Honour) – साधारणतया प्रतिष्ठा के लिए स्वीकारक की स्थिति एक साधारण स्वीकारक से अच्छी होती है। ऐसे स्वीकारक का दायित्व प्रतिबन्धित होता है क्योंकि प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृति एक प्रतिबंधित स्वीकृति (Qualified Acceptance) के समान है और एक प्रकार से एक पार्श्विक (Collateral) अनुबंध की भाँति होता है। प्रतिष्ठा के लिए स्वीकारक विपत्र के भुगतान को चुकाने का दायित्व केवल उसी समय लेता है जब विपत्र परिपक्वता पर उचित रूप से आहार्यी को भुगतान करने के लिए प्रस्तुत कर दिया गया हो और आहार्यी ने भुगतान करने से इन्कार दिया हो और भुगतान न होने के कारण (For Non-payment) विपत्र का विरोध कर दिया गया हो। स्वीकृति के बाद प्रतिष्ठा के लिए स्वीकारक ठीक उसी स्थिति में हो जाता है जिसमें वह पक्ष रहता है जिसकी प्रतिष्ठा के लिए विपत्र स्वीकार किया गया है। इसलिए उसके अधिकार एवं दायित्व भी वही रहते हैं। अतः इस प्रकार यदि आहार्यी विपत्र का भुगतान करने में असमर्थ रहता है तो वह उन पक्षों के प्रति उत्तरदायी हो जाता है जो उस पक्ष के बाद आते हैं, जिस पक्ष की प्रतिष्ठा के लिए वह विपत्र को स्वीकार करता है। [धारा 111]

प्रतिष्ठा के लिए भुगतान
(Payment for Honour)

विधान का एक साधारण नियम यह है कि कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा से दूसरे व्यक्ति के ऋण का भुगतान करके अपने आपको ऋणदाता नहीं बना सकता। किन्तु विनिमय साध्य लेखपत्र की धारा 113 के अन्तर्गत इस नियम का एक अपवाद दिया गया है जो इस प्रकार है –

''जब किसी विपत्र का प्रस्तुत होने पर विरोध कर दिया गया हो तो कोई भी व्यक्ति ऐसे विपत्र का भुगतान उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा के लिए कर सकता है जो ऐसे भुगतान के लिए उत्तरदायी था बशर्ते कि ऐसा भुगतान करने वाले व्यक्ति ने या उसके अभिकर्त्ता ने पहले ही सरकारी अफसर (Notary Public) के सामने यह घोषणा कर दी है कि वह किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा के लिए भुगतान कर रहा है और ऐसी घोषणा सरकारी अफसर द्वारा लिखित रूप में ले ली गई हो।'' अतः इस प्रकार कोई भी व्यक्ति ऐसे विपत्र का भुगतान उस पक्ष की प्रतिष्ठा के लिए (जो भुगतान के लिए दायी था) कर सकता है जिसे विपत्र की उचित स्वीकृति के बाद भुगतान न होने के कारण विरोध कर दिया गया हो।

प्रस्तुति
(Presentment)

किसी भी विनिमयसाध्य लेख–पत्र की प्रस्तुति का अर्थ यह है कि इसको देनदार को दिखाना होता है क्योंकि वह इसको देखकर ही यह निर्णय करेगा कि वह इसको स्वीकार करेगा या नहीं या भुगतान करता है या नहीं। अतः इस प्रकार प्रस्तुति दो ध्येयों से की जाती है –

(*i*) स्वीकृति के लिए प्रस्तुति,

(*ii*) भुगतान के लिए प्रस्तुति।

हम यहाँ दोनों प्रकार की प्रस्तुतियाँ की चर्चा करेंगे जो निम्न प्रकार हैं –

1. **स्वीकृति के लिए प्रस्तुति** (Presentment for Acceptance) – वास्तव में हर स्थिति में विपत्र की स्वीकृति के लिए विपत्र को प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है, जैसे –
   (*i*) यदि विपत्र किसी निश्चित तिथि पर देय हो, या
   (*ii*) यदि विपत्र माँग करने पर देय हो, या
   (*iii*) यदि विपत्र दी हुई तिथि से कुछ निश्चित दिन के बाद देय हो।

किन्तु कुछ दशाएँ ऐसी हैं कि विपत्र को उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक है जो इस प्रकार हैं –

(*i*) जब विपत्र दर्शन के उपरान्त देय हो;

(*ii*) जब विपत्र में स्वीकृति के लिए प्रस्तुति स्पष्ट रूप से आदेश हो।

उपर्युक्त दो दशाओं के अतिरिक्त अन्य दशाओं में धारक की इच्छा पर निर्भर होगा कि वह विपत्र की प्रस्तुति करे या नहीं, किन्तु मेरी राय में स्वीकृति सदैव ही लेनी चाहिए। अर्थात् विपत्र हर दशा में स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए – व्यवहार यही कहता है।

स्वीकृति के लिए प्रस्तुति किसको की जानी चाहिए (Presentment for Acceptance to whom ?) – एक लेखपत्र स्वीकृति के लिए निम्न व्यक्तियों को प्रस्तुत किया जाना चाहिए –

1. आहार्यी को या उसके अधिकृत अभिकर्त्ता को।
2. जब आहार्यी एक से अधिक हो, तो सभी आहार्यी को, यदि वे सब साझी नहीं है।
3. यदि आहार्यी मर चुका है तो उसके वैधानिक प्रतिनिधि को।
4. यदि आहार्यी दिवालिया घोषित कर दिया गया है तो सरकारी समापक (Official Receiver or Assignee) को।

प्रस्तुति का प्रमाण (Proof of Presentment) – धारा 63 के अनुसार, वास्तव में प्रस्तुति केवल उसी समय हुई मानी जाती है जब विपत्र आहार्यी को इस प्रकार दिखाया जाए कि वह उसको अच्छी प्रकार देख सके और निर्णय कर सके कि वह विपत्र को स्वीकार करेगा या नहीं। आहार्यी विपत्र की प्रस्तुति पर जोर दे सकता है (Can insist) और उसको यह तय करने के लिए कि वह बिल को स्वीकार करेगा या नहीं, 48 घण्टे का समय मिलता है।

टिप्पणी – धारक को यह सिद्ध करना होगा कि विपत्र उचित रूप से प्रस्तुत किया गया था या उसको प्रस्तुत करने का वास्तविक प्रयत्न किया गया था।

प्रस्तुत न करने का प्रभाव (Effect of Non-Presentment) – जब स्वीकृति के लिए प्रस्तुति आवश्यक हो और धारक उसकी प्रस्तुति न करे तो ऐसी दशा में आहार्ता एवं तमाम बेचान करने वाले धारक के प्रति दायित्व से मुक्त हो जाते हैं और इस प्रकार धारक कोई भी दावा नहीं कर सकता।

2. **दर्शन के लिए प्रस्तुति** (Presentment for Sight) – प्रतिज्ञा–पत्र में लेखक स्वयं भुगतान की प्रतिज्ञा करता है इसलिए उसे स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। अतः जो प्रतिज्ञा पत्र मांग पर देय (Payable on Demand) है अथवा निश्चित तिथि पद देय (Payable on a fixed date) है अथवा निश्चित अवधि के बीतने पर देय

(Payable on the Expiration of a Fixed Period) है, उनकी दर्शन के लिए प्रस्तुति आवश्यक नहीं है। परन्तु धारा 62 के अनुसार दर्शन के बाद देय (Payable after sight) प्रतिज्ञा पत्र को परिपक्वता तिथि निश्चित करने के लिए प्रस्तुत (दिखाया जाना) किया जाना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रतिज्ञा पत्र में देनदार पत्र प्रस्तुत करने के बाद किसी निश्चित अवधि में भुगतान करने की प्रतिज्ञा करता है।

ऐसे प्रतिज्ञा पत्र की प्रस्तुति –

(*i*) लेखक अथवा उसके एजेंट को,

(*ii*) लेखक की मत्यु की दशा में उसके वैधानिक उत्तराधिकारी को ,

(*iii*) उसके दिवालिया होने पर राजकीय प्रापक को की जा सकती है।

जो प्रतिज्ञा–पत्र 'दर्शन के बाद देय' है उनकी दर्शनार्थ प्रस्तुति न होन पर, प्रतिज्ञा करने वाला तथा अन्य बेचानकर्ता धारी के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं।

3. **भुगतान के लिए प्रस्तुति** (Presentment for Payment) – सभी प्रकार के विनिमय साध्य विलेख भुगतान के लिए प्रस्तुत किए जाना अनिवार्य हैं। अतः प्रतिज्ञा–पत्र, विनिमय पत्र तथा चैक भुगतान के लिए धारक द्वारा अथवा उसकी ओर से, क्रमशः उसके लेखक, स्वीकर्त्ता अथवा आहार्यी के सम्मुख प्रस्तुत किए जाने चाहिये, दूसरे शब्दों में प्रतिज्ञा–पत्र की दशा में धारी द्वारा यह विलेख लेखक (Maker) के समक्ष, विनिमय पत्र की दशा में देनदार अर्थात् स्वीकर्त्ता (Acceptor) के समक्ष तथा चैक की दशा में बैंक के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। ऐसी प्रस्तुति में त्रुटि होने पर विलेख के अन्य पक्षकार ऐसे धारक के प्रति दायी नहीं रहते हैं। ऐसी प्रस्तुति लेखक, स्वीकर्त्ता अथवा आहार्यी के यथोचित रूप से अधिकृत एजेंट को भी की जा सकती है; उपरोक्त व्यक्तियों में से किसी की मत्यु होने पर उसके वैधानिक उत्तराधिकारी को; तथा किसी पक्षकार के दिवालिया घोषित हो जाने पर उसके राजकीय प्रापत को की जा सकती है। [धारा 64, 75]

लेख-पत्रों के पक्षों की दायित्व से मुक्ति

(Discharge of Parties from Liabilities)

विनिमय–साध्य लेख–पत्रों के संबंध में 'मुक्ति' शब्द का उपयोग दो अर्थों में किया जा सकता है। एक तो लेखपत्र की मुक्ति और दूसरे लेखपत्र के प्रति दायित्व के पक्षों की मुक्ति। लेखपत्र की मुक्ति तो उस समय कही जाती है जब इसके अन्तर्गत तमाम अधिकार प्राप्त समाप्त हो जाते हैं और यह विनिमयसाध्य भी नहीं रहता और एक यथाविधिधारी को भी इसके अन्तर्गत कोई अधिकार प्राप्त नहीं रहता। किन्तु जब लेखपत्र को कोई पक्ष दायित्व से मुक्त होता है तो लेखपत्र विनिमयसाध्य रहता है और दूसरे पक्ष जो अभी तक मुक्त नहीं हुए, वे इसके प्रति अभी भी दायी रहते हैं। जैसे उचित तिथि पर विपत्र को प्रस्तुत न किया जाए तो इसके परिणामस्वरूप बेचान करने वाले अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं किन्तु स्वीकारक दायी रहता है।

दायित्व से मुक्त होने के ढंग (Methods of Discharge) – एक पक्ष अपने दायित्व के निम्न ढंगों से मुक्त हो सकता है –

1. **रद्द करना या काटना** (By Cancellation) – जब एक लेखपत्र का धारक लेखपत्र के किसी पक्ष का नाम, उसको दायित्व से मुक्त करने की इच्छा से काट देता है, तो ऐसा पक्ष और तमाम ऐसे व्यक्ति, जो धारक एवं ऐसे पक्ष के बीच रहते है, अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। किन्तु यदि किसी पक्ष का नाम गलती से कट जाए तो ऐसी दशा में ऐसा पक्ष अपने दायित्व से मुक्त नहीं होगा। नाम काटने का सबसे अच्छा और सरल ढंग यह है कि पक्ष के नाम के बीचों–बीच एक ऐसी रेखा खींच देनी चाहिए जो स्पष्ट दिखायी पड़ती हो।

2. **छुटकारा देना** (By release) – जब किसी लेखपत्र का धारक लेख–पत्र के किसी पक्ष का नाम काटने के ढंग के अतिरिक्त किसी और ढंग द्वारा छुटकारा दे देता है तो ऐसा छुटकारा पाया हुआ व्यक्ति अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। जैसे पूरे भुगतान की बजाय आधा भुगतान पान पर ही ऋणी को पूरे भुगतान से छूट दी जा सकती है।

3. **भुगतान द्वारा** (By payment) – जब परिपक्वता पर धारक को या उसके अभिकर्त्ता को भुगतान कर दिया जाता है तो लेखपत्र के तमाम पक्ष अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं।

4. **कानून के लागू होने पर** (By operation of Law) – लेखपत्र के पक्ष कभी–कभी कानून द्वारा भी अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं जैसे ऋणी के दिवालिया होने पर।

5. **आहार्यी को 48 घण्टे से अधिक समय देने पर** (By allowing drawee more than 48 hours) – यदि विपत्र का धारक किसी आहार्यी को तय करने के लिए कि वह विपत्र को स्वीकार करेगा अथवा नहीं, 48 घण्टे के अधिक का समय देता है तो पहले सभी पक्ष जो इतना समय देने के लिए अपनी अनुमति नहीं देते, ऐसे धारक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। [धारा 83]

6. **चैक के प्रस्तुत न करने पर** (By non-presentment of cheque) – जब चैक भुगतान के लिए उचित समय के अन्दर–अन्दर प्रस्तुत न किया जाए और बैंक फेल जाए और चैक के लिखने वाले को ऐसी देरी के कारण कुछ हानि हो जाए तो ऐसी दशा में चैक का लिखने वाला धारक के प्रति उस सीमा तक अपने दायित्व से मुक्त हो जाएगा, जिस सीमा तक ऐसा लिखने वाला का बैंक ऋणदाता था अर्थात् उसका रुपया बैंक में जमा था, इससे अधिक के लिए नहीं। [धारा 84]

7. **चैक आदेश पर देय होने की दशा में** (Cheque payable to order) – जब एक आदेश पर देय चैक आदाता द्वारा बेचान कर दिया जाता है और बैंक उसका यथाविधि भुगतान कर देता है तो ऐसी दशा में बैंक अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है चाहे ऐसा बेचान बाद में झूठा ही क्यों न सिद्ध हो जाए। [धारा 85]

8. **एक शाखा से दूसरी शाखा पर ड्राफ्ट** (Draft by one branch to another) – जब एक ड्राफ्ट (रुपया भुगतान करने का आदेश) एक बैंक द्वारा उसी बैंक की किसी दूसरी शाखा पर देय रुपये के लिए लिखा जाए और यह ड्राफ्ट आदाता द्वारा बेचान कर दिया जाए तो ऐसी दशा में यदि बैंक ऐसे ड्राफ्ट का भुगतान यथाविधि रूप से कर देता है तो बैंक अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। [धारा 85 (A)]

9. **प्रतिबंधित स्वीकृति लेने पर** (By taking Qualified acceptance) – यदि विपत्र का धारक एक प्रतिबन्धित स्वीकृति ले लेता है तो ऐसे पत्र के तमाम पहले पक्ष, जिनकी अनुमति ऐसी स्वीकृति के लिए नहीं ली गई है, अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। किन्तु यदि उनकी अनुमति लेने के लिए सूचना दी जाए और वे ऐसी स्वीकृति के लिए अपनी अनुमति दे दें तो ऐसी दशा में वे अपने दायित्व से मुक्त नहीं होंगे। [धारा 86]

10. **महत्वपूर्ण परिवर्तन द्वारा** (By material alteration) – जब किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र में कोई ऐसा महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया जाता है तो उस पक्ष के विरोध में हो तो परिवर्तन के समय उस लेखपत्र का पक्ष हो और ऐसे परिवर्तन की अनुमति न दे तो ऐसे परिवर्तन के परिणामस्वरूप लेख–पत्र व्यर्थ हो जाएगा, जब तक परिवर्तन तमाम पक्षों की इच्छानुसार न किया गया हो। जैसे यदि वह व्यक्ति जिसके पक्ष में लेखपत्र का बेचान किया गया है, लेखपत्र में कोई परिवर्तन कर लेता है तो ऐसे परिवर्तन के परिणामस्वरूप बेचान करने वाला उस लेखपत्र के प्रतिफल के संबंध में अपने दायित्व से मुक्त हो जाएगा। [धारा 87]

महत्वपूर्ण परिवर्तन की परिभाषा (Definition of Material Alteration) – जब लेखपत्र की प्रवत्ति किसी परिवर्तन द्वारा बदल दी जाती है या बदल जाती है और उसी के परिणामस्वरूप लेखपत्र के पक्ष भी अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं चाहे यह परिवर्तन लाभदायक हो या हानिकारक, तो ऐसे परिवर्तन को महत्वपूर्ण कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जब लेखपत्र किसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप अपने वैधानिक प्रभाव को बदल देता है या जब लेखपत्र की प्रवत्ति उसके पक्षों के संबंध के प्रति बदल जाती है तो ऐसे परिवर्तन को महत्वपूर्ण कहेंगे। महत्वपूर्ण परिवर्तन के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं –

(*i*) लेख–पत्र की तिथि में परिवर्तन करना,

(*ii*) देय रकम में परिवर्तन,

(*iii*) भुगतान के समय में परिवर्तन,

(*iv*) ब्याज की दर में परिवर्तन,

(*v*) किसी नए पक्ष की बढ़ोत्तरी द्वारा परिवर्तन,

(*vi*) लेख–पत्र का महत्वपूर्ण भाग फाड़ने से परिवर्तन,

(*vii*) बेचान की तिथि में परिवर्तन आदि–आदि।

निम्न दशाओं में लेखपत्र में किया हुआ परिवर्तन महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं माना जाएगा –

1. गलती को ठीक करना, 2. पक्षों की साधारण इच्छानुसार कार्य करना, 3. लेख पत्र के जारी होने से पहले किया गया परिवर्तन, 3. लेख पत्र के जारी होने से पहले किया गया परिवर्तन, 4. पक्षों की अनुमति द्वारा किया गया परिवर्तन।

11. **परिवर्तन किए गए लेखपत्र के भुगतान द्वारा** (Discharge by payment of altered instrument) – जब एक लेख–पत्र में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया जाता है किन्तु वह परिवर्तन किया हुआ मालूम नहीं होता और ऐसे लेखपत्र को यदि उचित भुगतान कर दिया जाए तो भुगतान करने वाला व्यक्ति अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

12. **स्वीकारक के हाथ में विपत्र अपने पर** (Bill in acceptor's hand) – यदि एक विपत्र जो परक्रामित हो चुका है और परिपक्वता पर या उसके बाद स्वीकारक के हाथों में आ जाता है अर्थात् स्वीकारक उसका धारक बन जाता है तो उसी दशा में ऐसे विपत्र के पहले सभी अधिकार समाप्त हो जाते हैं। [धारा 90]

अनादरण या अप्रतिष्ठा
(Dishonour)

एक लेखपत्र विशेषकर विपत्र को (हुण्डी) कभी भी अनादरित किया जा सकता है अर्थात् ऋणी या देनदार भुगतान करने से इंकार कर सकता है।

अनादरण दो प्रकार से किया जा सकता है –

1. **अस्वीकृति द्वारा अनादरण** (Dishonour by Non-acceptance) – धारा 91 के अनुसार एक विपत्र अस्वीकृति द्वारा निम्न दशाओं में अनादरित हुआ मना जाएगा।
   (*i*) जब आहार्यी विपत्र को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करने के बाद 48 घंटे के अन्दर स्वीकार नहीं करता हो।
   (*ii*) जब स्वीकृति के लिए प्रस्तुति आवश्यक नहीं होती अर्थात् प्रस्तुति से छूट दे दी जाती है और विपत्र अस्वीकृत रह जाता है।
   (*iii*) जब आहार्यी प्रसंविदा करने योग्य नहीं रहता है।
   (*iv*) जब आहार्यी एक बनावटी व्यक्ति होता है या उचित खोज के बाद भी नहीं खोजा जा सकता।
   (*v*) जब स्वीकृति प्रतिबन्धित होती है।

2. **भुगतान ने किए जाने के कारण अनादरण** (Dishonour by Non-Payment) – जब प्रतिज्ञा–पत्र का बनाने वाला, विपत्र का स्वीकारक या चैक का आहार्यी (Bank) उचित तिथि पर क्रमशः प्रतिज्ञा–पत्र, विपत्र या चैक का भुगतान करने से इन्कार कर देते हैं तो ऐसी दशा में ये तीनों लेख–पत्र भुगतान न किए जाने के द्वारा अनादरहित हुए कहे जाते हैं। [धारा 92]

अनादरण का प्रभाव (Effect of Dishonour) – विपत्र के तमाम बेचान करने वाले एवं आहर्ता विपत्र के धारक के प्रति उत्तरदायी है। यदि विपत्र अस्वीकृति द्वारा या भुगतान न किए जाने के द्वारा अनादरित कर दियास जाए, बशर्ते कि वह उनको ऐसे अनादरण की सूचना दे देता है। विपत्र का आहार्यी केवल उस समय दायी होता है जब अनादरण भुगतान न किए जाने के द्वारा हो।

अनादरण की सूचना (Notice of Dishonour) – जब एक लेख–पत्र अस्वीकृति द्वारा या भुगतान न किए जाने के द्वारा अनादरित कर दिया जाता है तो ऐसे लेखपत्र के धारक को उन तमाम पक्षों के नाम अनादरण की सूचना भेजनी चाहिए जिनको वह दायी ठहराना चाहता है।

सूचना ढंग (Mode in which Notice may be given) – अनादरण की सूचना उस व्यक्ति के, जिसको यह दी जानी चाहिए, अधिकृत एजेंट को भी दी जा सकती हैं अथवा यदि वह मर गया है तो उसके उत्तराधिकारी को अथवा यदि वह दिवालिया घोषित कर दिया गया है तो उसके प्राप्तकर्त्ता (Assignee) को दी जानी चाहिए। अनादरण की सूचना लिखित अथवा मौखिक हो सकती है। लिखित होने की दशा में यह डाक द्वारा भेजी जा सकती है। अनादरण की सूचना किसी भी रूप में हो सकती है, मगर उसके द्वारा पक्षकार को, जिसको वह दी जा रही है, यह सूचित कर देना चाहिए कि लेखपत्र अनादरित हो चुका है और वह उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जाएगा। यह सूचना अनादरण के बाद उचित सम के भीतर तथा जिस पक्षकार को वह दी जा रही है उसको कारोबार के स्थान पर अथवा यदि उसके कारोबार का स्थान न हो तो उसके निवास स्थान पर दी जानी चाहिए। [धारा 94]

यदि उस पक्षकार की, जिसको अनादरण की सूचना भेजी गई है, मत्यु हो जाती है , परन्तु यदि सूचना भेजने वाले पक्षकार को उसकी मत्यु की कोई जानकारी नहीं है , तो वह सूचना पर्याप्त होगी। [धारा 97]

अनादरण की सूचना आवश्यक नहीं (Notice of Dishonour is not necessary) – हमने ऊपर यह बताया है कि अनादरण की सूचना अत्यन्त आवश्यक है और यह भी बताया है कि यदि अनादरण की सूचना नहीं दी जाती हो लेखपत्र के प्रति तमाम पक्ष अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं, किन्तु धारा 98 कुछ ऐसी दशाएँ बताती है जिनके अन्तर्गत अनादरण की सूचना देना आवश्यक नहीं। ये दशाएँ भिन्न हैं–

(*i*) जब वह ऐसे पक्ष द्वारा समाप्त कर दी जाती है जो इसके पाने का अधिकारी है।

(*ii*) जब आहर्त्ता भुगतान के लिए बैंक को इन्कार कर देता है अर्थात् जब धनादेश का लिखने वाला स्वयं ही बैंक को कह देता है कि वह उसके धनादेश का भुगतान न करे।

(*iii*) जब अनादरण की सूचना न आने पर पक्ष को कोई हानि न हो।

(*iv*) जब ऐसा पक्ष, जो सूचना पाने का अधिकारी है, उचित खोज के बाद भी नहीं मिलता।

(*v*) जब अनादरण की सूचना ऐसे कारणवश नहीं दी जाती जो धारक के वश में न हो। जैसे – यदि धारक की या उसके एजेंट की मत्यु हो जाए या वे बहुत बीमार हो जाएँ या इसी प्रकार की कोई और घटना हो जाए।

आलोकन या निकरायी (Noting) – जब किसी प्रतिज्ञा–पत्र या विनिमय विपत्र का अनादरण अस्वीकृति द्वारा या भुगतान न किए जाने के कारण होता है तब विपत्र का धारी, विपत्र पर या कुछ विपत्र पर और कुछ विपत्र के साथ नत्थी किए हुए कागज पर, विपत्रालोकी (Notary Public) द्वारा उसका आलोकन करा सकता है। इस प्रकार की टिप्पणी (Note) विपत्र पर विपत्रालोकी द्वारा उचित समय के अन्दर–अन्दर ही लिखी जानी चाहिए और ऐसी टिप्पणी में नीचे लिखी बातें होनी चाहिएं–

(*i*) अनादरण की तिथि,

(*ii*) अनादरण किए जाने का कारण,

(*iii*) यदि विपत्र का अनादरण स्पष्ट रूप से नहीं हुआ हो, तो विपत्र का धारी, उसको किस कारण अनादरित मानता है, तथा

(*iv*) नोटिंग का खर्च।

प्रमाणन या सिकरायी (Protesting) – जब एक प्रतिज्ञा–पत्र या विपत्र अस्वीकृति द्वारा या भुगतान न किए जाने के कारण अनादरित होता है तो विपत्र–धारी उस अनादरण का आलोकन (Noting) उचित समय के अन्दर–अन्दर करा सकता है और उस आलोकन का प्रमाणन विपत्रालोकी द्वारा करा सकता है। विपत्रालोकी का प्रमाण–पत्र देना ही प्रमाणन (Protesting) कहलाता है। [धारा 100]

अच्छी प्रतिभूति के लिए प्रमाणन (Protesting for Better Security) – जब किसी विपत्र का स्वीकर्त्ता विपत्र की परिपक्वता के पहले ही दिवालिया हो गया हो या उसकी साख जनता में गिर गई हो, तो धारक विपत्रालोकी द्वारा उचित समय के अन्दर अच्छी प्रतिभूति की माँग कर सकता है और उसके इन्कार करने पर इस बात का आलोकन एवं प्रमाणन भी करा सकता है। ऐसे प्रमाण–पत्र को अच्छी प्रतिभूति के लिए प्रमाणन (Protest for better Security) कहते हैं। [धारा 100]

प्रमाणन की विषय सूची (Contents of Protest) – प्रमाणन के अन्तर्गत निम्न बातें होनी चाहिएं –

(*i*) या तो विपत्र स्वयं या उसकी पूरी प्रतिलिपि।

(*ii*) उन व्यक्तियों के नाम जिनके विरूद्ध और जिनके हेतु विपत्र का प्रमाणन हुआ है।

(*iii*) अनादरण होने के कारण एवं तथ्य।

(*iv*) अनादरण होने का समय एवं स्थान और यदि अधिक अच्छी प्रतिभूति से इन्कार किया गया हो तो उसका स्थान और समय।

(*v*) विपत्रालोकी का वर्णन जो प्रमाणन कर रहा हो।

(*vi*) यदि प्रतिष्ठा हेतु स्वीकृति (Acceptance for Honour) या प्रतिष्ठा हेतु भुगतान (Payment for Honour) हुआ हो तो किसने और किसकी प्रतिष्ठा के लिए और किस विधि से स्वीकृति को भुगतान का प्रस्ताव किया गया, लिखना चाहिए।

प्रमाणन की सूचना (Notice of Protest) – जब अधिनियम के अनुसार किस प्रतिज्ञा पत्र या विपत्र का प्रमाणन करना आवश्यक हो तो ऐसे प्रमाणन की सूचना देनी चाहिए, अनादरण की सूचना देना आवश्यक नहीं। प्रमाणन की सूचना उसी ढंग से तथा उन्हीं शर्तों के अन्दर दी जाएगी जिनमें अनादरण की सूचना दी जाती है। इसमें यह बात अवश्य है कि सूचना विपत्रालोकी द्वारा भी दी जा सकती है। [धारा 102]

विदेशी विपत्रों का प्रमाणन (Attestation of Foreign Bills) – जहाँ विदेशी बिल लिखा गया है उस स्थान के चालू अधिनियम के अनुसार प्रमाणन करना आवश्यक है तो विदेशी विपत्र को अवश्य ही प्रमाणित करना चाहिए। [धारा 104]

आलोकन प्रमााणन के बराबर कब होता है ? (When noting is equivalent of protest) – जब किसी विपत्र या प्रतिज्ञापत्र का प्रमाणन एक निश्चित समय के भीतर कराना आवश्यक हो, तो उस निश्चित समय के भीतर विपत्र या प्रतिज्ञा–पत्र का आलोकन हो जाना ही काफी होगा क्योंकि प्रमाणन का संबंध आलोकन की तारीख से ही होता है। [धारा 104 ए]

यथोचित समय (Reasonable Time) – यह निश्चित करने के लिए कि स्वीकृति या भुगतान की प्रस्तुति करने, अनादरण की सूचना देने और आलोकन के लिए यथोचित समय क्या होगा ? लेखपत्र की प्रकृति तथा उसी प्रकार के लेखापत्रों के संबंध में प्रचलित प्रथा को ध्यान में रखना चाहिए तथा ऐसे यथोचित समय की गणना करते समय सार्वजनिक छुट्टियों को निकाल देना चाहिए। [धारा 105]

क्षतिपूर्ति

(Compensation)

धारा 117 के अनुसार, जब कोई प्रतिज्ञा–पत्र, विपत्र या धनादेश अनादरहित हो जाता है तब उसके धारक (Holder) अथवा बेचानकर्ता (Endorser) को देय क्षतिपूर्ति निम्न नियमों के आधार पर निर्धारित होगी –

1. **धारक को क्षतिपूर्ति** (Compensation to Holder) – धारक को विनिमय साध्य–पत्र की रकम तथा उसके प्रस्तुत करने, आलोकन तथा प्रमाणित कराने से उचित रूप से किए गए खर्चों को प्राप्त करने का अधिकार है। अगर उत्तरदायी व्यक्ति किसी दूसरे देश में रहता हो तो धारक दोनों देशों के बीच चालू विनिमय–दर के अनुसार उस रकम को पाने का अधिकारी है। [धारा 117 (ए) और (बी)]

2. **बेचानकर्त्ता की क्षतिपूर्ति** (Compensation of Endorser) – जब बेचानकर्ता ने जो दायी था, लेख पत्र की रकम चुका दी है तो वह इस प्रकार चुकाई गई रकम, भुगतान की तारीख से वसूल होने की तारीख तक का 18% वार्षिक ब्याज तथा अनादरण व भुगतान संबंधी सभी खर्चों को पाने का अधिकारी होता है। जब उत्तरदायी पक्षकार तथा बेचानकर्त्ता भिन्न–भिन्न देशों में रहते हैं तो बेचानकर्ता दोनों के बीच चालू विनिमय दर के अनुसार उस रकम को पाने का अधिकारी है। [धारा 117 (सी) ओर (डी)]

3. **पुनर्लेख** (Re-draft) – क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी पक्षकार पर देय रकम तथा उचित रूप में किए गए खर्चों के लिए दर्शनी (At sight) अथवा माँग पर (On demand) देय विपत्र लिख सकता है। ऐसे विपत्र को पुनर्लेख (Re-draft) कहते हैं। यदि कोई अनादरित लेख पत्र तथा आलोकन सर्टिफिकेट भी हो तो उन्हें भी पुनर्लेख के साथ नत्थी कर देना चाहिए। यदि इसे भी अनादरित कर दिया जाए तो अनादरण करने वाला पक्षकार उसके लिए भी मूल विपत्र की भाँति ही क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी होगा। [धारा 117 (ई)]

विनिमयसाध्य लेखपत्र के लिए प्रतिफल

(Consideration for Negotiable Instrument)

धारा 118(ए) के अनुसार, कानून यह मानकर चलता है कि सभी लेखपत्र प्रतिफल के बदले में लिखे, पष्ठांकित तथा हस्तान्तरित किए गए हैं। इसलिए भुगतान न करने वाले पक्षकार को साबित करना पड़ेगा कि लेखपत्र में प्रतिफल का अभाव है।

प्रतिफल के अभाव का प्रभाव – प्रतिफल के अभाव में कोई भी लेखपत्र नजदीकी पक्षकारों, बिल के लेखक तथा स्वीकर्त्ता और प्रतिज्ञा–पत्र के निर्माता (Maker) तथा लेनदान (Payee) के बीच दायित्व की सष्टि नहीं कर सकता। किन्तु ऐसे लेखपत्र को मूल्य (Value) के बदले में पाने वाला धारक लेखपत्र के हस्तान्तरक (Transferor) अथवा लेखपत्र के किसी भी पूर्वपक्षकार से लेख–पत्र की रकम को वसूल करने का अधिकारी है।

आंशिक रूप में प्रतिफल का निष्फल होना या न होना – जब आंशिक रूप में प्रतिफल का अभाव हो या आंशिक रूप में ही प्रतिफल दिया गया हो तो ऐसे लेख–पत्र में लेनदार (Payee) अपने साथ नजदीकी संबंध रखने वाले पक्षकार से लेखपत्र के ऊपर जितना प्रतिफल वास्तव में दिया गया है, उससे अधिक रकम पाने का अधिकारी नहीं है।

उदाहरण – 'क', 'ख' पर 'क' की आज्ञानुसार देय 500 रू. के लिए एक बिल लिखता है। 'ख' ने बिल को अप्रतिष्ठित कर दिया। 'क' के वाद करने पर 'ख' या साबित कर देता है कि बिल 400 रू. के बदले तथा शेष 'ख' को अनुग्रहीत (Accommodate) करने के लिए स्वीकार किया गया था। यहाँ 'क' केवल 400 रू. ही पा सकेगा। [धारा 44]

हुण्डी
(Hundi)

हुण्डी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'हुण्ड' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ 'संग्रह कर' है। भारत में हुण्डी का प्रचलन बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। यह प्रचलित विनिमय–पत्र के समान की एक साख–पत्र है। हुण्डी प्रायः हिन्दी या उड़िया भाषा में लिखी जाती है। इसमें विशेष भाषा और शैली का प्रयोग किया जाता है तथा यह चिट्ठी के रूप में होती है। इसके द्वारा भी रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जा सकता है। हुण्डी को भारतीय विनियम साध्य लेखपत्र अधिनियम में सम्मिलित नहीं किया गया है। साधारणतः हुण्डी शर्तरहित होती है। परन्तु कभी–कभी हुण्डी में शर्त भी लगा दी जाती है जैसे – जोखिम हुण्डी में। हुण्डी के अप्रतिष्ठत होने पर उसके प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। हुण्डी निम्न प्रकार की होती हैं–

दर्शनी हुण्डी का नमूना

श्री गणेशायनमः

''सिद्ध श्री दिल्ली शुभ स्थान श्री जोहरीमल हजारीमल जो लिखी रोहतक से श्रीकान्त की राम–राम वंचना। आगे हुण्डी कीनी नग। आपके ऊपर दिया रुपया 500 अंकन पांच सौ के आधे दो सौ पचास से दूने पूरे देना। यहां रखे भाई इन्दरसैन के मिति पौष बदी 8 हुण्डी पहुंचे तुरन्त रुपया साह जोग चलन बाजार ठिकाना लगाये चौकस पर दाम देना।''

हुण्डी लिखि मिति पौष वदी 2, सम्वत! 2025

हंसराज पूरनश्री

उपर्युक्त हुण्डी का अर्थ है हंसराज पूरनश्री ने रोहतक से जोहरीमल हजारीमल दिल्ली वाले के नाम 500 रुपये की हुण्डी लिखी है। इसका भुगतान इन्दरसैन को मांगने पर कर देना है।

हुण्डी की विशेषताएं (Characteristics of Hundi) – हुण्डी की विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

(*i*) यह देशी विनिमय–पत्र है।

(*ii*) इसको लिखते समय अपने इष्ट देवता का नाम लिखा जाता है।

(*iii*) इस पर टिकट लगाना आवश्यक होता है।

(*iv*) इसमें भुगतान की अवधि निश्चित होती है।

(*v*) यह शर्तरहित होती है।

हुण्डी के प्रकार (Kinds of Hundi) – हुण्डी निम्न प्रकार की होती हैं –

1. **दर्शनी हुण्डी** – यह हुण्डी जिसका भुगतान माँगने पर या दिखाने पर तुरन्त ही करना पड़ता है, दर्शनी हुण्डी कहलाती है। इसमें राजस्व टिकट लगाने की आवश्यकता नहीं होती है। भुगतान के लिए अनुग्रह दिवस भी नहीं जोड़े जाते हैं।
2. **मिती हुण्डी या मुद्दती हुण्डी** – ऐसी हुण्डी, जिसका भुगतान एक निश्चित अवधि के बाद किया जाता है, मिती हुण्डी कहलाती है। इस हुण्डी में बिल की भांति हुण्डी लिखने की एक मिती एवं अवधि लिखी होती है, जिससे इसके भुगतान की मिति तुरन्त ही जानी जा सकती है। यह अवधि प्रायः 30, 60 या 90 दिन की होती है। इस हुण्डी पर स्टॉम्प लगाना आवश्यक होता है।

मुद्दती हुण्डी का नमूना

श्री लक्ष्मी जी सदा सहाय

नं. 524

टिकट

सिद्ध श्री बहादुरगढ़ शुभ स्थान भाई देवीदत्त चरणदास जोग, किरली रोहतक के राममोहन श्याम मोहन की राम राम वंचना अपरंच हुण्डी नग। आपके ऊपर कटी। 5,000 रुपये अंकन पांच हजार रुपये के नीमे ढाई हजार के दुने पूरे देना। यहां रखे भाई हरी राम जय राम मिति आषाढ़ वदी पंचम से तीस दिन पीछे नामे साह जोग हुण्डी चलन कलदार देना।

हुण्डी लिखी आषाढ़ वदी पंचमी सम्वत् 2050

राममोहन, श्याम मोहन।

3. **नाम-जोग हुण्डी** – इस प्रकार की हुण्डी का भुगतान केवल उसी व्यक्ति को किया जाता है जिसका नाम हुण्डी में दिया होता है। ऐसी हुण्डी किसी अन्य पक्ष को बेचान नहीं की जा सकती। यह उस विनिमय पत्र के समान होती है जिस पर प्रतिबन्धयुक्त बेचान (Restrictive Endorsement) किया गया हो।
4. **फरमान-जोग हुण्डी** – इस प्रकार की हुण्डी का भुगतान या ता उस व्यक्ति को किया जाता है जिसका नाम हुण्डी में दिया रहता है अथवा उस व्यक्ति के आदेशानुसार व्यक्ति को किया जाता है। यह हुण्डी आदेश चैक (Order) के समान होती है। इस हुण्डी को बेचान की आवश्यकता होती है।
5. **धनी-जोग हुण्डी** – जब हुण्डी का भुगतान वाहक या धारक को किया जा सके, तो उसे धनी जो हुण्डी कहते हैं, यह 'वाहक को देय' विपत्र के समान होती है।
6. **शाह-जोग हुण्डी** – प्रत्येक बाजार में कुछ व्यक्ति शाह माने जाते हैं जिनकी आर्थिक दशा व ख्याति बहुत अच्छी होती है। अतः कुछ हुण्डियों में शाह का नाम दे दिया जाता है अर्थात् जिस हुण्डी में शाह का नाम दिया रहता है उसका भुगतान शाह की मार्फत ही किसी व्यक्ति को किया जा सकता है। इससे किसी गलत ख्याति के लिए किसी गलत आदमी को भुगतान नहीं करवाएगा। यह हुण्डी रेखांकित चैक (Crossed Cheque) के समान होती है।
7. **जोखिम हुण्डी** – यद्यपि हुण्डी शर्तरहित होती है परन्तु जोखिम हुण्डी शर्त युक्त होती है अर्थात् भुगतान करने वाला किसी निश्चित शर्त के पूर्ण होने पर ही भुगतान करने का वचन देता है। ऐसी हुण्डी को जोखिम हुण्डी कहते हैं। यह हुण्डी विनिमय–साध्य नहीं कहलाती। आजकल इस प्रकार की हुण्डियों को प्रचार बहुत कम है, क्योंकि बैंक, बीमा आदि इस प्रकार की हुण्डियों को स्वीकार नहीं करते।
8. **जवाबी हुण्डी** – जब एक स्थान से अन्य स्थान पर धन हुण्डी के द्वारा भेजा जाता है तथा भुगतान प्राप्त करने वाले द्वारा राशि प्राप्त करने पर जवाब दिया जाना होता है तो उसे जवाबी हुण्डी कहते हैं।
9. **खाका हुण्डी** – खाका हुण्डी उस हुण्डी को कहते हैं जिसका भुगतान किया जा चुका है।
10. **खोटी हुण्डी** – जिस हुण्डी में किसी प्रकार का दोष हो अथवा वह कृत्रिम हो तो उसे खोटी हुण्डी कहते हैं।

पक्षकारों की क्षमता अथवा योग्यता

(Capacity of Parties)

पक्षकारों में दायित्व उत्पन्न करना ही पक्षकारों की क्षमता कहलाती है। विनिमय साध्य लेखपत्र की धारा 26 के अनुसार, ''प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो संबंधित अधिनियम के अनुसार अनुबंध करने की क्षमता रखता है किसी प्रतिज्ञा–पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक लिखकर स्वीकार करके, पष्ठांकन करके , सुपुर्दगी एवं हस्तांतरण करके स्वयं को बद्ध कर सकता है तथा उसे बाध्य होगा।'' (Every person capable of contracting according to the law to which he is subject may bind himself and bind himself and so bound by the making, drawing, acceptance, endorsement, delivery and negotiation of a promissory note, bill of exchange or cheque.) (Sec. 26)

अलग–अलग व्यक्तियों की क्षमता के बारे में विवेचन इस प्रकार है –

1. **अवयस्क अथवा नाबालिग** (Minor) – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार नाबालिग द्वारा किया गया अनुबंध पूर्णतया व्यर्थ होता है। नाबालिग के बालिग हो जाने पर भी वह इस अनुबंध की पुष्टि नहीं कर सकता। परन्तु विनिमयसाध्य विलेख अधिनियम की धारा 26 के अनुसार, नाबालिग विनिमय–विलेख लिख सकता है, पष्ठांकित कर सकता है तथा उसकी सुपुर्दगी एवं हस्तांतरण कर सकता है। किन्तु इससे अन्य सभी पक्ष बाध्य होते हैं, स्वयं नाबालिग नहीं। विनिमय–विलेख लिखने अथवा पष्ठांकित करने से स्वयं नाबालिग का कोई दायित्व नहीं होता। इस प्रकार लिखा अथवा पष्ठांकित किया गया विलेख नाबालिग के प्रति पूर्णतया व्यर्थ होता है। विलेख का धारक , केवल बालिग के विरूद्ध दावा कर सकता है, नाबालिग के विरूद्ध नहीं।

2. **पागल, बेवकूफ एंव शराबी व्यक्ति** (Lunatics, Idiots and Drunken Person) – यदि विनिमय–साध्य लेखपत्र पागल, मूर्ख एवं शराबी व्यक्तियों द्वारा लिखे या बनाए जाएँ तो यह व्यक्ति ऐसे लेखपत्रों के प्रति उत्तरदायी नहीं होंगे। वास्तव में, उनकी स्थिति बिल्कुल एक अवयस्क जैसी है। हाँ एक पागल या शराबी व्यक्ति एक विनिमय साध्य लेखपत्र के प्रति उस समय उत्तरदायी हो सकता है जब वह उसको ऐसे समय लिखे जब वह होश में था अर्थात् पागल या शराबी की दशा में नहीं था।

3. **निगम अथवा कम्पनी** (Corporation or Company) – किसी निगम अथवा कम्पनी को कोई विनिमय साध्य लेखपत्र को लिखने, स्वीकार करने अथवा बेचान करने का अधिकार तभी होता है जबकि पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association) द्वारा उसे ऐसा स्पष्ट अधिकार प्रदान कर दिया गया हो। व्यापारिक कम्पनी, ऐसा स्पष्ट अधिकार न होते हुए भी, एक विनिमय साध्य विलेख लिख सकती है, पष्ठांकित कर सकती है अथवा स्वीकार कर सकती है यदि ऐसा करना उस आश्य (उद्देश्य) को पूरा करने के लिए आवश्यक है जिस आश्य के लिए वह बनाई गई है।

4. **अभिकर्त्ता अथवा एजेंट** (Agent) – एक व्यक्ति जो अनुबंध करने के योग्य है, एक विनिमयसाध्य लेखपत्र या तो स्वयं ही हस्ताक्षर कर सकता है या किसी अपने अधिकृत एजेंट से करा सकता है। यदि विनिमयसाध्य लेख–पत्र एजेण्ट द्वारा हस्ताक्षर किया जाता है तो वह दो प्रकार से किया जा सकता है –

    1. एजेंट अपने मालिक का नाम लेखपत्र पर लिख सकता है, यदि उसको ऐसा करने का अधिकार है।
    2. एजेंट अपने स्वयं के हस्ताक्षर कर सकता है और हस्ताक्षर के साथ–साथ ही यह भी स्पष्ट कर सकता है कि वह एक निश्चित मालिक के लिए एजेंट के रूप में कार्य कर रहा है।

5. **वैधानिक प्रतिनिधि** (Legal Representative) – किसी मत व्यक्ति की जायदाद का प्रतिनिधि अथवा जिस व्यक्ति को मत व्यक्ति की जायदाद हस्तांतरित हुई है , मत व्यक्ति का वैधानिक प्रतिनिधि कहा जाता है। विलेख के धारक की मत्यु के बाद उसके सभी विलेखों पर उसके वैधानिक प्रतिनिधि का अधिकार हो जाता है। विलखों की राशि वसूल करने हेतू वह दावा कर सकता है, तथा उसके द्वारा दी गई दायित्व–मुक्ति वैध होती है। यदि वैधानिक प्रतिनिधि ने उसे मिलने वाली सम्पत्ति की राशि तक अपना दायित्व स्पष्ट रूप से सीमित नहीं किया है, तो किसी विनिमय साध्य विलेख पर हस्ताक्षर करने पर उसका दायित्व व्यक्तिगत होगा। [धारा 29]

6. **संयुक्त हिन्दु परिवार** (Joint Hindu Family) – संयुक्त हिन्दु परिवार का कर्ता परिवार की ओर से विनिमय साध्य लेख–पत्र पर हस्ताक्षर कर सकता है। कर्त्ता द्वारा संयुक्त परिवार के लिए किसी लेखपत्र पर हस्ताक्षर कर देने के क्या परिवार के अन्य सदस्यों को भी बाध्य होना पड़ता है ? इन प्रश्न पर दिये गये निर्णयों में मतभेद है। कलकत्ता एवं मद्रास उच्च न्यायालयों के अनुसार किसी भी ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता है जिसका नाम विनिमय साध्य लेखपत्र में उल्लेखित न हो। इस प्रकार संयुक्त हिन्दु परिवार के विनिमय साध्य लेख–पत्र में केवल कर्त्ता के ही हस्ताक्षर होते है। इसलिए परिवार के अन्य सदस्यों को दायी नहीं ठहराया जा सकता है। मुम्बई एवं इलाहाबाद हाई कोर्ट ने इसके विपरीत निर्णय दिया है। उसका मत है कि चूंकि कर्त्ता सारे परिवार के लेन–देन का प्रतिनिधित्व करता है। अतः परिवार के अन्य सदस्यों को दायी ठहराया जा सकता है। निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि यदि लेख–पत्र पर सभी सदस्यों ने हस्ताक्षर किए हों तो वह व्यक्तिगत रूप से ऋण के भुगतान के लिये दायी होंगे। यदि कर्त्ता ने लेख–पत्र पर व्यक्तिगत रूप से हस्ताक्षर किया है तो व्यक्तिगत रूप से दायी होगी, शेष सदस्य नहीं।

7. **साझेदारी फर्म** (Partnership Firm) – साझेदारी फर्म का खाता सदैव फर्म के नाम से खोला जाता है न कि साझेदारों के अपने नाम से। साझेदारी फर्म की ओर से कोई भी साझेदार ऐसा आवेदन–पत्र बैंक को दे सकता है। साझेदारी फर्म की ओर से खाता खोलते समय बैंक को यह विश्वास दिलान होता है कि जिन प्रार्थियों के हस्ताक्षर आवेदन–पत्र में हुए हैं उनको आवेदन देने का अधिकार है। इसके लिए साझेदारी विलेख (Partnership Deed) की एक प्रतिलिपि बैंक को आवेदन–पत्र के साथ भेजनी होती है। इसके अतिरिक्त बैंकर को एक पत्र समस्त साझेदारों से लेना होता है जिसमें विभिन्न साझेदारों के नाम और पते, व्यापार की प्रकृति तथा उन साझेदारों के नाम और हस्ताक्षर जो चैक तथा विलेख पत्रों पर हस्ताक्षर करने का अधिकार रखते हैं, इन समस्त बातों का उल्लेख होता है।

8. **अशिक्षित व्यक्ति** (Illiterate Person) – अशिक्षित व्यक्ति क्योंकि हस्ताक्षर करने में असमर्थ होते हैं अतः उनके अंगूठे का निशान ही हस्ताक्षर का कार्य करता है। ऐसे व्यक्तियों का खाता खोलते समय पहचान के लिए उनका एक फोटो, जो प्रमाणित होता है, लेकर A.O.F. (Account Opening Form) पर चिपका दिया जाता है और दूसरा फोटो पासबुक पर लगा दिया जाता है। ऐसे व्यक्तियों का खाता खोलते समय भी बैंकर को पूर्ण सावधानी से कार्य करना होता है क्योंकि अंगूठे के निशान की पहचान हस्ताक्षर की अपेक्षा कठिन है इस प्रकार छल कपट (Fraud) की संभावना बहुत अधिक बनी रहती है।

खण्ड 4

अध्याय-13

उपभोक्ता अधिकार एवं उपभोक्ता संरक्षण

(Consumer Rights and Consumer Protection)

उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना आज की आवश्यकता है क्योंकि वे बाजार के राजा है।

(To safeguard the interests of consumers is the need of the day as they are the King of the market)

आज उपभोक्ता को बाजार का राजा कहा जाता है अर्थात् आज उपभोक्ता विपणन क्रियाओं के केन्द्र बिन्दु है। उत्पादकों का प्रयास रहता है कि वस्तुओं का उत्पादन उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाए। उपभोक्ताओं की संतुष्टि के साथ–साथ उत्पादकों का यह भी प्रयास रहता है कि उनके उत्पाद की अधिक से अधिक बिक्री हो। अतः वे अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए हर संभव उपाय करते है। बिक्री वद्धि के लिए किए जाने वाले कुछ उपाय तो ऐसे होते है जिनसे उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों का हित होता है जैसे :–

– माल की किस्म में सुधार करना।

– मूल्य में कमी करना।

– स्पष्ट एवं सभ्य विज्ञापन करना।

– विक्रय के बाद सेवाएं उपलब्ध करना।

इसके विपरीत बिक्री वद्धि के लिए किए जाने वाले कुछ उपाय ऐसे भी हैं जिनसे उत्पादक का तो हित होता है परन्तु उपभोक्ताओं का अहित अथवा शोषण, जैसे :

– उपभोक्ता वस्तुओं में मिलावट करना।

– वस्तुओं एवं सेवाओं की घटिया किस्म।

– भ्रमपूर्ण विज्ञापन।

– वस्तुओं के कम तोलन व कम मापना।

– माल का स्टॉक करके बनावटी कमी उत्पन्न करना।

इस प्रकार विक्रय वद्धि के ये कुछ ऐसे उपाय है जिनसे उत्पादक अपनी बिक्री एवं लाभों में वद्धि करते है। लेकिन ये उपाय स्थायी नहीं कहे जा सकते। इनसे उपभोक्ताओं का शोषण होता है। अब प्रश्न उठता है कि उत्पादकों के इन अनुचित व्यवहारों से उपभोक्ताओं को किस प्रकार सुरक्षा प्रदान की जाए ? उत्पादकों तथा विक्रेताओं के अनुचित व्यवहार से उपभोक्ताओं को सुरक्षा प्रदान करने को ही उपभोक्ता संरक्षण कहते है। इस संबंध में केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने समय–समय पर अनेक अधिनियम बनाए है जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित है :

1. औषधि एवं सौन्दर्य अधिनियम, 1940 (Drugs & Cometics Act, 1940)
2. खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम, 1954 (Prevention of Food Adulteration Act, 1954)
3. आवश्यक वस्तु पूर्ति अधिनियम, 1955 (Essential Commodities Supply Act, 1955)

4. एकाधिकार एवं अवरोधक व्यापारिक अधिनियम, 1960 (Monoplies and Restrictive Trade Practices, Act, 1969)
5. बाट एवं माप अधिनियम, 1976 (Standard of Measures & Weight Act, 1976)
6. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (Consumer Protection Act, 1986)

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (Consumer Protection Act, 1986)

भारतीय इतिहास में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 एक महत्वपूर्ण अधिनियम के रूप में पेश किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ता को संरक्षण प्रदान किया गया है। यह अधिनियम दिसम्बर 1986 में संसद द्वारा पास किया गया और 15 अप्रैल, 1987, को इसे पूरे भारत (जम्मू व कश्मीर छोड़कर) में लागू कर दिया गया। दिसम्बर 1993 में इस अधिनियम में कुछ संशोधन किए गए। यह अधिनियम सभी वस्तुओं एवं सेवाओं पर लागू होता है। इसके अंतर्गत केन्द्र तथा राज्यों में उपभोक्ता संरक्षण परिषद स्थापित करने की व्यवस्था है। परिषद् में सरकारी एवं गैर–सरकारी दोनों प्रकार के सदस्य होते है। इन परिषदों का उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितो की रक्षा करना है। इस अधिनियम में उपभोक्ताओं के कुछ अधिकारों का उल्लेख किया गया है जोकि निम्नलिखित है :

उपभोक्ता के अधिकार

(Consumer Rights)

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत उपभोक्ता को निम्नलिखित अधिकार दिए गए हैं :

1. **सुरक्षा का अधिकार** (Right to Safety) – यह ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं से सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है जिनसे उपभोक्ता के स्वास्थ्य जीवन एवं सम्पत्ति को हानि हो सकती है। उदाहरण के लिए नकली एवं घटिया किस्म की दवाइयां; घटिया किस्म के माल से तैयार किए गए उपकरण जैसे – बिजली की प्रैस, प्रैशर कुकर आदि। उपभोक्ताओं को इस प्रकार की क्षति के विरूद्ध सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है।
2. **सूचना प्राप्ति का अधिकार** (Safety to be Informed) – उपभोक्ता को यह भी अधिकार होता है कि उसको वे सभी सूचनाएं उपलब्ध करवाई जाए जिनके आधार पर वह वस्तु तथा सेवा को क्रय करने का निर्णय लेता है। ये सूचनाएं वस्तु की किस्म, मिश्रण, मूल्य, प्रमाप, शक्ति तैयार करने की तिथि, प्रयोग करने की विधि आदि के संबंध में हो सकती है। अतः उत्पादक को चाहिए कि इन सभी सूचनाओं को सही रूप में प्रस्तुत करे ताकि उपभोक्ता धोखे से बच सके।
3. **चुनने का अधिकार** (Right to Choose) – उपभोक्ता को बाजार में उपलब्ध विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं में से अपनी पसंद की वस्तु तथा सेवा क्रय करने का पूरा अधिकार होता है अर्थात् कोई भी विक्रेता उसकी पसंद को अनुचित ढंग से प्रभावित नहीं कर सकता। यदि कोई विक्रेता ऐसा करता है तो यह उपभोक्ता के चुनने के अधिकार में विघ्न माना जाएगा।
4. **सुनवाई का अधिकार** (Right to be Heard) – उपभोक्ता को यह भी अधिकार होता है कि उसकी शिकायत की सुनवाई हो। इस अधिकार के अन्तर्गत उपभोक्ता अपने हितों को प्रभावित करने वाली सभी बातों के विरूद्ध अपनी शिकायत दर्ज करवा सकता है। प्रथम तीन अधिकारों का महत्त्व भी तभी है यदि इनके विरूद्ध उपभोक्ता को अपनी शिकायत का अधिकार हो। आजकल अनेक बड़ी–बड़ी संस्थाएं उपभोक्ताओं को सुनवाई का अधिकार करने के लिए उपभोक्ता सेवा विभाग की स्थापना करती है। इस विभाग का काम उपभोक्ता की शिकायतों को सुनना व उन्हें दूर करने के लिए पर्याप्त कदम उठाना होता है।
5. **उपचार का अधिकार** (Right to Redressal) – यह अधिकार विक्रेता के अनुचित व्यवहार के विरूद्ध उपभोक्ता को क्षतिपूर्ति प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, यदि वस्तु की मात्रा व किस्म विक्रेता के वायदे के अनुरूप नहीं है तो क्रेता को क्षति–पूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होता है। क्षतिपूर्ति के रूप में उपभोक्ता को अनेक उपचार उपलब्ध है जैसे – वस्तु की मुफ्त मुरम्मत करना, वस्तु वापस लेना या वस्तु को बदल कर देना।

6. **उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार** (Right to Consumer Education) – उपभोक्ता शिक्षा का अभिप्राय उपभोक्ताओं को लगातार उनके अधिकारों के संबंध में शिक्षित करते रहने से है। अर्थात् उपभोक्ताओं को यह पता होना चाहिए कि वस्तुओं और सेवाओं से होने वाली क्षति के विरूद्ध उन्हें क्या–क्या अधिकार प्राप्त है। उपभोक्ताओं को शिक्षा प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा अनेक कदम उठाये गए हैं जैसे – सिविल सप्लाई मंत्रालय द्वारा उपभोक्ता जागरण, के नाम से त्रैमासिक पत्रिका निकालना, दूरदर्शन पर संरक्षण उपभोक्ता का कार्यक्रम दिखाना, हर वर्ष को 15 मार्च को उपभोक्ता दिवस मनाना आदि।

उपभोक्ता संरक्षण के माध्यम
(Means of Consumer Protection)

उपभोक्ता अधिकारों की जानकारी प्राप्त करने के बाद अब प्रश्न उठता है कि ऐसे कौन से माध्यम है जो उपभोक्ताओं को वस्तुओं एवं सेवाओं से होने वाली क्षति के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करते है। उपभोक्ता संरक्षण माध्यमों के रूप में, सर्वप्रथम तो उपभोक्ता को क्रय करते समय स्वयं ही सचेत रहना चाहिए। अर्थात् उन्हें माल क्रय करते समय कुछ सावधानी बरतनी चाहिए जैसे :– उत्पाद व उत्पादक का नाम क्या है, उत्पाद के प्रयोग के निर्देष क्या है, उत्पाद का वजन कितना है, उत्पाद का मूल्य क्या है, विक्रय के बाद सेवा उपलब्ध है या नहीं। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता संघ व व्यापार संघ उपभोक्ताओं को संरक्षण उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इन सबसे महत्वपूर्ण सरकारी माध्यम है जो पीड़ित उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करता है। उपभोक्ता संरक्षण के मुख्य माध्यम निम्नलिखित है :–

1. **सावधान उपभोक्ता** (Alert Consumer) – उपभोक्ता संरक्षण के प्रथम माध्यम के रूप में उपभोक्ता को अपना संरक्षण स्वयं करना चाहिए। उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना चाहिए। सचेत उपभोक्ता ही विक्रेताओं से अपने अधिकारों की मांग कर सकता है। अतः उपभोक्ताओं को चाहिए की वे स्वयं ही अपने अधिकारों को जाने और विक्रेताओं के अनुचित व्यवहार के प्रति आवाज उठाए।

2. **उपभोक्ता संध** (Consumer Association) – उपभोक्ता संघ उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। जब एक अकेला उपभोक्ता अपने अधिकारों को पूरा करवाने में असफल रहता है तो वह उपभोक्ता संघ की मदद ले सकता है। उपभोक्ता संघ विक्रेता पर उपभोक्ता के हितों का ध्यान रखने के लिए दबाव डाल सकते हैं। उपभोक्ता संघ उपभोक्ता को शिक्षित करने का काम भी करते है।

3. **व्यापार संघ** (Trade Union) – उपभोक्ता संरक्षण के लिए केवल उपभोक्ता के प्रयास ही पर्याप्त नहीं है बल्कि व्यवसायियों द्वारा भी ऐसे प्रयास किए जाते हैं। व्यवसायी स्वयं अपने संध बनाकर उपभोक्ता से अनुचित व्यवहार पर प्रतिबंध लगा सकते हैं। व्यापार संघ व्यवसायिओं के लिए आचार संहिता तैयार कर सकते हैं। आचार संहिता में यह निश्चित कर दिया जाता है कि उन्हें उपभोक्ताओं से किस तरह का व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करना व्यवसाय जगत के हित में होता है।

4. **सरकार** (Government) – सरकार विभिन्न अधिनियम बनाकर उपभोक्ताओं के हितों को सुरक्षित करती है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 सरकार द्वारा पीड़ित उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए बनाया गया एक महत्वपूर्ण अधिनियम है। इसके अंतर्गत उपभोक्ताओं की शिकायतों को दूर करने के लिए तीन–स्तरीय न्यायित तंत्र का प्रावधान किया गया है।

   (A) जिला स्तर पर जिला फोरम (District Forum)

   (B) राज्य स्तर पर राज्य आयोग (State Commission)

   (C) राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय आयोग (National Commission)

   तीन स्तरीय न्यायिक तंत्र उपभोक्ताओं को निम्नलिखित उपलब्ध करवाता है :

   (1) वस्तु के दोषों को दूर करना।

   (2) दोषपूर्ण वस्तु के स्थान पर नई वस्तु देना।

(3) उपभोक्ता को माल का मूल्य वापस करना।

(4) क्षति के लिए उपभोक्ता को हर्जाने का भुगतान करना।

अब हम तीन–स्तरीय न्यायित तंत्र की विस्तत जानकारी प्राप्त करेंगे :

(A) **जिला फोरम** (Disrtrict Forum) – उपभोक्ता संरक्षण के अनुसार, राज्य सरकार प्रत्येक जिले में एक या अधिक जिला फोरम स्थापित कर सकती है। जिला फोरम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है :

(1) इसमें एक अध्यक्ष सहित तीन सदस्य होते हैं जिनमें से एक महिला सदस्य का होना अनिवार्य है। इनकी नियुक्ति राज्य सरकार करती है। अध्यक्ष के लिए व्यकित में जिला न्यायाधीश की योग्यता होना जरूरी है।

(2) जिला फोरम में 5 लाख रुपयें से कम मूल्य के विवादों से संबंधित विवादों का समाधान किया जाता है।

(3) शिकायत उपभोक्ता द्वारा अथवा उपभोक्ता संघ द्वारा की जा सकती है।

(4) शिकायत दर्ज होने पर इस बात की सूचना विरोधी पक्षकार को भेज दी जाती है।

(5) परीक्षण के बाद यदि यह सिद्ध हो जाए की माल दोषपूर्ण है तो विरोधी पक्षकार को जिला फोरम निम्न में से एक या अधिक आदेश दे सकता है :

– वस्तु को दोषों को दूर किया जाए।

– दोषपूर्ण वस्तु के स्थान पर नई वस्तु दी जाए।

– उपभोक्ता को माल का मूल्य लौटा दिया जाए।

– क्षति के लिए उपभोक्ता को हर्जाने का भुगतान किया जाए।

(6) यदि दोनों में से कोई भी पक्षकार जिला फोरम के निर्णय से संतुष्ट न हो तो वह 30 दिन के अन्दर राज्य आयोग के समक्ष अपील कर सकता है।

(B) **राज्य आयोग** (State Commission) – राज्य आयोग प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा स्थापित किया जाता है। इसकी मुख्य विशषताएं निम्नलिखित है :

(1) इसमें भी एक अध्यक्ष सहित तीन सदस्य होते हैं जिनमे से एक महिला सदस्य का होना अनिवार्य है। इनकी नियुक्ति राज्य सरकार करती है। अध्यक्ष केवल उसी व्यक्ति को नियुक्त किया जा सकता है जिसमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की योग्यताएं हो।

(2) राज्य आयोग में 5 लाख से 20 लाख रुपये तक के मूल्य विवादों से संबंधित शिकायतों का समाधान किया जाता है।

(3) शिकायत दर्ज होने पर इस बात की सूचना विरोधी पक्षकार को भेज दी जाती है।

(4) यदि आवश्यकता हो तो माल का परीक्षण करवाया जाता है। माल दोषपूर्ण सिद्ध हो जाने पर दोषी पक्षकार को राज्य आयोग द्वारा जिला फोरम के भांति ही एक या अधिक आदेश दिए जा सकते हैं।

(5) यदि कोई भी पक्षकार राज्य आयोग के निर्णय से संतुष्ट न हो तो वह 30 दिन के अन्दर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील कर सकता है।

(C) **राष्ट्रीय आयोग** (National Commission) – राष्ट्रीय आयोग की स्थापना केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है। इसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

(1) इसमें एक अध्यक्ष संहित पांच सदस्य होते हैं जिनमें से एक महिला सदस्य का होना अनिवार्य है। इनकी नियुक्ति सरकार करती है। अध्यक्ष केवल उसी व्यक्ति को नियुक्त किया जा सकता है जिसमें उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की योग्यताएं हो।

(2) राष्ट्रीय आयोग में 20 लाख रुपये से अधिक मूल्य के विवादों से संबंधित शिकायतों का समाधान किया जाता है।

(3) शिकायत दर्ज होने पर इस बात की सूचना विरोधी पक्षकार को भेज दी जाती है।

(4) राष्ट्रीय आयोग द्वारा भी दोषी पक्षकार को राज्य आयोग की भांति ही एक या अधिक आदेश दिए जा सकते हैं।

(5) यदि कोई पक्षकार राष्ट्रीय आयोग के निर्णय से संतुष्ट न हो तो वह 30 दिन के अन्दर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील कर सकता है।

उपभोक्ताओं का दायित्व
(Consumer's Responsibilities)

वस्तुओं को क्रय करने से संबंधित जहां उपभोक्ताओं को अनेक अधिकार प्राप्त है वहीं उनके कुछ दायित्व भी हैं अर्थात् उपभोक्ताओं को वस्तुओं का क्रय करते समय कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए। ये निम्नलिखित हैं :

1. **जल्दबाजी में क्रय न करें** (Do not buy in hurry) – उपभोक्ताओं का सबसे पहला दायित्व यह है कि उन्हें कभी भी जल्दबाजी में क्रय नहीं करना चाहिए। इसके लिए उपभोक्ताओं को चाहिए की समय से पहले ही अपनी वस्तुओं की आवश्यकताओं का अनुमान लगा ले और इस बात पर विचार कर ले कि कौन–सी वस्तु कितनी मात्रा में व कहां से खरीदनी है।

2. **विवेकहीन बनकर क्रय न करें** (Do not Buy Blindly) – उपभोक्ताओं को चाहिए की वस्तुएं खरीदते समय अपने विवेक का पूरा प्रयोग करें। ऐसा नहीं होना चाहिए की जो विक्रेता ने कह दिया वही ठीक है।

3. **झूठे विज्ञापन से बचें** (Beware of False Advertisement) – विक्रेता विज्ञापन के माध्यम से वस्तुओं की सूचना क्रेताओं तक पहुंचाते हैं। अधिक बिक्री के उद्देश्य से विक्रेता विज्ञापन में वस्तुओं के गुणों को बढ़ा–चढ़ा कर प्रदर्शित करते हैं। अतः उपभोक्ताओं का यह दायित्व है कि विज्ञापन की सत्यता को पहचाने।

4. **क्वालिटी से समझौता न करें** (Do not Compromise with Quality) – उपभोक्ताओं को चाहिए की माल की क्वालिटी से कभी भी समझौता न करें अर्थात् कम मूल्य के लालच में आकर घटिया क्वालिटी का माल न खरीदे। यदि उपभोक्ता ऐसा करते है तो फिर उन्हें कोई सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता।

5. **आई. एस. आई. तथा एगमार्क चिन्हित माल ही क्रय करें** (Buy only ISI and Agmark Marked Goods) – उपभोक्ताओं का यह दायित्व है कि केवल वे ही वस्तुएं खरीदें जिन पर ISI अथवा Agmark लिखा हो। ये दोनों चिन्ह माल की अच्छी क्वालिटी के प्रतीक है।

6. **रसीद व गारंटी/वारंटी कार्ड प्राप्त करना न भूलें** (Do not Forget to get Receipt and Guarantee/Warantee Card) – माल का बिल अथवा रसीद अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिए। इसके साथ ही माल की गारंटी/वारंटी दी गई है तो गांरटी/वारंटी कार्ड भी प्राप्त करना नहीं भूलना चाहिए। माल की क्वालिटी को लेकर विक्रेता से झगड़ा होने की दशा में ये सभी प्रपत्र (Documents) काम आते हैं।

उपभोक्ता संगठनों तथा गैर सरकारी संगठनों की भूमिका
(Role of Consumer Organisations and Non-Govt. Organisations)

उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए सरकार की ओर से अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त अनेक उपभोक्ता संगठन भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे है। इस समय भारत में लगभग 500 उपभोक्ता संगठन है। देश में इन्होंनें उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा में काफी योगदान दिया है। इनमें से कुछ मुख्य उपभोक्ता संगठनों के नाम निम्नलिखित हैः

(*i*) Consumer's Guidance Society of India, Mumbai

(*ii*) Citizen Action Group, Mumbai

(*iii*) Consumer's Action Forum, Kolkata

(*iv*) Consumer's Action Forum, Delhi

(*v*) Consumer's Acton Forum, Chennai

(*vi*) Common Case, New Delhi

(*vii*) Consumer's Forum, Udipi

(*viii*) The Citizen Forum, Hubli

(*ix*) VOICE, New Delhi

(*x*) Mumbai Grahak Panchayat, Mumbai

ये उपभोक्ता संगठन निम्नलिखित कार्य करते हैं :

1. **उपभोक्ताओं को शिक्षा प्रदान करना** (To provide education to consumeras) – उपभोक्ता संगठन का प्रथम कार्य उपभोक्ताओं को अपने कार्यों के प्रति जागरूक करना है। यह काम करने के लिए इनके द्वारा अनेक पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती है इसके अतिरिक्त समय–समय पर सम्मेलन एवं गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है।

2. **विभिन्न उत्पादों के नमूने इकट्ठे करना व उनका निरीक्षण करना** (To collect samples of various products and testing them) – ये संगठन समय–समय पर विभिन्न उत्पादों के नमूने इकट्ठे करके उनका निरीक्षण करते हैं तथा निरीक्षण के परिणामों को उपभोक्ताओं तक पहुंचाते हैं। इस प्रकार ये संगठन विभिन्न उत्पादों के ठीक या गलत होने की पूर्व सूचना उपभोक्ताओं को देकर उनको संरक्षण प्रदान करते हैं।

3. **उपभोक्ताओं के लिए मुकदमा दायर करना** (To file suit on behalf of consumers) – जब भी कोई पीड़ित उपभोक्ता अपनी शिकायत के विरूद्ध आवाज उठाने में नाकामयाब रहते हैं तो उपभोक्ता संगठन उसकी ओर से कोर्ट में मुकद्दमा दायर करते हैं। उपभोक्ता संगठनों द्वारा सेवा प्रदान करने से उपभोक्ता कभी भी स्वयं को अकेला महसूस नहीं करते।

4. **बढ़ते मूल्यों के विरूद्ध आवाज उठाना** (To raise voice against rising prices) – जिन वस्तुओं के मूल्य अनावश्यक रूप से लगातार बढ़ते हैं उपभोक्ता संगठन ऐसी प्रवत्ति के विरूद्ध आवाज उठाते हैं।

5. **मिलावट आदि को रोकना** (To prevent adulterationate) – उपभोक्ता संगठन मिलावट, जमाखोरी, चोर बाजारी तथा कम तोल की बिक्री जैसी बुराईयों को रोकने में अहम भूमिका निभाते हैं।

6. **शैक्षणिक संस्थाओं की सहायता करना** (To help educational institutions) – ये संगठन विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं को बताते हैं कि उपभोक्ता संरक्षण के लिए उन्हें किस तरह के पाठ्यक्रम तैयार करने चाहिए। उपभोक्ता संगठन इस बात पर जोर देते हैं कि सामान्य पाठ्यक्रम में उपभोक्ता संरक्षण के अध्याय को भी जोड़ा जाए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपभोक्ता संगठनों द्वारा उपभोक्ता संरक्षण के लिए अहम् भूमिका अदा की जाती है।

खण्ड 5

अध्याय-14

विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 (फेमा)

(The Foreign Exchange Management Act, 1999 (FEMA)

भारतीय रिजर्व बैंक, विदेशी विनिमय व्यवहारों पर उन नीतियों के अन्तर्गत नियंत्रण करता है जिन्हें केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक की सहमति से तैयार करती है। भारत सरकार को विदेशी व्यापार पर नियंत्रण में सहयोग हेतु, रिजर्व बैंक सन् 1999 के अन्त तक विदेशी विनियम नियमन अधिनियम, 1973 के अन्तर्गत विदेशी–विनिमय पर नियंत्रण करता था। अब इस अधिनियम के स्थान पर, 1 जून 2000 से 'विदेशी विनिमय–प्रबन्धन अधिनियम, 1999 को लागू कर दिया गया है।

भारत में आर्थिक उदारीकरण को बढ़ावा देने के दष्टिकोण से सन् 1993 में FERA का पुनावलोकन (Review) किया गया तथा इसके कई प्रावधानों में संशोधन भी किया गया। केन्द्र सरकार ने, फेरा में परिवर्तन के लिए एक कार्य–दल का गठन भी इसी वर्ष किया, जिसकी अनुशंसा के आधार पर, विदेशी व्यापार के विकास को ध्यान में रखते हुए, संसद में 'विदेशी विनिमय प्रबन्धन बिल' 1994 में प्रस्तुत किया। इसे लोक सभा ने नवम्बर 1999 में तथा राज्य सभा ने 8 दिसम्बर, 1999 को पारित कर दिया।

यह अधिनियम (फेमा) सात अध्यायों में विभाजित है तथा अभी प्रारम्भिक स्तर पर इसमें 49 धाराएँ हैं। यह आकार में छोटा किन्तु एक सारगर्भित दस्तावेज है तथा इसमें विदेशी विनियम की व्यवस्थाओं के उल्लंघन स्वं अत्यन्त कठोर प्रावधानों की व्यवस्था है।

अधिनियम के प्रमुख प्रावधान
(Main Provisions of the Act)

प्रस्तुत अध्याय में अध्ययन की दष्टि से तथा पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए हमने इस अधिनियम के प्रावधानों का विवेचन निम्नांकित ढंग से किया है –

- **अधिनियम के उद्देश्य**
    1. संक्षिप्त शीर्षक एवं क्षेत्र,
    2. आधारभूत परिभाषाएं।
- **विदेशी विनिमय का नियमन एवं प्रबन्धन।**
- **अधिकृत व्यक्ति।**
- **'फेमा की व्यस्थाओं का उल्लंघन एवं दण्ड।**
- **निर्णय एवं पुनर्विचार।**
- **प्रवर्तन निदेशालय।**
- **विविध प्रावधान**

अधिनियम के उद्देश्य
(Objects of the Act)

इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य भारतीय मुद्रा को देश के बाहर जाने से रोकना तथा राष्ट्र के लिए अधिकतम विदेशी मुद्रा की प्राप्ति है। इस नये कानून के अन्तर्गत, ''यदि कोई व्यक्ति व्यवसाय के लिए देश से बाहर जाता है तो वह 25000 डॉलर तक ले जा सकता है। इसी प्रकार, कोई भी नागरिक, बाहर जाने के लिए (यदि वह ऐसे कार्यो के लिए जा रहा हो जिससे की राष्ट्र को लाभ पहुंचता हो) 5000 डॉलर प्रतिवर्ष ले जा सकता है।''

इस अधिनियम के निम्न उद्देश्य हैं –

1. देश के लिए विदेश–विनिमय का संचय बढ़ाना,
2. विदेशी व्यापार में सारगर्भित वद्धि को प्रोत्साहन देना ,
3. सीमा–शुल्क का विवेकीकरण करना,
4. विदेशी–विनियोगों में उदारीकरण को प्रोत्साहित करना,
5. भारतीय व्यापारियों द्वारा प्रदत्त बाह्य व्यापारिक ऋणों में वद्धि करना , तथा
6. हमारे स्कन्ध बाजारों में विदेशी संस्थागत विनिजोयकों की भागीदारी सुनिश्चित करना।

1. संक्षिप्त शीर्षक एवं क्षेत्र (Short Title and Extent)

(a) इस अधिनियम का नाम विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 होगा।

(b) यह सम्पूर्ण भारत वर्ष पर लागू होगा।

(c) यह उन सभी शाखाओं, कार्यालयों एवं एजेन्सियों पर भी लागू होगा जो कि भारत के बाहर है तथा जो भारत के निवासी व्यक्ति के नियंत्रण में है।

(d) यह उस स्थिति से प्रभावी माना जाएगा, जबकि केन्द्र सरकार राजपत्र (Gazette) में इस आशय की अधिसूचना जारी कर देगी।

इस अधिनियम में, यह भी निश्चित किया गया है कि सरकार विभिन्न तिथियों पर इसके पथक–पथक प्रावधानों को लागू कर सकते हैं।

2. आधारभूत परिभाषाएँ (Basic Definitions)

1. **निर्णायक अधिकारी (*Adjusting Authority*)** – इससे आशय धारा 16 कह उपधारा (1) के अन्तर्गत आने वाले अधिकृत–अधिकारी से है। [धारा 2 (a)]
2. **पुनरावेदन न्यायाधिकरण (*Appellate Tribunal)*** – इसका तात्पर्य, उस न्यायाधिकरण से है जो धारा 18 के अन्तर्गत विदेशी–विनियम के लिए गठित किया गया है। [धारा 2 (b)]
3. **अधिकृत व्यक्ति (*Authorised Person*)** – ऐसा व्यक्ति कोई अधिकृत डीलर, मुद्रा परिवर्तक, अपतट बैंकिग इकाई (Off-shore Banking Unit) या अन्य वह व्यक्ति हो सकता है जिसे धारा 10 की उपधारा (1) के अन्तर्गत विदेशी विनियम या विदेशी प्रतिभूतियों में व्यवहार करने के लिए अधिकृत किया गया हो। [धारा 2 (c)]
4. **बैंच (*Bench*)** से तात्पर्य पुनरावेदन न्यायाधिकरण की बैंच से है। [धारा 2 (d)]
5. **पूँजी खाता व्यवहार (*Capital Account Transactions*)** – इससे आशय उस व्यवहार से है जो भारत में निवासी व्यक्तियों के, भारत के बाहर की सम्पत्तियों के, भारत के बाहर की सम्पत्तियों और देनदारियों, जिनमें संभाव्य देनदारियाँ भी सम्मिलित है, में परिवर्तन लाता है। इसमें धारा 6 की उपधारा (3) के व्यवहारों को भी सम्मिलित किया जाता है। [धारा 2 (e)]
6. **सभापति (*Chair-person*)** – से आशय पुनरावेदन न्यायाधिकरण के सभापति से है। [धारा 2 (f)]

7. **चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट (*Chartered Accountant*)** – इसको नियत करते समय, इससे आशय चार्टर्ड एकाउन्टेट्स अधिनियम 1949 की धारा 2 (1) में दिये गये अनुच्छेद (ब) से होगा। [धारा 2 (g)]

8. **प्रचलित मुद्रा (*Currency*)** – इसमें प्रचलित कागजी नोट, पोस्टल नोट, पोस्टल ऑर्डर, मनी–ऑर्डर, चैक, ड्राफ्ट्स, यात्री चैक, साख–पत्र, विनिमय बिल, प्रतिज्ञा पत्र, क्रेडिट–कार्ड एवं वे सभी प्रपत्र (Instruments) आदि सम्मिलित हैं जिन्हें रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा अधिसूचित किया जाता है। [धारा 2 (h)]

9. **प्रचलित कागजी मुद्रा (*Currency Notes*)** – इसमें सिक्के तथा बैंक–नोट सम्मिलित हैं। [धारा 2 (i)]

10. **चालू खाता व्यवहार (*Current Account Transactions*)** – इसमें पूँजी खाता व्यवहारों को छोड़कर, निम्न व्यवहारों को सम्मिलित किया गया है –

    (*i*) विदेशी व्यापार से संबंधित देय भुगतान, अन्य चालू व्यवसाय, सेवाएँ, लघु–अवधि बैंकिंग एवं साख सुविधाएँ;

    (*ii*) ऋणों पर देय ब्याज का भुगतान और विनियोगों से प्राप्त शुद्ध आय;

    (*iii*) विदेशों में निवास कर रहे अपने माता–पिता, पति/पत्नी एवं बच्चों के जीवन–यापन के खर्चो के लिए प्रेषित धनराशि; तथा

    (*iv*) अपने माता–पिता, पति/पत्नी एवं बच्चों पर किये गये ऐसे समस्त खर्चे, जो विदेशी भ्रमण, शिक्षण एवं स्वास्थ्य चिकित्सा से संबंधित हों। [धारा 2 (j)]

11. **प्रवर्तन-निदेशक (*Direct of Enforcement*)** से आशय, धारा 36 की उपधारा (1) के अनुसार नियुक्त प्रवर्तन निदेशक से है। [धारा 2 (k)]

12. **निर्यात (*Export*)** – इस शब्द के व्याकरण–सम्मत परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित अर्थ होगा –

    (*i*) भारत में कोई भी माल, भारत के बाहर ले जाना; एवं

    (*ii*) किसी भी व्यक्ति को भारत से बाहर सेवाएँ प्रदान करना। [धारा 2 (l)]

13. **विदेशी मुद्रा (*Foreign Currency*)** से आशय भारतीय चल मुद्रा के अतिरिक्त अन्य किसी विदेशी चल मुद्रा से है। [धारा 2 (m)]

14. **विदेशी विनिमय (*Foreign Exchange*)** – इसका आशय, विदेशी मुद्रा में निम्न को सम्मिलित करने से है –

    (*i*) जमाएँ, साख एवं शेष जो किसी भी विदेशी मुद्रा में देय हो;

    (*ii*) ड्राफ्ट्स, यात्री चैक, साख–पत्र या विनिमय–विपत्र जो भारतीय मुद्रा में उल्लेखित या आहरित हो किन्तु किसी विदेशी मुद्रा में देय हो; तथा

    (*iii*) ड्राफ्ट्स, यात्री, चैक, साख पत्र या विनिमय–विपत्र जो भारत के बाहर किसी बैंक द्वारा, किसी संस्था द्वारा या किसी व्यक्ति द्वारा आहरित हो किन्तु जिनका भुगतान भारतीय प्रचलित मुद्रा में किया गया हो। [धारा 2 (n)]

15. **विदेशी प्रतिभूति (*Foreign Security*)** – इससे तात्पर्य, कोई भी ऐसी प्रतिभूति से है जो अंशों, स्कन्धों, बन्ध–पत्रों (Bonds) ऋणपत्रों एवं किसी अन्य प्रपत्र से है जो विदेशी मुद्रा में उल्लेखित है। इसमें वे प्रतिभूतियाँ भी सम्मिलित है जो विदेशी मुद्रा में उल्लेखित हैं किन्तु जिनके ब्याज एवं लाभांश की वापसी भारतीय प्रचलित मुद्रा में उल्लेखित है किन्तु ब्याज एवं लाभांश की वापसी भारतीय प्रचलित मुद्रा में होनी हो। [धारा 2 (o)]

16. **आयात (*Import*)** से आशय, भारत में वस्तुओं और सेवाओं का लाना है। [धारा 2 (p)]

17. **भारतीय प्रचलित मुद्रा (*Indian Currency*)** – इससे आशय, ऐसी मुद्रा से है जो भारतीय रुपये में आहरित अथवा उल्लेखित है किन्तु इसमें विशेष बैंक नोट एवं एक रुपये का वह नोट सम्मिलित नहीं है जिसे भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 28-A के निर्गमित किया गया है। [धारा 2 (q)]

18. **वैधानिक व्यवसायी/पेशाकार (*Legal Practitioner*)** से आशय अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (Advocates Act, 1961) की धारा 2 (1) में दिये गये अर्थ से है। [धारा 2 (r)]

19. **'सदस्य (*Member*)** से तात्पर्य, पुनरावेदन न्यायाधिकरण के सदस्य, जिनमें सभापति (Chairperson) भी सम्मिलित हैं, से है। [धारा 2 (s)]

20. **'सूचित करना' (*Notify*)** – इससे आशय, राजकीय गजट में अधिसूचना जारी करने से है। [धारा 2 (t)]

21. **'व्यक्ति' (*Person*)** – इसमें निम्न सम्मिलित हैं –

 (*i*) एक व्यक्ति (Individual),

 (*ii*) एक हिन्दु अविभाजित परिवार,

 (*iii*) एक कम्पनी,

 (*iv*) एक फर्म,

 (*v*) व्यक्तियों का एक संघ अथवा संस्था, चाहे वह समामेलित हो या नहीं,

 (*vii*) प्रत्येक वैधानिक एवं कृत्रिम व्यक्ति, जिसका पूर्व में पराभाव हो या नहीं,

 (*viii*) कोई भी एजेंसी, कार्यालय या शाखा, जिसका नियंत्रण ऐसे व्यक्तियों के हाथ में हो। [धारा 2 (u)]

22. **भारत में निवासी व्यक्ति (*Person Resident in India*)** – ऐसे व्यक्ति से तात्पर्य –

 (*i*) उस व्यक्ति से है जो विगत वित्तीय वर्ष में 182 दिन से अधिक भारत में रहा हो, किन्तु इसमें निम्न को सम्मिलित नहीं किया जाता है –

 (A) भारत का एक नागरिक जो भारत से बाहर जा चुका है या बाहर रहता है, सम्मिलित नहीं है –

 भारत के बाहर रोजगार के लिए गया हो, अथवा

 भारत के बाहर व्यवसाय या धन्धा चलाने के लिए गया हो, अथवा

 किसी अन्य उद्देश्य से, जिससे उसकी इच्छा अनिश्चित अवधि के लिए भारत से बाहर रहने का संकेत करती है।

 (*ii*) भारत का एक नागरिक, जिसका भारत में आवास समाप्त हो गया था, भारत में लौटता है या रहता है–

 भारत में रोजगार के लिए आने पर, अथवा

 भारत में व्यवसाय या धन्धा चलाने के लिए, अथवा

 किसी अन्य उद्देश्य के लिए, ऐसी परिस्थितियाँ जो उसकी इच्छा को अनिश्चित अवधि के लिए भारत में रुकने का संकेत करे।

 (*iii*) कोई व्यक्ति या निगम–निकाय (Body Corporate) जो कि भारत में पंजीकृत या समामेलित है।

 (*iv*) ऐसा कोई कार्यालय, कोई शाखा या कोई एजेन्सी जो कि भारत के बाहर है किन्तु उसका स्वामित्व एवं नियंत्रण भारतीय निवासी के हाथ में है। [धारा 2 (v)]

23. **अप्रवासी भारतीय (*Person Resident Outside India*)** – इसका आशय ऐसे व्यक्ति से है जो भारत में निवासी नहीं है। [धारा 2 (w)]

24. **निर्धारित (*Prescribed*)** से आशय, इस अधिनियम के अधीन बताए गए निर्धारित नियमों से है।[धारा 2 (x)]

25. **भारत में प्रत्यावर्तित (*Repatriate of India*)** – इससे आशय, प्राप्त विदेशी–विनियम को भारत में लाना है, और –

 (*i*) भारत में रह रहे किसी अधिकृत व्यक्ति को विदेशी–विनिमय का रुपये के बदले विक्रय, या

 (*ii*) रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा निश्चित की गई राशि तक विदेशों से प्राप्त रकम के खाते पर, भारत में निवासी व्यक्ति द्वारा नियंत्रण हो एवं विदेशों से प्राप्त वह राशि जो ऋण या उत्तरदायित्व के रूप में प्रत्यावर्तित होकर देश में आयी है, को ''भारत में प्रत्यावर्तित'' कहा जाता है। [धारा 2 (y)]

26. **रिजर्व बैंक (*Reserve Bank*)** – इससे आशय, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम 1934 की धारा 3 के अंतर्गत गठित भारतीय रिजर्व बैंक से है। [धारा 2 (z)]

27. **प्रतिभूति (*Security*)** – इससे तात्पर्य उन अंशों, स्कन्धों, बॉण्ड्स, ऋणपत्रों, लोक–ऋण अधिनियम 1944 में परिभाषित सरकारी प्रतिभूतियों, सरकारी बचत, प्रमाण पत्र अधिनियम 1959 के अन्तर्गत बचत प्रमाण–पत्रों, प्रतिभूतियों की जमा रसीदों, भारतीय प्रन्यास ट्रस्ट अधिनियम, 1963 के अन्तर्गत जारि यूनिटों, म्युचुअल फण्ड्स, प्रतिभूति के शीर्षक का कोई भी प्रमाण पत्र, सरकारी प्रतिज्ञा–पत्र एवं अन्य ऐसा कोई भी अन्य भी प्रपत्र, जिसे रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा प्रतिभूति घोषित किया जाता है। इसमें विनिमय–विपत्र एवं प्रतिज्ञा–पत्र सम्मिलित नहीं है। [धारा 2 (za)]

28. **सेवा (*Service*)** – 'सेवा' से तात्पर्य उन महत्वपूर्ण कार्यों एवं विभिन्न सुविधाएँ प्राप्त करने से है जो बैकिंग, वित्त, बीमा चिकित्सा, कानूनी सहायता, चिट–फण्ड, वास्तविक परिसम्पत्ति, परिवहन, प्रोसेसिंग, बिजली एवं अन्य प्रकृति की ऊर्जा की आपूर्ति, बोडिंग तथा लॉजिंग, मनोरंजन, समाचारों एवं अन्य सूचनाओं का प्रबन्ध करने से है। परन्तु व्यक्तिगत सेवा के अनुबन्धों एवं मुफ्त सेवाओं को, 'सेवा' में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

[धारा 2 (zb)]

29. **विशिष्ट निदेशक (पुनर्विचार) (*Special Director : Appeals*)** – से आशय, इस अधिनियम की धारा 18 के अन्तर्गत नियुक्त अधिकारी से है। [धारा 2 (zc)]

30. **'विशेष रूप से उल्लेखित' (*Specify*)** से आशय, इस अधिनियम के अधीन निर्मित विनिमयों के द्वारा विशेष रूप से उल्लेखित करने से है। [धारा 2 (zd)]

31. **हस्तान्तरण (*Transfer*)** – इसमें विक्रय क्रय, विनिमय, बंधक, गिरवी, उपहार, ऋण या अन्य अधिकारों, शीर्षकों एवं ग्रहणाधिकार के अन्तर्गत किये जाने वाले हस्तान्तरणों से है। [धारा 2 (ze)]

विदेशी विनिमय का नियमन एवं प्रबन्ध

(Regulation and Management of Foreign Exchange)

1. **विदेशी-विनिमय में व्यवहार (Dealings in Foreign)** – इस अधिनियम के अन्तर्गत दिये गये नियमों एवं विनिमयों के अन्तर्गत या रिजर्व बैंक की सामान्य अथवा विशेष अनुमति के बिना कोई भी व्यक्ति –

   (a) अधिकृत व्यक्ति के माध्यम के अतिरिक्त कोई विदेशी विनिमय या विदेशी प्रतिभूति किसी अन्य व्यक्ति को न तो हस्तान्तरित कर सकेगा, न ही ऐसा व्यवहार कर सकेगा;

   (b) किसी गैर सरकारी व्यक्ति (Person resident outside India) को सामान्य रूप से या उसकी साख के लिए कोई भुगतान नहीं करेगा;

   (c) अधिकृत व्यक्ति के माध्यम के अतिरिक्त, अन्य किसी भी रूप में भारत के बाहर स्थित व्यक्ति के आदेश से या उसकी ओर से कोई भी भुगतान प्राप्त नहीं करेगा;

   (d) किसी भी ऐसे 'वित्तिय व्यवहार' (Financial Transaction) में सम्मिलित नहीं हो सकेगा जिससे कि भारत के बाहर किसी व्यक्ति के पक्ष में किसी सम्पत्ति का हस्तान्तरण निर्माण या अधिग्रहण होता हो।

2. **विदेशी विनियम पर नियंत्रण (Holding of Foreign Exchange)** – यदि इस अधिनियम में कोई विपरीत व्यवस्था नहीं की गई हो तो कोई भी भारत में निवासी व्यक्ति, विदेश–स्थित अचल संपति, विदेशी विनिमय एवं विदेशी प्रतिभूतियों का अधिग्रहण, धारण उन पर स्वामित्व, ग्रहणाधिकार या हस्तांतरण नहीं कर सकता है। [धारा 4]

3. **चालू खाता व्यवहार (Current Account Transactions)** – कोई भी व्यक्ति चालू खाता व्यवहारों के अन्तर्गत, किसी भी अधिकृत व्यक्ति को या उससे विदेशी विनिमय का विक्रय अथवा आहरण कर सकता है। इस धारा के अन्तर्गत यह प्रावधान भी किया गया है कि केन्द्रीय सरकार जनता के हित में, रिजर्व बैंक से परामर्श करके ऐसे व्यवहारों पर प्रतिबन्ध लगा सकती है। [धारा 5]

4. **पूँजी खाता व्यवहार (Capital Account Transaction)**

(a) धारा 6 की उपधारा (2) में, यह स्पष्ट किया गया है कि पूँजी खात व्यवहारों के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति किसी भी अधिकृत व्यक्ति से विदेशी विनिमय आहरित कर सकता है या उसे विक्रय कर सकता है।

(b) रिजर्व बैंक, केन्द्रीय सरकार से परामर्श करके –

(*i*) पूँजी खाता व्यवहारों की श्रेणियाँ निश्चित कर सकता है।

(*ii*) भारत के बाहर निवासी व्यक्ति द्वारा किसी प्रतिभूति के निर्गमन एवं हस्तान्तरण के बारे में;

(*iii*) भारत के बाहर निवासी व्यक्ति द्वारा भारत में स्थापित किसी शाखा, कार्यालय या एजेन्सी द्वारा किसी प्रतिभूति या विदेशी प्रतिभूति के निर्गमन अथवा हस्तान्तरण के बारे में;

(*iv*) एक भारत के निवासी और भारत के बाहर के निवासी व्यक्ति के द्वारा, किस नाम से और किस स्वरूप में रुपये के बदले, विदेशी विनिमय को उधार लिया जा सकेगा, के बारे में;

(*v*) भारत के निवासी और अप्रवासी व्यक्तियों के मध्य हुई जमाओं के बारे में;

(*vi*) प्रचलित मुद्रा या प्रचलित मुद्रा नोट्स के आयात, निर्यात एवं नियंत्रण के बारे में;

(*vii*) भारत के निवासी द्वारा, भारत के बाहर अचल सम्पत्ति का हस्तांतरण अथवा उसे अधिकतम पाँच वर्ष के लिए पट्टे पर देने के संबंध में;

(*viii*) एक अप्रवासी व्यक्ति द्वारा, भारत में अचल सम्पत्ति का हस्तान्तरण अथवा उसे अधिकतम पाँच वर्ष के लिए पट्टे पर देने के संबंध में;

(*ix*) किसी भी ऋण या दायित्व की ऐसी गारन्टी के बारे में जो कि

- एक भारतीय निवासी के द्वारा अप्रवासी पर देय ऋण या दायित्व के लिए हो, या
- अप्रवासी व्यक्ति के द्वारा दी गई हो, के बारे में, इन नियमों का (नियमन एवं प्रतिबंध से संबंधित) प्रति पादन किया गया है।

(c) एक व्यक्ति जो भारत का निवासी है, भारत के बाहर स्थित अचल सम्पत्ति, विदेशी मुद्रा अथवा विदेशी प्रतिभूति में विनियोग कर सकता है, स्वामित्व एवं नियंत्रण स्थापित कर सकता है या हस्तान्तरण कर सकता है, यदि ऐसी प्रचलित मुद्रा, प्रतिभूति या सम्पत्ति, ऐसे व्यक्ति के द्वारा अधिग्रहीत या स्वामित्व की हो जो व्यक्ति अप्रवासी था अथवा उसके उत्तराधिकरी के रूप में भारत के बाहर रह रहा था।

(d) एक व्यक्ति जो आप्रवासी है, भारत में स्थित अचल सम्पत्ति, प्रचलित मुद्रा अथवा किसी प्रतिभूति में विनियोग कर सकता है, उस पर स्वामित्व एवं नियंत्रण स्थापित कर सकता है, तथा हस्तांतरण कर सकता है, यदि ऐसी प्रचलित मुद्रा, प्रतिभूति या सम्पत्ति उस समय अधिग्रहीत या धारित की गई हो जब की वह भारत में निवासी था या वह उत्तराधिकारी के रूप में भारत में निवासी था।

(e) रिजर्व बैंक, बिना किसी पूर्वाग्रह के नियम बनाकर, आप्रवासी व्यक्ति के भारत में स्थित किसी भी कार्यालय, शाखा अथवा अन्य स्थानों पर संचालित व्यवसाय को निषेध कर सकता है, प्रतिबंध लगा सकता है अथवा ऐसी संस्थाओं को नियमन कर सकता है।

5. **वस्तुओं और सेवाओं का निर्यात (Export of Goods and Services)**

(a) प्रत्येक निर्यातक के लिए यह आवश्यक होगा कि –

(a) वह रिजर्व बैंक या अन्य प्राधिकारी (Authority) को, निर्धारित विधि से एवं निर्धारित प्रपत्र में, सम्पूर्ण निर्यात से संबंधित विवरण, निर्यात किये जाने वाले माल का पूर्ण मूल्य और जहाँ निर्यात करते समय तक माल का मूल्य निश्चित नहीं किया जा सके तो बाजार में प्रचलित वह मूल्य जो कि विदेशों में माल बेचने से प्राप्त होने की आशा हो, को सत्य एवं सही रूप से भर कर प्रस्तुत करे।

(b) वह रिजर्व बैंक को अन्य वे सूचनाएँ भी प्रस्तुत करे जिससे की निर्यात–प्रक्रिया के सुचारू क्रियान्वयन का विश्वास, रिजर्व बैंक को हो सके।

(B) प्रत्येक निर्यातक द्वारा वस्तु का पूर्ण निर्यात मूल्य अथवा रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित (बाजार दशाओं के अनुरूप) मूल्य बिना किसी विलम्ब के प्राप्त कर लिया जाएगा, इस बात का विश्वास रिजर्व बैंक को दिलाना होगा।

(C) प्रत्येक सेवाओं के निर्यातक (Exporter of Services) के द्वारा रिजर्व बैंक अथवा अन्य प्राधिकारी को, निर्धारित विधि से एवं निर्धारित प्रारूप में सेवाओं के भुगतान को सत्य–विवरण प्रस्तुत करना होगा। [धारा 7]

6. **विदेशी विनिमय की वसूली एवं प्रत्यावर्तन (Realisation and Repatriation of Foreign Exchange)** – यदि इस अधिनियम में कोई विपरीत प्रावधान नहीं किया गया हो तो रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित विधि एवं निर्धारित समय के भीतर, भारत के निवासी किसी भी व्यक्ति को वे सभी कदम उठाने होंगे जिससे कि विदेशी विनिमय की रकम (देय अथवा उपार्जित) को स्वदेश में लाया जा सके। [धारा 8]

7. **धारा 4 एवं 8 से छूट (Exemption from Section 4 and 8)** – निम्न कुछ तथ्यों के अंतर्गत, उपरोक्त धाराओं से छूट प्रदान की गई है –

(a) यदि रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित सीमा के अन्तर्गत विदेशी मुद्रा या विदेशी सिक्के, किसी व्यक्ति के अधिकार में है;

(b) यदि रिजर्व बैंक की विशेष या सामान्य अनुमति से, भारत के बाहर कोई व्यक्ति 8 जुलाई, 1947 से पूर्व से विदेशी विनियम का धारक था या उसने प्राप्त की थी या उस विदेशी विनिमय पर कोई अन्य आय उपार्जित की थी;

(c) यदि रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित सीमा के भीतर, भारत में निवासी किसी व्यक्ति ने किसी उपहार अथवा उत्तराधिकार के अन्तर्गत कोई विदेशी विनिमय प्राप्त किया हो या उस पर कोई अन्य आय उपार्जित की हो;

(d) यदि रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित सीमा के अन्तर्गत, कोई व्यक्ति रोजगार से, व्यवसाय–व्यापार से, धन्धे से, सेवाओं से, मानदेय से, उपहार से, उत्तराधिकार से या किसी अन्य वैध रूप से विदेशी–विनिमय प्राप्त करता है; तथा

(e) ऐसी अन्य प्राप्तियाँ, जिन्हें विदेशी विनिमय के लिए रिजर्व बैंक ने विशिष्ट रूप से स्पष्ट किया है। [धारा 9]

अधिकृत व्यक्ति
(Authorised Person)

(a) रिजर्व बैंक, किसी व्यक्ति को आवेदन करने पर विदेशी विनिमय एवं विदेशी प्रतिभूतियों में व्यवहार करने के लिए, अधिकृत डीलर, मुद्रा, परिवर्तक या विदेशी बैंकिंग इकाई या किसी अन्य रूप में, जो भी उचित हो, अधिकृत कर सकता है। [धारा 10 (1)]

(b) ऐसा अधिकार, शर्तो के अधीन, जैसे भी उल्लेखित की जाती है, उन्हीं के अन्तर्गत लिखित में प्रदान किया जाएगा। [धारा 10 (2)]

(c) रिजर्व बैंक द्वारा उपधारा (1) के अन्तर्गत किसी भी समय ऐसे अधिकार का खण्डन किया जा सकेगा, यदि रिजर्व बैंक इस बात से संतुष्ट हो जाए कि –

(*i*) ऐसा करना जनहित में है, या

(*ii*) अधिकृत व्यक्ति विषय से सम्बन्धित शर्तों का पालन नहीं किया है या उसने इस अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन किया है अथवा अधिनियम के अन्तर्गत जारी किया नियम, अधिसूचना, निर्देश या आदेश का उल्लंघन किया है।

यह ध्यान रखने की बात है कि रिजर्व बैंक द्वारा ऐसे अधिकार का खण्डन तब तक नहीं किया जा सकेगा जब तक कि अधिकृत व्यक्ति को स्वयं के मामले में पक्ष प्रस्तुत करने का उचित अवसर नहीं दे दिया हाए। [धारा 10 (3)]

(d) यह धारा, एक अधिकृत व्यक्ति को इस बात के लिए बाध्य करती है कि अधिकृत व्यक्ति, विदेशी विनिमय एवं विदेशी प्रतिभूतियों के व्यवहारों के संबंध में, रिजर्व बैंक द्वारा समय–समय पर प्रसारित किये गये सामान्य अथवा विशेष निर्देशों एवं अनुदेशों को पालन करे। यह भी प्रावधान किय गया है कि एक अधिकृत व्यक्ति, रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति के बिना, विदेशी विनिमय या विदेशी प्रतिभूति के किसी भी व्यवहार में संलग्न नहीं होगा। [धारा 10 (4)]

(e) एक अधिकृत व्यक्ति, किसी व्यक्ति के लिए विदेशी विनिमय में किसी व्यवहार (Transaction) का उत्तरदायित्व लेने से पूर्व, उस व्यक्ति से ऐसी सूचना प्राप्त करने का अधिकार होगा जो उसे समूचित रूप से संतुष्ट कर सके कि किया जाने वाला व्यवहार, इस अधिनियम के उद्देश्यों का अपवंचन (Evasion) या उल्लंघन (Contravention) नहीं कर रहा है। यदि ऐसा व्यक्ति उस सूचना देने से इंकार करता है अथवा संतोषजनक उत्तर देता है अथवा किसी भी निर्देष का उल्लंघन करता है तो वह ऐसे मामले को रिजर्व बैंक को सुपुर्द कर सकता है। [धारा 10 (5)]

(f) अधिकृत व्यक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति, जो कि विदेशी विनिमय रखता है, या खरीदता है, जिसकी की उसने धारा 10 (5) के अन्तर्गत, अधिकृत व्यक्ति के सम्मुख घोषणा की है तो वह उस विदेशी विनिमय का, निर्धारित समय–सीमा के भीतर अधिकृत व्यक्ति को समर्पित नहीं करेगा और यदि वह इस अधिनियम के आदेशो/निर्देशों की अनुपालना नहीं करता है अथवा उल्लंघन करता है तो वह विदेशी विनिमय को किसी अन्य उद्देश्य के लिए न तो रख सकता है और न ही बेच सकता है। [धारा 10 (6)]

अधिकृत व्यक्तियों के लिए दिशा-निर्देश हेतु रिजर्व बैंक के अधिकार (Reserve Bank's Power to Issue Directions to authorised persons)

(a) रिजर्व बैंक, इस अधिनियम (FEMA) के नियमों, विनिमयों, अधिसूचनाओं या निर्देशों संबंधी प्रावधानों की पूर्ण अनुपालना के लिए, अधिकृत व्यक्ति हो, विदेशी विनिमय या विदेशी प्रतिभूति के भुगतान को करने या न करने के निर्देश प्रदान कर सकता है :

(b) जब कोई अधिकृत व्यक्ति, रिजर्व बैंक द्वारा दिये गये किसी भी निर्देश का उल्लघंन करता है या दिये गये निर्देश का पालन करने में असफल रहता है तो रिजर्व बैंक उस अधिकृत व्यक्ति को उचित सुनवाई का अवसर देने के पश्चात, दस हजर रुपयें तक का दण्ड निर्धारित कर सकता है और उल्लंघन जारी रहने पर, प्रतिदिन दो हजार रुपये का दण्ड, अनुपालना के समय पर, प्रदान कर सकता है। [धारा 1]

अधिकृत व्यक्ति के निरीक्षण का रिजर्व बैंक का अधिकार (Power of Reserve Bank to Inspect Authorised Person)

(a) रिजर्व बैंक, किसी भी समय, किसी भी अधिकारी के माध्यम से, लिखित में विशेष आदेश देकर, अधिकृत व्यक्ति के व्यवसाय का निम्न उद्देश्यों से निरीक्षण करवा सकता है –

   (*i*) रिजर्व बैंक को प्रस्तुत किये जाने वाले प्रपत्र, सूचना अथवा अन्य विवरणों के सही होन का सत्यापन करने हेतु;

   (*ii*) किसी भी ऐसी सूचना या विवरण को प्राप्त करने के लिए जिसे पूर्व में मांगे जाने पर, अधिकृत व्यक्ति देने से असफल रहा था,

   (*iii*) इस अधिनियम के किसी भी प्रावधान, नियम, विनिमय, निर्देश और आदेश का पालन करने के लिए।

(b) प्रत्येक अधिकृत व्यक्ति का या उसके स्थान पर कोई फर्म या कम्पनी है तो उसके प्रत्येक साझेदार, संचालक या अन्य कर्त्तव्य होगा कि निरिक्षण के लिए नियुक्त किसी अधिकारी के माँगने पर, निर्धारित समय के भीतर, अधिकृत व्यक्ति या फर्म या कम्पनी से संबंधित पुस्तकों, खातों एवं अन्य प्रपत्रों को, जिस विधि से संबंधित अधिकारी चाहे, उसे सुपुर्द करेंगे। [धारा 12]

'फेमा' की व्यवस्थाओं का उल्लंघन एवं दण्ड।
(Contravention and Penalties)

1. **दण्ड (Penalties)**

   (a) यदि कोई व्यक्ति रिजर्व बैंक द्वारा जारी तथा इस अधिनियम के अन्तर्गत दिए गए नियमों, विनिमयों,

अधिसूचनओं, निर्देशों या रिजर्व बैंक के अधिकार क्षेत्र में जारी की गई शर्तों का उल्लंघन करता है तो ऐसी दशा में –

(*i*) जहाँ राशि मापन योग्य (Quantifiable) हो तो उस राशि का तीन गुणा

(*ii*) जहाँ राशि मापन योग्य नहीं है, दो लाख रुपयें तक का दण्ड, रिजर्व बैंक अपने न्यायाधिक्षेत्र में, प्रदान कर सकता है।

(*iii*) यदि दण्ड निश्चित कर देने के पश्चात् भी, यह उल्लंघन जारी करता है तो दण्ड की राशि नहीं चुकाने तक पाँच हजार रुपया प्रतिदिन की दर से दण्ड देय होगा।

(b) कोई भी निर्णायक अधिकारी (Adjudicating Authority), 'उल्लंघन' के संबंध में निर्णय करते समय, उपधारा (1) के अन्तर्गत किसी दण्ड के संबंध में, जो कि तय हो चुका है, के लिए निर्देश दे सकता है कि ऐसे दण्ड की राशि को प्राप्त करने के लिए कोई भी प्रचलित मुद्रा (Currency), प्रतिभूति या अन्य राशि या 'सम्पत्ति' को, केन्द्र सरकार अधिहरण (Confiscate) कर सकती है। यह विदेशी विनिमय से रूप में भारत में लायी जाने वाली या भारत से बाहर ले जाने वाली राशि के उल्लंघन के संबंध में भी पुनः निर्देश प्रदान कर सकता है।

उपरोक्त परिच्छेद (ब) में 'सम्पत्ति' से तात्पर्य –

(a) बैंक में जमा उस राशि से है जो ऐसी सम्पत्ति से अर्जित की गई है;

(b) भारतीय प्रचलित मुद्रा, जिसे किसी सम्पत्ति से अर्जित किया गया है तथा

(c) कोई अन्य सम्पत्ति जो ऐसी सम्पत्ति से ही अर्जित की गई है, से है। [धारा 13]

2. **निर्णायक-अधिकारी के आदेश की प्रवर्तनीयता (Enforcement of the orders of adjusting authority)**

(A) इस अधिनियम की धारा 19 (2) के प्रावधानों के अनुसार, यदि 13 के अन्तर्गत दिए गए आर्थिक दण्ड का भुगतान, कोई व्यक्ति नोटिस की तिथि के पश्चात 90 दिन में भी करने में असफल रहता है तो वह दीवानी जेल (Civil Imprisonment) की सजा का भागी होगा।

(B) जब तक निर्णायक अधिकारी, दोषी व्यक्ति को नोटिस जारी करके उससे आर्थिक दण्ड के भुगतान नहीं होने का कारण नहीं पूछ लेता है और इस बात से सन्तुष्ट नहीं हो जाता है कि –

(*i*) नोटिस देने के पश्चात दोषी व्यक्ति ने दण्ड की राशि को भुगतान करने की उपेक्षा करके उसे बेईमानी से हस्तान्तरित कर दिया है, छिपा दिया है या सम्पत्ति के किसी भाग को (जो कि भुगतान से संबंधित है) नष्ट कर दिया है, या

(*ii*) नोटिस देने के पश्चात्, दोषी व्यक्ति, ऐसे भुगतान की राशि को चुकाने में लापरवाही (Neglected) करता है अथवा चुकाने से मना (Refuse) कर देता है।

(C) यदि निर्णायक अधिकारी, शपथ–पत्र या अन्य किसी आधार पर, इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि दोषी व्यक्ति को जारी किया गया 'दण्ड' का प्रमाण–पत्र क्रियान्वित करने से दोषी व्यक्ति फरार हो सकता है या निर्णायक अधिकारी के न्यायिक क्षेत्र को छोड़कर जा सकता है तो वह गिरफ्तारी वारन्ट जारी कर सकता है।

(D) उपधारा (1) के अन्तर्गत दिये गये नोटिस की पालना नहीं होने पर, निर्णायक–अधिकारी दोषी व्यक्ति के विरूद्ध गिरफ्तारी वारन्ट जारी करता है। उपधारा (3) और (4) के अन्तर्गत, निर्णायक अधिकारी के अतिरिक्त कोई अन्य निर्णायक अधिकारी भी, गिरफ्तारी वारन्ट को तब क्रियान्वित कर सकता है, जब कि वह उसके न्यायिक क्षेत्र (Jurisdiction) में पाया जाए।

(E) निर्गमित किए गए वारन्ट के आधार पर दोषी व्यक्ति को गिरफ्तार किये जाने से पूर्व, उसे निर्णायक अधिकारी के समक्ष वारन्ट जारी होने के 24 घण्टे के अन्दर प्रस्तुत किया जाएगा (यात्रा का समय सम्मिलित नहीं किया जाएगा)।

यदि दोषी व्यक्ति गिरफ्तार होने से पूर्व निर्णायक अधिकारी को, देय दण्ड की राशि अथवा अन्य लागतें चुका

देता है तो उसे अधिकारी द्वारा गिरफ्तार होने से मुक्त (Release) किया जा सकता है। (हिन्दू अविभाजित परिवार की दशा में, इस उपधारा के अन्तर्गत, कर्ता (Karta) को ही दोषी व्यक्ति माना जाएगा।)

(F) जब निर्णायक अधिकारी के द्वारा दिए गए 'कारण–बताओ' नोटिस के आधार पर, इस धारा के अन्तर्गत, एक दोषी व्यक्ति उपस्थित होता है तो निर्णायक–अधिकारी उसे जेल की सजा के लिए कह सकता है।

(G) यदि किसी दोषी जांच चल रही हो तो उसके पूरी होने तक, निर्णायक अधिकारी, उसे किसी भी ऐसे अधिकारी की हिरासत (Custody) में रखने और उसकी सुरक्षा के बारे में कह सकता है, जिसके लिए वह उचित समझता है।

(H) जाँच की समाप्ति को पश्चात् अधिकारी, दोषी व्यक्ति को जेल भेजने के आदेश जारी कर सकता है और यदि उसे गिरफ्तार नहीं किया गया है तो उसे गिरफ्तार करा सकता है। निर्णायक अधिकारी, दोषी व्यक्ति को कारावास में भेजने का आदेश देने से पूर्व, यदि दण्ड की बकाया राशि प्राप्त हो सकेगी इस बात से संतुष्ट हो जाता है तो वह दोषी व्यक्ति को, गिरफ्तार करने वाले अधिकारी से अधिकतम 15 दिन का समय, दोषी व्यक्ति को जेल भेजने से रोकने के लिए ले सकता है।

(I) यदि उपधारा (9) के अन्तर्गत अधिकारी दोषी व्यक्ति के लिए कारावास के आदेश जारी नहीं करता है और यदि वह गिरफ्तार किया जा चुका है तो निर्णायक अधिकारी, उसे छोड़ने के आदेश प्रदान कर सकता है।

(J) प्रत्येक ऐसे दोषी व्यक्ति को –

(a) जिस पर 1 करोड़ रुपए से अधिक बकाया हो, उसे तीन वर्ष तक का, तथा

(b) अन्य मामलों में छः माह का कारावास, निर्णायक अधिकारी द्वारा जारी प्रमाण–पत्र की क्रियान्वति के आधार पर, दिया जा सकता है। किन्तु, वारन्ट में वर्णित राशि को चुका देने पर, इस अवधि के पूर्व भी उसे जेल से रिहा किया जा सकता है।

(K) निर्णायक अधिकारी द्वारा जारी किए गए गिरफ्तारी आदेश की क्रियान्विति, अपराध–प्रक्रिया संहिता, 1973 (Code of Criminal Procedure 1973) के अन्तर्गत, भारतवर्ष में कहीं पर भी की जा सकती है। [धारा 14]

3. **उल्लंघन को संयोजित करने की शक्ति (Power to Compound Contravention)** – धारा 13 के अन्तर्गत किए गए उल्लंघन को मानते हुए, यदि कोई व्यक्ति प्रार्थना–पत्र देता है तो प्रवर्तन निदेशक अथवा प्रवर्तन निदेशालय का कोई अधिकारी या रिजर्व बैंक के अधिकारी, केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित विधि के अनुरूप 180 दिन के भीतर उस प्रार्थना पत्र पर विचार करके निर्णय का संयोजित कर सकते है।

उल्लंघन को संयोजित कर लेने के पश्चात्, उसके लिए न तो कोई आगामी प्रक्रिया जारी रहेगी और न ही उस पर कोई अन्य कार्यवाही होगी। [धारा 15]

निर्णय एवं पुनर्विचार
(Adjustment and Appeal)

1. **निर्णायक अधिकारी की नियुक्ति :**

(1) इस अधिनियम की धारा 13 के अन्तर्गत करने वाले व्यक्ति की जांच करने के लिए, केन्द्र सरकार गजट में अधिसूचना जारी करके, निर्धारित प्रारूप में विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति करने के लिए आदेश प्रसारित कर सकती है। ऐसे आदेश का मूल उद्देश्य उल्लंघन करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध दण्ड (Penalty) का निर्धारण करना होता है।

(2) केन्द्र सरकार, ऐसे आदेश के द्वारा निर्णायक अधिकारी के 'न्यायिक–क्षेत्र' (Jurisdiction) का निर्धारण करती है।

(3) निर्णायक अधिकारी, उपधारा (1) के अन्तर्गत ऐसे अधिकारी द्वारा की गई उन शिकायतों की जाँच करेगा जो कि केन्द्र सरकार के किसी सामान्य या विशिष्ट आदेश के द्वारा लिखित में शिकायत करने के लिए अधिकृत किया गया है।

(4) वह अधिकृत अधिकारी, निर्णायक अधिकारी के सम्मुख वाद को स्वयं प्रस्तुत कर सकता है या इस हेतु किसी 'वैधानिक–व्यवसायी' (Legal Practitioner) या किसी चार्टर्ड–एकाउन्टेन्ट की सहायता ले सकता है।

(5) प्रत्येक निर्णायक अधिकारी उपधारा (2) एवं धारा 28 के अन्तर्गत 'पुनरावेदन–न्यायाधिकरण' (Appellate Tribunal) द्वारा प्रदत्त सिविल न्यायालय के सभी अधिकार प्राप्त होंगे, एवं –

(*i*) निर्णायक अधिकारी, ऐसी कार्यवाही भारतीय दण्ड विधान 1860 की धारा 193 और 228 के अन्तर्गत प्रारम्भ करेगा, तथा

(*ii*) दीवानी न्यायालय की प्रक्रिया के लिए 'अपराध–प्रक्रिया संहिता' 1973 की धारा 345 एवं 346 के तहत कार्यवाही करेगा।

(6) प्रत्येक निर्णायक अधिकारी, उपधारा (2) के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली शिकायत का निपटारा अविलम्ब तथा अन्तिम रूप से, शिकायत प्राप्त होने की तिथि से 1 वर्ष के भीतर करना होगा। जब निर्धारित समय के भीतर शिकायत का निपटारा नहीं होता है तो निर्णायक अधिकारी के द्वारा तब तक के जाँच रिकार्ड के बारे में समय–समय पर, 'शिकायत की पूर्ण जाँच' न हो पाने की सूचनाएँ भिजवानी होगी। [धारा 16]

2. **विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) को पुनर्विचार याचिका (Appeal to Special Director : Appeals)**

1. केन्द्र सरकार, अधिसूचना द्वारा, निर्णायक–अधिकारी द्वारा दिए गए निर्णय के विरूद्ध अपील दायर करने के लिए विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) की नियुक्ति कर सकती है तथा उसके न्यायिक क्षेत्राधिकार के स्थानों एवं मामलों को निर्दिष्ट (Specify) कर सकती है।

2. यदि निर्णायक अधिकारी (जो सहायक या उप प्रवर्तन निदेशक हो सकते हैं), द्वारा दिए गए निर्णय से कोई व्यक्ति पीड़ित है तो वह विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) को अपील कर सकता है।

3. पीड़ित पक्षकार द्वारा ऐसी अपील, निर्णायक–अधिकारी द्वारा निर्णय की प्रति (Copy) प्राप्त होने की तिथि से 45 दिन के भीतर की जानी चाहिए। विशिष्ट निदेशक 45 दिन के बाद भी अपील स्वीकर कर सकता है किन्तु वह उन कारणों से संतुष्ट होना चाहिए, जिनके कारण देरी हो गई है।

4. अपील प्राप्त होने के पश्चात विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन), निर्णायक अधिकारी एवं अपील करने वाले व्यक्तियों को, अपने द्वारा जारी किए गए आदेश की प्रतियाँ प्रेषित करेगा।

5. विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) को पुनरावेदन न्यायाधिकरण की धारा 28 के अंतर्गत न्यायिक कार्यवाही के लिए भारतीय दण्ड विधान 1860 की धारा 193 एवं 228 तथा निर्णय हेतु अपराध प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 345 एवं 346 को प्रयोग करने का अधिकार दिया गया है। [धारा 17]

3. **पुनरावेदन न्यायाधिकरण की स्थापना (Establishment of Appellate Tribunal)** – केन्द्र सरकार, निर्णायक अधिकारी एवं विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) के विरूद्ध की गई अपील की सुनवाई के लिए, इस अधिनियम के तहत, अधिसूचना जारी करके पुनरावेदन न्यायाधिकरण की स्थापना कर सकती है। [धारा 18]

4. **पुनरावेदन न्यायाधिकरण को अपील (Appeal to Appellate Tribunal)**

1. इस अधिनियम की उपधारा (2) के अन्तर्गत केन्द्र सरकर या विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) अथवा कोई अन्य पीड़ित पक्षकार, पुनरावेदन न्यायाधिकरण के सम्मुख, निर्णायक अधिकारी के विरूद्ध, अपील कर सकता है। किन्तु ऐसा करने से पूर्व अपील करने वाले पक्षकार को निर्धारित कर दी गई दण्ड की राशि, (Levy Penalty) केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित विधि के अनुरूप जमा करानी होगी।

यदि पुनरावेदन न्यायाधिकरण की दष्टि में , यह हो कि अपील करने वाले व्यक्ति के लिए निर्धारित दण्ड की राशि को जमा कराना कठिन होगा और इस बात से भी संतुष्ट हो जाए कि ऐसे दण्ड की उगाही सुरक्षित रूप में ही सकेगी तो न्यायाधिकरण, ऐसी राशि जमा कराने से, पीड़ित पक्षकार को छूट दे सकेगा।

2. ऐसी अपील, निर्णायक द्वारा अथवा विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) द्वारा दिए गए निर्णय की प्रति, जो कि केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्र में एवं निर्धारित शुल्क देकर प्राप्त की गई हो, कि तिथि से 45 दिन के भीतर की जा सकती है।

   किन्तु, पुनरावेदन न्यायाधिकरण, इस अवधि में देरी होने के कारणों से संतुष्ट हो जाए तो वह उक्त अवधि (45 दिन) के पश्चात भी अपील स्वीकार कर सकता है।

3. अपील के प्राप्त होने के पश्चात विभिन्न पक्षकारों की सुनवाई हेतु न्यायाधिकरण, जैसा भी उचित समझे, विभिन्न पक्षकारों के लिए आदेश जारी करके उनकी प्रतिलिपियाँ – अपील करने वाले व्यक्ति, निर्णायक अधिकारी या विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) को भिजवाता है।

4. न्यायाधिकरण को स्वीकार की गई अपील पर उपधारा (1) के अंतर्गत, जितनी जल्दी संभव हो सके, अपील स्वीकार करने की तिथि से 180 दिन के भीतर अंतिम निर्णय लेना होगा। यदि, इस अवधि में वह निर्णय नहीं ले पाता है तो इस तिथि के पश्चात् निर्णय न ले सकने के कारणों को, वह लिखित में रिकॉर्ड करेगा।

5. **पुनरावेदन न्यायाधिकरण का गठन (Composition of Appellate Tribunal)**

   1. इस न्यायाधिकरण में, केन्द्रीय सरकार द्वारा एक सभापति की नियुक्ति की जाएगी तथा जितना उचित समझे, केन्द्रीय सरकार, सदस्यों की नियुक्ति कर सकेगी।

   2. इस अधिनियम में दिए गए प्रावधानों के अनुसार –

      (a) न्यायाधिकरण का 'न्यायिक क्षेत्र' (Jurisdiction) खण्डपीठों (Benches) के माध्यम से प्रयोग किया जाएगा,

      (b) खण्डपीठ का गठन, सभापति द्वारा एक या अधिक सदस्यों की सहायता से किया जाएगा,

      (c) पुनरावेदन न्यायाधिकरण की खण्डपीठ, सामान्य रूप से तो नई दिल्ली में ही कार्यरत रहेगी किन्तु सभापति के परामर्श से, केन्द्र सरकार अन्यत्र स्थानों पर भी अधिसूचना जारी करके खण्डपीठ स्थापित कर सकेगी, तथा

      (d) केन्द्र सरकार, उन संबंधित न्यायिक क्षेत्रों का भी निर्धारण करेगी जिन्हें न्यायाधिकरण द्वारा प्रयोग में लाया जाएगा।

   3. सभापति, उपधारा (2) के अन्तर्गत, किसी भी सदस्य का स्थानान्तरण, एक पीठ से दूसरी पीठ में कर सकेगा।

   4. यदि किसी स्तर पर, ऐसा प्रतीत होता है कि कोई विवाद दो सदस्यों को पीठ के लिए बिना नहीं निपटाया जा सकता है तो सभापति, ऐसे विवाद को द्वि–सदस्यीय पीठ को हस्तान्तरित कर सकेगा। [धारा 20]

6. **सभापति, सदस्यों एवं विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) की नियुक्ति हेतु योग्यताएँ [Qualifications for appointment of Chair-person, Member and Special Director (Appeals)]**

   1. एक व्यक्ति, उस समय तक सभापति या सदस्य के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकेगा, जब तक कि –

      (a) सभापित के रूप में, किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति नहीं की जाती, तथा

      (b) सदस्य के रूप में, जिला जज की नियुक्ति नहीं की जाती।

   2. एक व्यक्ति, जब तक विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) के पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकेगा, जब तक कि वह –

      (a) 'भारतीय विधि सेवाओं' (Indian Legal Services) का प्रथम श्रेणी का पद धारण किए हुए नहीं हो, या

      (b) 'भारतीय राजस्व सेवा' (Indian Revenue Service) का सदस्य हो तथा भारत सरकार के संयुक्त सचिव के पद के समकक्ष हो। [धारा 21]

7. **कार्यावधि (Term of Office)** – सभापित एवं प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल, अधिकतम 5 वर्ष का होगा किन्तु –

   (*i*) सभापति की दशा में, अधिकतम आयु 65 वर्ष, तथा

   (*ii*) सदस्यों के सन्दर्भ में, अधिकतम आयु 62 वर्ष होगी।

इससे तात्पर्य यह है कि एक व्यक्ति सभापति के पद पर अधिकतम 5 वर्ष के लिए या 65 वर्ष की आयु तक के लिए, जो भी पहले हो, तक पद पर रहेगा। इसी प्रकार, एक सदस्य, अधिकतम 5 वर्ष या 62 वर्ष की उम्र तक, जो भी पहले हो, तक अपने पद पर बना रह सकेगा। [धारा 22]

8. **सेवा नियम एवं शर्ते (Terms & Conditions of Service)** – सभापति/विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) एवं सदस्यों के वेतन, भत्ते तथा अन्य नियमों और शर्तो का निर्धारण, निर्धारित–विधि के अनुरूप किया जाएगा तथा इस रूप में किया जाएगा कि नियुक्ति के पश्चात उन्हें किसी प्रकार की हानि नहीं हो। [धारा 23]

9. **रिक्तियाँ (Vacancies)** – केवल अस्थायी अनुपस्थिति की स्थिति को छोड़कर, अन्य रिक्तियों की दशा में, केन्द्र सरकार इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप, उन्हीं व्यक्तियों को रिक्त पदों पर नियुक्त कर सकती है और रिक्त पद भरे जाने तक पुनरावेदन न्यायाधिकरण की कार्यवाही जारी रहेगी। [धारा 24]

10 **त्यागपत्र एवं पद-मुक्ति (Resignation & Removal)**

(*i*) कोई सभापति या सदस्य, केन्द्र सरकार को लिखित सूचना द्वारा, अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है।

यह प्रावधान है कि सभापति या सदस्य द्वारा नोटिस (सूचना) देने के पश्चात् केन्द्र सरकार उन्हें आगामी तीन माह तक अथवा उनके स्थान पर किन्हीं अन्य व्यक्तियों की व्यवस्था होने तक अथवा कार्याविधि समाप्त होने तक, जो भी पहले हो, तक पद पर बने रहने के लिए कह सकती है।

(*ii*) किसी सभापति या सदस्य को, उनके पद से तब तक हटाया नहीं जा सकेगा, जब तक कि स्वयं केन्द्र सरकार उन्हें, जाँच में 'दुर्व्यवहार' अथवा 'अक्षमता' को दोषी पाए जाने के पश्चात, पद से हटाने का आदेश जारी नहीं कर दे। किन्तु केन्द्र सरकार द्वारा, सभापति एवं सदस्य के विरूद्ध लगाए आरोपों की जाँच के समय, उन्हें सुनवाई का अवसर अवश्य प्रदान किया जाएगा।

11. **कुछ परिस्थितियों में सदस्य द्वारा सभापति के रूप में कार्य करना (Member to act as Chairperson in certain circumstances)**

(*i*) यदि किन्हीं विशेष घटनाओं, यथा सभापति की मत्यु , पद–त्याग या अन्य कारणों से पद रिक्त हो जाता है तो नये सभापति की नियुक्ति होने तक, सदस्यों में से सबसे वरिष्ठ सदस्य, सभापति के रूप में कार्य करेगा।

(*ii*) यदि सभापित, अनुपस्थिति, बीमारी या अन्य कारणों से अपने कर्त्तव्य का पालन करने में असमर्थ हो तो जब तक सभापति अपने–अपने कार्य पर उपस्थित नहीं होता है तब तक के लिए, सबसे वरिष्ठ सदस्य, सभापति के रूप में कार्य करेगा। [धारा 26]

12. **पुनरावेदन न्यायाधिकरण एवं विशिष्ट निदेशक के लिए स्टाफ (Staff of Appellate Tribunal and Special Director)**

(*i*) उपरोक्त दोनों पदों पर कार्य करने वाले अधिकारियों की सहायता हेतु, जितनी भी उचित रूप में आवश्यकता हो, केन्द्र सरकार कर्मचारियों की नियुक्त कर सकती है।

(*ii*) उक्त दोनों कार्यालयों में नियुक्त किए जाने वाले अधिकारी और कर्मचारी, अपने–अपने कर्तव्यों का पालन, सभापति/वशिष्ट–निदेशक (पुनरावेदन) के निर्देशन में ही करेंगे।

(*iii*) उक्त कर्मचारियों एवं अधिकारियों के वेतन–भत्ते तथा सेवा शर्तें, निर्धारित विधि के अनुरूप ही तय की जायेंगी। [धारा 27]

13. **पुनरावेदन न्यायाधिकरण एवं विशिष्ट निदेशक (अपील) के अधिकार एवं प्रक्रिया [Procedures and Powers of Appellate Tribunal and Special Director (Appeals)]**

1. पुनरावेदन न्यायाधिकरण एवं विशिष्ट निदेशक (अपील), 'दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908' (Code of Civil Procedure, 1908) के प्रावधानों से बाध्य नहीं होंगे किन्तु वे 'प्राकृतिक न्याय' के सिद्धान्तों एवं इस अधिनियम के प्रावधानों से, दिशानिर्देश अवश्य प्राप्त कर सकेगे। उक्त दोनों ही पदाधिकारी, अपने अधिकारों के अन्तर्गत स्वयं की प्रक्रिया निर्धारित कर सकेगे।

2. उक्त दोनों अधिकारी, अपने कार्यों को परिणित करने के लिए दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908 के तहत सिविल न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करते हुए अग्रलिखित मामलों पर, मुकदमे के लिए कार्यवाही कर सकते हैं–
   - (a) मुकदमे से संबंधित किसी व्यक्ति को बुलाना, उपस्थित होने के लिए कहना तथा शपथ हेतु परीक्षण करना;
   - (b) अनुसंधान करना तथा प्रपत्रों को प्रस्तुत करना;
   - (c) शपथ–पत्र पर प्रमाण प्राप्त करना;
   - (d) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (Indian Evidence Act, 1872) की धारा 123 एवं 124 के अन्तर्गत, जनता से संबंधित कोई भी रिकॉर्ड या प्रपत्र अथवा उनकी प्रतिलिपि प्राप्त करना;
   - (e) साक्षियों (Witnesses) या प्रपत्रों की जाँच के लिए अधिकार पत्र निर्गमित करना;
   - (f) निर्णयों पर पुनर्विचार करना;
   - (g) किसी दोषपूर्ण प्रपत्र/वर्णन को रद्द करना या उस पर निर्णय करना तथा किसी पद–मुक्ति के आदेश पर निर्णय देना; एवं
   - (h) अन्य कोई भी मामले, जो कि केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित किए जाएँ।
3. इस अधिनियम के अधीन, पुनरावेदन न्यायाधिकरण एवं विशिष्ट निदेशक (अपील) के द्वारा जारी किया गया कोई भी आदेश 'सिविल कोर्ट' के आदेश (Decree) की भाँति ही माना जाएगा।
4. उपर्युक्त अधिकारीगण, अपने द्वारा जारी किसी भी आदेश को निर्णय के लिए सिविल कोर्ट को हस्तांतरित कर सकते हैं और सिविल उस पर अपना निर्णय दे सकता है। [धारा 28]

14. **खण्डपीठों के मध्य कार्य का विभाजन (Distribution of Business amongst Benches)** – जहाँ खण्डपीठें गठित की जाएँगी, पुनरावेदन न्यायाधिकरण का सभापति, समय–समय पर, अधिसूचना द्वारा विभिन्न पीठों के द्वारा किये जाने वाले कार्यों का विभाजन करेगा। [धारा 29]

15. **वाद हस्तान्तरण का सभापति का अधिकार (Power of Chairperson to transfer Benches)** – विवाद के किसी भी पक्षकार द्वारा प्रार्थना पत्र देने और सभी पक्षकारों को नोटिस देने और उन्हें सुनने के पश्चात् अथवा बिना नोटिस दिए स्वयं की इच्छा पर, किसी भी लम्बित (Pending) मामले को सभापति एक बेंच से दूसरी बेंच को हस्तान्तरित कर सकता है। [धारा 30]

16. **बहुमत द्वारा निर्णय किया जाना (Decision to be made by majority)** – यदि किसी खंडपीठ के दो सदस्यों में, किसी बिन्दु पर एक मत नहीं हो तो वे ऐसे मामले को अध्यक्ष के सम्मुख रख सकते हैं और अध्यक्ष पुनः न्यायाधिकरण के अन्य सदस्यों को उसी मामले पर निर्णय हेतु सौंप सकता है। सभी सदस्यों के (प्रथम सदस्यों के निर्णय सहित) द्वारा दिए गए निर्णयों का बहुमत जिस ओर होगा, वही निर्णय लागू किया जाएगा। [धारा 31]

17. **अपीलकर्ता द्वारा किसी वकील अथवा चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट या सरकार की सहायता लेना (Right of Appellant of take assistance of legal practitioner or Chartered Accountant and of Government)**
    1. एक व्यक्ति, जो कि पुनरावेदन न्यायाधिकरण के सम्मुख अपील करना चाहता है वह अपने विवाद को न्यायाधिकरण अथवा विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) को प्रस्तुत करने के लिए, किसी वकील अथवा चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स की सहायता (प्रस्तुतीकरण अधिकारी के रूप में) प्राप्त कर सकता है।
    2. केन्द्र सरकार, 'प्रस्तुतीकरण अधिकारी' (Presenting Officer) के रूप में किसी एक या अधिक वकीलों एवं चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स को, अपील प्रस्तुत करने के लिए अधिकृत कर सकती है। [धारा 32]

18. **सदस्यों इत्यादि का लोक-सेवक होना (Members etc. to be Public Servants)** – इस अधिनियम में, यह भी प्रावधान है कि भारतीय दंड विधान, 1960 की धारा 21 के अनुसार पुनरावेदन न्यायाधिकरण तथा विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) के सभापति, सदस्यगण तथा अन्य अधिकारी और कर्मचारी लोक–सेवक (Public Servants) के रूप में माने जाएँगे। [धारा 33]

19. **सिविल न्यायालय को क्षेत्राधिकार नहीं (Civil Court not to have Jurisdiction)** – कोई भी सिविल न्यायालय, निर्णायक अधिकारी द्वारा या विशिष्ट (अपील) द्वारा दिये गये निर्णय के विरूद्ध की गई अपील को स्वीकार नहीं कर सकता है और न ही इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, निषेधाज्ञा (Injunction) जारी कर सकता है।

[धारा 34]

20. **उच्च न्यायालय को अपील (Appeal of High Court)** – कोई भी पक्षकार, जो कि पुनरावेदन न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निर्णय से पीड़ित है, वह निर्णय की तिथि से 60 दिन के भीतर न्यायाधिकरण के विरूद्ध, उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। किन्तु यदि अपीलकर्ता द्वारा समय पर अपील न कर पाने के कारणों को प्रस्तुत किया जाता है और उन कारणों से उच्च न्यायालय संतुष्ट हो जाता है तो वह 60 दिन के पश्चात् भी अपील स्वीकार कर सकता है। [धारा 35]

प्रवर्तन निदेशालय

(Directorate of Enforcement)

1. केन्द्र सरकार, इस अधिनियम की व्यवस्थाओं को बनाए रखने के लिए प्रवर्तन निदेशालय की स्थापना कर सकती है और जितने भी उचित समझे, उतने अधिकारी एवं एक निदेशक की नियुक्ति कर सकती है।
2. केन्द्र सरकार, सहायक निदेशक के स्तर से नीचे अधिकारियों की नियुक्ति के लिए प्रवर्तन निदेशक अथवा अतिरिक्त प्रवर्तन निदेशक अथवा विशिष्ट प्रवर्तन निदेशक अथवा किसी उप निदेशक को अधिकृत कर सकती है।
3. इस अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुरूप प्रवर्तन अधिकारी, केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर ही अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का पालन कर सकेगा। [धारा 36]

खोज एवं जब्त करने आदि के अधिकार

(Power of Search, Seizure, etc.)

1. प्रवर्तन निदेशक एवं सहायक निदेशक स्तर तक के अन्य अधिकारी, धारा 13 के अन्तर्गत किए गए उल्लंघनों का अनुसंधान कर सकते है।
2. केन्द्र सरकार, धारा 13 के अंतर्गत किए गए अनुसंधान करने के लिए, अधिसूचना द्वारा, केन्द्र सरकार, राज्य सरकार या रिजर्व बैंक के किसी अधिकारी या अधिकारियों को अधिकृत कर सकती है जो कि भारत सरकार के अवर–सचिव (Under Secretary) के स्तर से निम्न–स्तर के नहीं होना चाहिए।
3. उपधारा (1) के अन्तर्गत अधिकृत अधिकारी – आयकर अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत नियुक्त अधिकारियों की भाँति, अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। किन्तु उसे निर्धारित सीमाओं के भीतर ही, इन अधिकारों का प्रयोग करना होगा।

[धारा 37]

अन्य अधिकारों के अधिकार

(Empowering other officers)

1. केन्द्र सरकार, आदेश द्वारा तथा शर्तों एवं सीमाओं का निर्धारण करते समय किसी सीमा शुल्क अधिकारी, केन्द्रीय आबकारी अधिकारी, पुलिस अधिकारी या अन्य केन्द्रीय/राज्य सरकार के कर्मचारियों को, प्रवर्तन निदेशक या अन्य किसी प्रवर्तन अधिकारी की शक्तियों का प्रयोग तथा कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए, अधिकृत कर सकती है।
2. ये अन्य अधिकारी भी, आयकर अधिनियम 1961 के अन्तर्गत आने वाले प्रावधानों का, अपनी उन सीमाओं के भीतर, प्रयोग कर सकते हैं जिन्हें केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित किया जाए।

[धारा 38]

विविध प्रावधान
(Miscellaneous Provisions)

1. **निश्चित मामलों में प्रलेखों संबंधी धारणा (Presumption as to documents in certain cases)**

   जब कोई प्रलेख

   1. किसी व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है अथवा किसी व्यक्ति के पास से या उसके नियंत्रण में से इस अधिनियम या अन्य किसी कानून के अन्तर्गत जब्त किया जाता है; या
   2. इस अधिनियम के अन्तर्गत लगाए गए आरोपों के संदर्भ में अथवा किसी उल्लंघन के अनुसंधान के समय ऐसे प्रलेख भारत के बाहर किसी स्थान से, किन्हीं अधिकृत अधिकारियों द्वारा निर्धारित विधि से प्राप्त किए गए हो और ऐसे प्रलेख उस व्यक्ति या व्यक्तियों के विरूद्ध चलाई जाने वाल प्रक्रिया में प्रमाण–स्वरूप प्रस्तुत किए जाने हो तो न्यायालय अथवा निर्णायक अधिकारी, जैसी भी स्थिति हो, वह ऐसे प्रलेखों को प्रमाण मान लेंगे –
      (a) उन प्रलेखों पर एवं उनके प्रत्येक भाग पर मामले को क्रियान्वित करने वाले अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिए एवं वे प्रलेख प्रमाणित (Attested) भी होने चाहिए।
      (b) प्रमाण–स्वरूप प्रस्तुत किये जाने वाले, ऐसे प्रलेख मुद्रांक लगे होने चाहिए, तभी वे प्रमाण के लिए प्रवेश योग्य (स्वीकृति) माने जायेगें। [धारा 39]

2. **इस अधिनियम के क्रियान्वयन का निलम्बन (Suspension of Operation of this Act)** –
   1. यदि, जनहित में आवश्यक एवं उचित हो और केन्द्र सरकार इस बात से संतुष्ट हो जाए कि इस अधिनियम के अन्तर्गत किन्हीं नियमों को लागू करने के लिए आज्ञा दी गई थी अथवा प्रतिबन्ध लगाया गया था तथा परिस्थितिवश इन्हें लागू करने की आवश्यकता नहीं है या प्रतिबंध हटाने की आवश्यकता है तो केन्द्र सरकार, अधिसूचना जारी करके, अनिश्चित समय के लिए या अधिसूचित किए गए समय तक के लिए, ऐसा कर सकती है।
   2. यदि, इस अधिनियम के अन्तर्गत लागू किए गए किसी प्रावधान में अनिश्चित समय के लिए छूट दी गई हो या विलम्बित किया गया हो, तो केन्द्र सरकार कभी भी अधिसूचना जारी करने, उन प्रावधानों को पुनः प्रवर्तित (Reinforce) कर सकती है।
   3. प्रत्येक अधिसूचना, निर्गमित किए जाने के पश्चात् संसद के दोनों सदनों के पटल पर रखनी होती हैं जहाँ चालू सत्र में या किन्हीं दो या दो से अधिक सफल–सत्रों में, अधिसूचना की अवधि समाप्त होने से पूर्व विचार किया जाता है और यदि संसद कोई संशोधन (Modification) करती है तो उसी रूप में अधिसूचना को प्रभावी माना जाता है। [धारा 40]

3. **निर्देश देने के केन्द्र सरकार के अधिकार (Power of Central Government to give Directions)** – इस अधिनियम के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु, केन्द्र सरकार समय–समय पर, जैसा भी उचित समझे, उस रूप में, रिजर्व बैंक को निर्देश दे सकती है और रिजर्व बैंक द्वारा, उन निर्देशों का पालन किया जाना आवयक होगा। [धारा 41]

4. **कम्पनियों द्वारा उल्लंघन (Contraventions by Companies)** –
   1. जहाँ एक व्यक्ति, इस अधिनियम के उन प्रावधानों, आदेशों, नियमों या निर्देशों का उल्लंघन करता है जो कि एक कम्पनी के लिए बनाए गए है और वह व्यक्ति, ऐसे उल्लंघन के समय कम्पनी का प्रभारी (In-charge) था एवं कम्पनी के व्यवसाय को चलाने के लिए उत्तरदायी था, तो वह ऐसे उल्लंघन के लिए दोषी होगा एवं सजा का भागी होगा।

      यदि ऐसा व्यक्ति, यह सिद्ध कर देता है कि उल्लंघन किया जाना, उसकी जानकारी में नहीं था या उसने ऐसे उल्लंघन होने के पूर्व, पूर्ण सतर्कता बरती थी तो वह दण्ड का भागी नहीं होगा।
   2. यदि, यह सिद्ध हो जाता है कि कम्पनी में किया जाने वाला ऐसा उल्लंघन किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की लापरवाही से होता है तो ऐसे व्यक्ति ही, उल्लंघन के लिए दोषी कहलाएँगे, एवं सजा के भागीदार होंगे।

इस धारा में, 'कम्पनी' से आशय किसी निगम–निकाय (Body Corporate) और जिसमें एक 'फर्म' तथा 'व्यक्तियों का संघ' (Association of Individuals) भी सम्मिलित है। 'फर्म के निदेशक' का तात्पर्य, फर्म के किसी भी साझेदार से है। [धारा 42]

5. **मत्यु या दिवालिया संबंधी मामले (Death or Insolvency in Certain Cases)** – इस अधिनियम के अन्तर्गत उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों की मत्यु होने पर अथवा दिवालिया घोषित हो जाने पर भी कोई अधिकार , दायित्व, प्रक्रिया या उससे संबंधित अपील की कार्यवाही समाप्त नहीं होगी अपितु उसके लिए, उनके वैधानिक प्रतिनिधि अथवा राजकीय प्रापक या निस्तारक, जैसी भी स्थिति हो, वे मतक या दिवालिया के उत्तराधिकार तक या उसकी सम्पत्ति (Estate) की सीमा तक उत्तरदायी होगें। [धारा 43]

6. **वैधानिक कार्यवाही हेतु न्यायालय (Bar of Legal Proceedings)** – केन्द्र सरकार या रिजर्व बैंक अथवा केन्द्र सरकार एवं रिजर्व बैंक के विरूद्ध तथा ऐसे अधिकारियों के विरूद्ध कोई इस्तगासा, मुकदमा या वैधानिक कार्यवाही नहीं की जा सकेगी जिन्हें इस अधिनियम के अधीन अधिकारों का प्रयोग करने के लिए अथवा कर्त्तव्यों की पालना करने के लिए अथवा किसी नियम, विनियम, अधिसूचना, निर्देश या आदेश की पूर्ति करने के लिए कहा गया हो। [धारा 44]

7. **कठिनाइयों का निराकरण (Removal of Difficulties)** –

   1. यदि इस अधिनियम के प्रावधानों में कोई कठिनाई आती है तो उसे केन्द्र सरकार आदेश जारी करके दूर कर सकती है। ऐसा आदेश, इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात दो वर्ष की अवधि समाप्त होने पर की तिथि तक ही निर्गमित किया जा सकेगा।

   2. इस धारा के अन्तर्गत जारी किये जाने वाले प्रत्येक आदेश को लागू करने से पूर्व उसे संसद के समक्ष रखना आवश्यक होगा। [धारा 45]

8. **नियम बनाने का अधिकार (Power to make rules)** –

   1. इस अधिनियम के प्रावधानों को सुचारू रूप से लागू करने के लिए, सरकार, अधिसूचना जारी करके, नियमों की रचना कर सकती है।

   2. केन्द्र सरकार, बिना किसी पूर्वाग्रह के, पूर्व में प्रदत्त अधिकारों के सामान्यकरण हेतु, निम्न नियमों की रचना कर सकती है –

      (a) धारा 5 के अन्तर्गत, चालू खाता व्यवहारों पर उचित प्रतिबंध लगाना;

      (b) धारा 15 की उपधारा (1) के अन्तर्गत, उल्लंघनों (Contraventions) का निपटारा करने की विधि निश्चित करना;

      (c) धारा 16 की उपधारा (1) के अन्तर्गत, निर्णायक अधिकारीगण (Adjusting Authorities) द्वारा की जाने वाली जाँच की विधि निश्चित करना।

      (d) धारा 17 और 19 के अन्तर्गत, अपील करने के प्रपत्रों और अपील की फीस निश्चित करना;

      (e) धारा 23 के अनुसार, पुनरावेदन न्यायाधिकरण (Appellate Tribunal) के सभापति तथा अन्य सदस्यों एवं विशिष्ट निदेशक (अपील) के वेतन, भत्तों तथा अन्य सेवा शर्तों और सेवा अवधि के बारे में;

      (f) धारा 27 के अनुरूप, पुनरावेदन न्यायाधिकरण एवं विशिष्ट निदेशक (अपील) के कार्यालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के वेतन–भत्तों तथा अन्य सेवा शर्तों एवं सेवा–अवधि के बारे में;

      (g) धारा 28 की उपधारा (2) के अन्तर्गत, पुनरावेदन न्यायाधिकरण एवं विशिष्ट निदेशक (अपील) को प्राप्त सिविल न्यायालय के अधिकारों के क्रियान्वयन के बारे में;

      (h) धारा 39 के अनुच्छेद (*ii*) के अनुसार, उन अधिकारियों, व्यक्तियों और विधि (Manner) के बारे में, जिससे कि प्रलेखों को अधिकृत किया जाना है; तथा

      (i) कोई भी मामला, जो कि आवश्यक हो, आवश्यक हो सकता है और/या निर्धारित हो। [धारा 46]

9. **विनियमों की रचना का अधिकार (Power to make Regulations)** –

1. रिजर्व बैंक, अधिसूचना जारी करके, इस अधिनियम में रचित नियमों और प्रावधानों के सुचारू क्रियान्वयन के लिए विनियमों की रचना कर सकती है।
2. रिजर्व बैंक, बिना किसी पूर्वाग्रह के, पूर्व में प्रदत्त अधिकारों के सामान्यकरण हेतु, निम्न विनियमों का प्रतिपादन कर सकती है –
   (a) धारा 6 के अनुरूप, पूँजी खाते की अनुमति प्राप्त श्रेणियों (Permissible Classes) संबंधी व्यवहारों में विदेशी विनिमय की सीमा, ऐसे व्यवहारों पर प्रतिबन्ध या निश्चित पूँजी–खातों के व्यवहारों के विनिमयों के बारे में;
   (b) धारा 7 के अन्तर्गत, घोषणा करने कि विधि एवं स्वरूप के बारे में;
   (c) धारा 8 के अनुसार, उस समयाविधि एवं विधि के बारे में, जिसके अनुसार विदेशी–विनिमय का 'देश–प्रत्यावर्तन' (Repatriation) किया जा सकेगा।
   (d) धारा 9 के अन्तर्गत, विदेशी मुद्रा एवं विदेशी सिक्के रखने के एक व्यक्ति की सीमा, बारे में;
   (e) धारा 9 के अनुसार ही, ऐसे व्यक्तियों की श्रेणी, जिन्हें विदेशी मुद्रा खाते खोलने एवं रखने का अधिकार है, के बारे मे;
   (f) विदेशी विनिमय की छूट संबंधी सीमा के बारे में [धारा 9]
   (g) विदेशी विनिमय को रोकने एवं रखने की सीमा के बारे में [धारा 9]
   (h) कोई भी, अन्य आपश्यक मामले के बारे में, जैसे भी रिजर्व बैंक उचित समझे। [धारा 47]

10. **नियमों एवं विनिमयों को संसद के सम्मुख प्रस्तुत करना (Rules and Regulations to be laid before Parliament)** – इस अधिनियम के अन्तर्गत बनाया जाने वाला प्रत्येक नियम और विनिमय, जब सत्र चल रहा हो तो संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत किया जाएगा। इसे संसद के एक या दो सत्रों में अधिकतम 30 दिन के लिए प्रस्तुत किया जाएगा। यदि समय–सीमा के पूर्व की सत्र समाप्त हो जाता है तो उसे आगामी सत्र में प्रस्तुत किया जाना आवश्यक होगा। यदि, संसद के दोनों सदन नियमों और विनियमों में कोई संशोधन (Modifications) करते है तो उसी रूप में उन्हें प्रभावी माना जाएगा। [धारा 48]

11. **'निरस्त' एवं 'बचाव' (Repeal and Saving)** –

1. विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम 1973 को निरस्त कर दिय गया है और उक्त अधिनियम की धारा 52 की उपधारा (*i*) के अधीन गठित पुनरावेदन मण्डल (Appellate Board) को भी भंग कर दिया गया है।
2. पुनरावेदन मंडल के भंग हो जाने के पश्चात, उसमें नियुक्त सभापति और प्रत्येक सदस्य पदमुक्त माने जाएँगे और वे समय से पूर्व पदमुक्ति के कारण, किसी भी प्रकार की क्षतिपूर्ति के लिए दावा प्रस्तुत करने के अधिकारी नहीं होगें।
3. यदि, किसी अन्य अधिनियम में कुछ नहीं दिया गया हो तो इस (FEMA) अधिनियम के लागू होने के दो वर्ष के पश्चात धारा 51 के अन्तर्गत कोई भी न्यायालय किसी अपराध के बारे में संज्ञान (Cognizance) नहीं ले सकेगा और नहीं कोई निर्णायक–अधिकारी किसी उल्लंघन के बारे में कोई नोटिस जारी कर सकेगा।
4. (a) निरस्त किए गए अधिनियम के अन्तर्गत, यदि कोई कार्य, कार्यवाही जारी हो (किसी भी नियम, अधिसूचना, निरीक्षण, आदेश, सूचना, नियुक्ति, स्थायीकरण, घोषणा, लाइसेन्स प्रक्रिया, स्वीकृति अनुमोदन, प्राप्त छूट तथा अन्य प्रलेखों को सम्मिलित करते हुए) तथा इस अधिनियम से असंगत नहीं हो तो ऐसे कार्य/कार्यवाही, इस अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत जारी रखी जा सकेगी। धारा 52 के अन्तर्गत पुनरावेदन मण्डल को की गई अपील, इस अधिनियम के अंतर्गत गठित पुनरावेदन न्यायाधिकरण को हस्तान्तरित की जा सकेगी।
   (b) पुनरावेदन मण्डल में लिये गये निर्णयों के विरूद्ध [धारा 52], यदि निरस्त किए गए अधिनियम में कोई अपील नहीं की जा सकती है तो ऐसी अपील, निर्णय होने की तिथि से 60 दिन के भीतर, उच्च न्यायालय (High Court) में की जा सकेगी। उच्च न्यायालय, यदि प्रस्तुत किये गये देरी के कारणों से संतुष्ट हो जाए तो वह इस अपील को निर्धारित अवधि के बाद भी स्वीकार कर सकता है। [धारा 49]